आज़ादी का अमृत महोत्सव

जून, 2022
I.S.S.N. : 2457-0494

उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका

विधि साहित्य प्रकाशन
विधायी विभाग
विधि और न्याय मंत्रालय
भारत सरकार

प्रधान संपादक

श्री कमला कान्त

संपादक

श्री अविनाश शुक्ला
श्री असलम खान

सहायक संपादक

श्री पुण्डरीक शर्मा

उप-संपादक

श्री महीपाल सिंह
श्री जसवन्त सिंह
श्री जाहन्वी शेखर शर्मा
श्री अमर्त्य हेम विप्र पाण्डेय

ISSN-2457-0494

कीमत : डाक-व्यय सहित

एक प्रति : ₹ 195/-

वार्षिक : ₹ 2,100/-

© 2022 भारत सरकार, विधि और न्याय मंत्रालय

प्रधान संपादक, विधि साहित्य प्रकाशन, विधि और न्याय मंत्रालय, विधायी विभाग, भगवानदास मार्ग, नई दिल्ली-110001 द्वारा प्रकाशित तथा..... द्वारा मुद्रित ।

आई.एस.एस.एन. 2457-0494

उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका

जून, 2022 अंक - 6

प्रधान संपादक
कमला कान्त

संपादक
अविनाश शुक्ला

[2022] 2 उम. नि. प.

विधि साहित्य प्रकाशन

विधायी विभाग
विधि और न्याय मंत्रालय
भारत सरकार

Online selling of law Patrikas/Books is available on
Website ➡ https://bharatkosh.gov.in/product/product

विक्रय कार्यालय : सहायक प्रबंधक, कारबार अनुभाग, विधि साहित्य प्रकाशन, विधि और न्याय मंत्रालय, विधायी विभाग, आई. एल. आई. बिल्डिंग, भगवानदास मार्ग, नई दिल्ली-110001. दूरभाष : 011-23385259, 23387589, फैक्स : 011-23387589, ई-मेल : am.vsp-molj@gov.in

संपादकीय

विधि साहित्य प्रकाशन द्वारा प्रकाशित उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका प्रतिमाह आपके अवलोकनार्थ उच्चतम न्यायालय द्वारा पारित प्रतिवेद्य निर्णय, जो न्यायाधीशों, अधिवक्ताओं, विधि छात्रों और अकादमीशियनों के लिए महत्वपूर्ण होते हैं, का प्रकाशन करता है । आप लोगों से प्राप्त सुझावों के आधार पर हमको अपनी पत्रिका की गुणवत्ता सुधारने और अपने कार्य को और अधिक निखारने की शक्ति प्राप्त होती है । कृपया अपने अमूल्य सुझावों से हमें अवगत कराते रहें और हमारा मार्गदर्शन करते रहें ।

इस अंक के माध्यम से आपके अवलोकनार्थ माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा **भारत भूषण गुप्ता** बनाम **प्रताप नारायण वर्मा और एक अन्य** [2022] 2 उम. नि. प. 438 वाले मामले में तारीख 16 जून, 2022 को पारित निर्णय प्रस्तुत किया है । यह मामला 1870 के न्यायालय शुल्क अधिनियम की धारा 7(iv)(घ) के अंतर्गत वाद के मूल्यांकन और उस पर न्यायालय शुल्क के संदाय से संबंधित है । इस मामले में वादी-अपीलार्थी ने दिल्ली स्थित जिला दक्षिण-पश्चिम, द्वारका के सिविल न्यायाधीश के समक्ष प्रतिवादी-प्रत्यर्थी की उसके स्वामित्वाधीन संपत्ति से बेदखली के प्रयोजनार्थ आज्ञापक और प्रतिषेधात्मक व्यादेश तथा नुकसान की वसूली के लिए वाद प्रस्तुत किया । वादी-अपीलार्थी ने वाद के दौरान अपनी प्रतिपरीक्षा में वाद फाइल किए जाते समय वादग्रस्त संपत्ति का मूल्य 1.8 करोड़ रुपए बताया । वादी-अपीलार्थी द्वारा संपत्ति के उपरोक्त मूल्य के प्रकटीकरण के पश्चात् प्रतिवादी संख्या 2 ने सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 7, नियम 11 के अधीन यह निवेदन करते हुए आवेदन प्रस्तुत किया कि वादी-अपीलार्थी द्वारा वादग्रस्त संपत्ति के स्वीकृत बाजार मूल्य के आधार पर इस माननीय न्यायालय को वाद के विचारण की अधिकारिता प्राप्त नहीं है, अत: वादपत्र नामंजूर किया जाए । वादी-अपीलार्थी ने इस आवेदन का विरोध किया और विचारण न्यायालय द्वारा यह अभिनिर्धारित करते हुए आवेदन को नामंजूर कर दिया गया कि वाद का मूल्यांकन वादपत्र में

दावाकृत अनुतोषों के आधार पर किया गया है । प्रतिवादी संख्या 2-प्रत्यर्थी ने इस आदेश को उच्च न्यायालय के समक्ष चुनौती दी । उच्च न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि चूंकि वादी ने स्वयं वादग्रस्त संपत्ति का बाजार मूल्य लगभग 1.8 करोड़ रुपए स्वीकार किया है इसलिए उसके द्वारा व्यादेश के अनुतोष के प्रयोजनार्थ 250/- रुपए के न्याय शुल्क का संदाय मनमाना है और वादी को वादपत्र वापस लौटाए जाने तथा वादग्रस्त संपत्ति के बाजार मूल्य के आधार पर वाद का मूल्यांकन और न्यायालय फीस का संदाय किए जाने के पश्चात् समुचित न्यायालय में फाइल करने के लिए निर्देशित कर दिया । वादी-अपीलार्थी ने उच्च न्यायालय के निर्णय से व्यथित होकर उच्चतम न्यायालय में अपील फाइल की । उच्चतम न्यायालय द्वारा अपील मंजूर करते हुए यह अभिनिर्धारित किया गया कि वादपत्र में चाहे गए अनुतोष की प्रकृति ही वाद के मूल्यांकन के प्रश्न के लिए निश्चायक होती है । अत: वाद में अंतर्वलित संपत्ति का बाजार मूल्य वाद के मूल्यांकन के लिए मात्र इस कारणवश निश्चायक नहीं बन सकता कि स्थावर संपत्ति मुकदमे की विषयवस्तु है । मुकदमे में अंतर्वलित स्थावर संपत्ति का बाजार मूल्य दावाकृत अनुतोष की प्रकृति पर विचार करते हुए सुसंगत तो हो सकती है, किंतु अंतत: किसी विशिष्ट वाद का मूल्यांकन प्राथमिक रूप से दावाकृत अनुतोष/अनुतोषों के प्रतिनिर्देश करते हुए विनिश्चित किया जाना चाहिए । अत: आज्ञापक और प्रतिषेधात्मक व्यादेश के अनुतोष के लिए वाद का मूल्यांकन संपत्ति के बाजार मूल्य पर किया जाना अपेक्षित नहीं है ।

इस अंक में केंद्रीय अधिनियम दक्षिण एशियाई विश्वविद्यालय अधिनियम, 2008 को भी ज्ञानार्थ प्रकाशित किया जा रहा है । इस संपूर्ण अंक का परिशीलन करने के पश्चात् आपकी बहुमूल्य प्रतिक्रियाएं ईप्सित हैं ।

अविनाश शुक्ला
संपादक

उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका

जून, 2022

निर्णय-सूची

	पृष्ठ संख्या
उत्तम **बनाम** महाराष्ट्र राज्य	389
भारत भूषण गुप्ता **बनाम** प्रताप नारायण वर्मा और एक अन्य	438
भारतीय स्टेट बैंक और अन्य **बनाम** के. एस. विश्वनाथ	362
महेन्द्र सिंह और अन्य **बनाम** मध्य प्रदेश राज्य	425
राजस्थान राज्य और अन्य **बनाम** चेतन जेफ	317
सुरेन्द्रन **बनाम** केरल राज्य	339
संसद् के अधिनियम	
दक्षिण एशियाई विश्वविद्यालय अधिनियम, 2008 का हिन्दी में प्राधिकृत पाठ	1 – 22

विषय-सूची

पृष्ठ संख्या

दंड संहिता, 1860 (1860 का 45)

– धारा 148 और 302/149 – विधिविरुद्ध जमाव और हत्या – अभियुक्तों द्वारा अभिकथित रूप से मृतक पर आयुधों से प्रहार करके उसकी हत्या किया जाना – शिकायतकर्ता-घटना के एकमात्र प्रत्यक्षदर्शी साक्षी के परिसाक्ष्य के आधार पर दोषसिद्धि – अपील में उच्च न्यायालय द्वारा शिकायतकर्ता-प्रत्यक्षदर्शी साक्षी के साक्ष्य को 'न तो पूर्णत: विश्वसनीय और न ही पूर्णत: अविश्वसनीय' पाया जाना किंतु मरणोत्तर परीक्षा रिपोर्ट से शिकायतकर्ता के साक्ष्य की संपुष्टि करते हुए दोषसिद्धि की पुष्टि किया जाना – संधार्यता – जहां अभियोजन साक्षियों के अभिसाक्ष्य के साथ-साथ प्रतिरक्षा पक्ष के साक्षियों के साक्ष्य से भी यह दर्शित हो रहा हो कि घटना के शिकायतकर्ता को घटनास्थल पर मृतक के मृत पड़ा होने के बारे में अन्य साक्षियों द्वारा सूचित किया था, वहां उसे प्रत्यक्षदर्शी साक्षी नहीं कहा जा सकता है और वह एक 'पूर्णत: अविश्वसनीय साक्षी' के प्रवर्ग में आने के कारण उसके एकमात्र परिसाक्ष्य के आधार पर अभियुक्तों की दोषसिद्धि को कायम नहीं रखा जा सकता है और अभियोजन पक्ष द्वारा अपने पक्षकथन को युक्तियुक्त संदेह के परे साबित करने में असफल रहने पर अभियुक्त-अपीलार्थियों को संदेह के फायदे का हकदार होने के कारण दोषमुक्त करना उचित होगा ।

महेन्द्र सिंह और अन्य बनाम **मध्य प्रदेश राज्य** 425

पृष्ठ संख्या

न्यायालय फीस अधिनियम, 1870 (1870 का 7)

– धारा 7(iv)(घ) – न्यायालय फीस – मूल्यांकन – वादी द्वारा वादांतर्गत संपत्ति से प्रतिवादियों की बेदखली और नुकसानी की वसूली के लिए आज्ञापक और प्रतिषेधात्मक व्यादेश के लिए वाद फाइल किया जाना – वादी द्वारा दावाकृत प्रत्येक अनुतोष के आधार पर न्यायालय फीस का संदाय किया जाना – वादांतर्गत संपत्ति के बाजार मूल्य के अनुसार न्यायालय फीस का संदाय न करने के आधार पर प्रतिवादियों द्वारा वाद नामंजूर करने के लिए आवेदन फाइल किया जाना – विचारण न्यायालय द्वारा आवेदन नामंजूर किया जाना – अपील में उच्च न्यायालय द्वारा वादांतर्गत संपत्ति का वादी द्वारा स्वीकृत बाजार मूल्य के अनुसार वाद का मूल्यांकन करने और समुचित अधिकारिता वाले न्यायालय में वाद फाइल किए जाने के लिए लौटाया जाना – संधार्यता – वाद का मूल्यांकन सदैव दावाकृत अनुतोष की प्रकृति पर निर्भर करता है और केवल इस कारण कि मुकदमे की विषयवस्तु स्थावर संपत्ति है, उस संपत्ति के बाजार मूल्य के आधार पर वाद का मूल्यांकन करने और तद्नुसार न्यायालय फीस का संदाय करने तथा न्यायालय की धन-संबंधी अधिकारिता का अवधारण करने के लिए निश्चायक नहीं कहा जा सकता है ।

भारत भूषण गुप्ता बनाम **प्रताप नारायण वर्मा और एक अन्य** 438

साक्ष्य अधिनियम, 1872 (1872 का 1)

– धारा 32 [सपठित भारतीय दंड संहिता, 1860 की धारा 302] – मृत्युकालिक कथन – अभियुक्त-अपीलार्थी

पृष्ठ संख्या

द्वारा अभिकथित रूप से अपनी पत्नी पर मिट्टी का तेल छिड़क कर आग लगाया जाना – पत्नी-मृतका को पहुंची दाह क्षतियों के कारण उसकी मृत्यु होने से पूर्व दो शासकीय प्राधिकारियों (विशेष कार्यपालक मजिस्ट्रेट और अन्वेषक अधिकारी) द्वारा दो अलग-अलग लिखित मृत्युकालिक कथन अभिलिखित किया जाना – मृतका द्वारा अपने पिता और एक अन्य साक्षी को भी दो मौखिक मृत्युकालिक कथन किया जाना – मृत्युकालिक कथनों का अवलंब लेकर अभियुक्त-अपीलार्थी को हत्या के अपराध के लिए दोषसिद्ध किया जाना – अपील में उच्च न्यायालय द्वारा लिखित मृत्युकालिक कथनों को त्यक्त किया जाना किंतु मौखिक मृत्युकालिक कथनों का अवलंब लेकर अभियुक्त की दोषसिद्धि को कायम रखा जाना – जहां न्यायालय द्वारा एक से अधिक मृत्युकालिक कथन विद्यमान होना पाया जाता है, वहां उनमें से प्रत्येक की सावधानी और सतर्कता से परीक्षा की जानी आवश्यक है और न्यायालय को केवल अपना यह समाधान करने के पश्चात् कि कौन सा मृत्युकालिक कथन संदिग्ध परिस्थितियों से मुक्त है और स्वेच्छा से किया गया प्रतीत होता है, उसे स्वीकार किया जाना चाहिए और यदि किसी मृत्युकालिक कथन में कुछ खामी पाई जाती है, तो यह अभियुक्त को दोषसिद्ध करने के लिए एकमात्र आधार नहीं हो सकता है ।

उत्तम बनाम **महाराष्ट्र राज्य** 389

– धारा 32 [सपठित भारतीय दंड संहिता, 1860 की धारा 302] – मृत्युकालिक कथन – अभियुक्त-अपीलार्थी द्वारा अभिकथित रूप से अपनी पत्नी पर मिट्टी का तेल छिड़क कर आग लगाया जाना – पत्नी-मृतका को पहुंची

पृष्ठ संख्या

दाह क्षतियों के कारण उसकी मृत्यु होने से पूर्व दो शासकीय प्राधिकारियों (विशेष कार्यपालक मजिस्ट्रेट और अन्वेषक अधिकारी) द्वारा दो अलग-अलग लिखित मृत्युकालिक कथन अभिलिखित किया जाना – मृतका द्वारा अपने पिता और एक अन्य साक्षी को भी दो मौखिक मृत्युकालिक कथन किया जाना – मृत्युकालिक कथनों का अवलंब लेकर अभियुक्त-अपीलार्थी को हत्या के अपराध के लिए दोषसिद्ध किया जाना – अपील में उच्च न्यायालय द्वारा लिखित मृत्युकालिक कथनों को त्यक्त किया जाना किंतु मौखिक मृत्युकालिक कथनों का अवलंब लेकर अभियुक्त की दोषसिद्धि को कायम रखा जाना – संधार्यता – जहां शासकीय प्राधिकारियों द्वारा लिखित में अभिलिखित किए गए मृतका के दो भिन्न-भिन्न मृत्युकालिक कथनों को उनमें खामी पाए जाने के आधार पर त्यक्त कर दिया गया हो, वहां मृतका द्वारा हितबद्ध साक्षियों को किए गए ऐसे मौखिक मृत्युकालिक कथनों के आधार पर अभियुक्त को दोषसिद्ध किया जाना उचित नहीं होगा, जो मृतका के लिखित में अभिलिखित किए गए वृत्तांत के प्रतिकूल पाए गए हों और इसलिए अभियोजन पक्ष द्वारा विश्वसनीय संपुष्टिकारी साक्ष्य प्रस्तुत करने की अपनी आबद्धता का निर्वहन करने में असफल रहने पर अभियुक्त को संदेह का फायदा देते हुए दोषमुक्त करना उचित होगा ।

उत्तम बनाम **महाराष्ट्र राज्य** 389

– धारा 32(1) [सपठित भारतीय दंड संहिता, 1860 की धारा 304ख और 498क] – मृत्युकालिक कथन – मृतका द्वारा अपने विवाह के दो वर्ष के भीतर आत्महत्या किया जाना – मृतका द्वारा अपने मृत्युकालिक कथन में

पृष्ठ संख्या

ससुराल वालों द्वारा दहेज को लेकर तंग किए जाने का कथन किया जाना – विचारण न्यायालय द्वारा धारा 304ख और धारा 498क के अधीन दोषसिद्ध किया जाना – अपील में उच्च न्यायालय द्वारा धारा 304ख के अधीन दोषसिद्धि को अपास्त और धारा 498क के अधीन दोषसिद्धि को कायम रखा जाना – धारा 304ख के अधीन अपराध के लिए दोषमुक्त किए जाने पर क्रूरता के अपराध के लिए दोषसिद्धि के संबंध में मृतका के मृत्युकालिक कथन की ग्राह्यता – कसौटी – धारा 32(1) के अधीन कथन की ग्राह्यता के लिए कसौटी यह नहीं है कि ग्रहण किए जाने वाला साक्ष्य व्यक्ति की मृत्यु से संबंधित किसी आरोप से प्रत्यक्ष रूप से संबद्ध हो या मृत्यु से संबंधित आरोप सिद्ध नहीं किया जा सका था, अपितु कसौटी यह है कि उस मामले में मृत्यु के कारण को कार्यवाही की प्रकृति को ध्यान में रखे बिना प्रश्नगत किया गया हो और वह मृत्यु से संबंधित 'संव्यवहार की परिस्थितियों' का एक भाग होना चाहिए और जहां अन्य साक्ष्य से भी मृतका के साथ क्रूरता करने के संबंध में अभियुक्त की दोषिता युक्तियुक्त संदेह के परे साबित होती है, वहां क्रूरता के अपराध के लिए उसकी दोषसिद्धि उचित है ।

सुरेन्द्रन बनाम **केरल राज्य** 339

सेवा विधि

– सेवा से पदच्युति – बैंक के उप प्रबंधक-प्रत्यर्थी द्वारा कपटपूर्ण नकदी प्रेषण के दस्तावेज तैयार करके दस लाख रुपए का दुर्विनियोग किया जाना – जांच अधिकारी द्वारा दस्तावेजी और मौखिक साक्ष्य के आधार

पृष्ठ संख्या

पर निकाले गए निष्कर्षों से सहमत होकर अनुशासनिक प्राधिकारी द्वारा अपचारी अधिकारी को सेवा से पदच्युत किया जाना – अपील प्राधिकारी द्वारा पुष्टि किया जाना – रिट याचिका में उच्च न्यायालय के एकल न्यायाधीश द्वारा पदच्युति के आदेश को अपास्त किया जाना – उच्च न्यायालय की खंड न्यायपीठ द्वारा बैंक की रिट अपील को खारिज किया जाना – संधार्यता – जहां जांच अधिकारी द्वारा दस्तावेजी व मौखिक साक्ष्य के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला गया हो कि अपचारी अधिकारी मिथ्या दस्तावेज तैयार करके धन का दुर्विनियोग करने का दोषी था और अनुशासनिक प्राधिकारी द्वारा तथ्य के साबित निष्कर्षों से सहमत होते हुए अपचारी अधिकारी को सेवा से पदच्युत किया गया और अपील प्राधिकारी द्वारा भी उसकी पुष्टि की गई, वहां उच्च न्यायालय द्वारा सेवा से पदच्युति के विरुद्ध फाइल की गई रिट याचिका में अपील न्यायालय की भांति संपूर्ण साक्ष्य का पुनर्विलोकन/पुनर्मूल्यांकन करके अपना निष्कर्ष निकालना न्यायोचित नहीं कहा जा सकता है क्योंकि उसके द्वारा ऐसे निष्कर्षों में केवल तब हस्तक्षेप किया जा सकता है, जहां नैसर्गिक न्याय के सिद्धांतों का पालन न किया गया हो या कतई कोई साक्ष्य न हो, अत: अपचारी कर्मचारी की सेवा से पदच्युति को अन्यायोचित नहीं कहा जा सकता है ।

भारतीय स्टेट बैंक और अन्य बनाम **के. एस. विश्वनाथ** 362

– सेवा से पदच्युति – बैंक के उप प्रबंधक-प्रत्यर्थी द्वारा कपटपूर्ण नकदी प्रेषण के दस्तावेज तैयार करके दस लाख रुपए का दुर्विनियोग किया जाना – जांच अधिकारी द्वारा दस्तावेजी और मौखिक साक्ष्य के आधार

पृष्ठ संख्या

पर निकाले गए निष्कर्षों से सहमत होकर अनुशासनिक प्राधिकारी द्वारा अपचारी अधिकारी को सेवा से पदच्युत किया जाना – अपील प्राधिकारी द्वारा पुष्टि किया जाना – अपचारी कर्मचारी को दांडिक कार्यवाहियों में दंड न्यायालय द्वारा संदेह का फायदा देते हुए दोषमुक्त किया जाना – चूंकि दांडिक मामले और अनुशासनिक कार्यवाहियों में अपेक्षित सबूत के मानदंड भिन्न-भिन्न हैं इसलिए यदि किसी अपचारी कर्मचारी को दांडिक कार्यवाहियों में संदेह का फायदा देते हुए दोषमुक्त कर दिया गया है, तो इससे संपूर्ण अनुशासनिक कार्यवाहियां अविधिमान्य नहीं हो जाएंगी और न ही दोषिता के निष्कर्ष या पारिणामिक दंड की विधिमान्यता पर कोई प्रभाव पड़ेगा ।

भारतीय स्टेट बैंक और अन्य बनाम **के. एस. विश्वनाथ** 362

– कांस्टेबल के पद पर नियुक्ति – अभ्यर्थी द्वारा अपने आवेदन पत्र में अपने आपराधिक पूर्ववृत्त को छिपाया जाना और मिथ्या कथन किया जाना – अभ्यर्थी-प्रत्यर्थी की अभ्यर्थिता को नामंजूर किया जाना – अभ्यर्थी द्वारा उच्च न्यायालय में रिट याचिका फाइल किया जाना – उच्च न्यायालय द्वारा अभ्यर्थी के विरुद्ध अपराधों को तुच्छ प्रकृति का होना अभिनिर्धारित करते हुए राज्य को कांस्टेबल के पद के लिए उसकी अभ्यर्थिता पर विचार किए जाने का निदेश दिया जाना – संधार्यता – चूंकि एक कांस्टेबल का कर्तव्य विधि और व्यवस्था बनाए रखना होता है इसलिए यह प्रत्याशा की जाती है कि वह ईमानदार, भरोसेमंद, विश्वसनीय और निष्ठावान हो, इसलिए जहां ऐसे पद के लिए अभ्यर्थी द्वारा आरंभ में ही अपने आपराधिक पूर्ववृत्त को छिपाया

पृष्ठ संख्या

गया हो और आवेदन पत्र में मिथ्या विवरण दिया गया हो, वहां प्राधिकारियों द्वारा ऐसे अभ्यर्थी के आवेदन पत्र को नामंजूर करना न्यायोचित कहा जा सकता है ।

राजस्थान राज्य और अन्य बनाम **चेतन जेफ** 317

तुलनात्मक सारणी

उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका

[2022] 2 उम. नि. प.

अप्रैल-जून, 2022

क्र. सं.	निर्णय का नाम व तारीख	उम. नि. प.		ए. आई. आर. (एस. सी.)		एस. सी. सी.	
1	2	3		4		5	
1.	बैंक ऑफ बड़ौदा **बनाम** मैसर्स कारवा ट्रेडिंग कंपनी और एक अन्य (10 फरवरी, 2022)	[2022] 2	1	2022	1209	(2022) 5	168
2.	आबिद-उल-इस्लाम **बनाम** इन्द्र सेन दुआ (7 अप्रैल, 2022)		23		1778	6	30
3.	भारत संघ और अन्य **बनाम** एम. दुरईसामी (19 अप्रैल, 2022)		60		2002	7	475
4.	मोहम्मद फ़िरोज **बनाम** मध्य प्रदेश राज्य (19 अप्रैल, 2022)		74		1967	7	443

1	2	3		4		5	
5.	देवेन्द्र सिंह और अन्य **बनाम** उत्तराखंड राज्य (21 अप्रैल, 2022)	[2022] 2	118	2022	–	(2022)	–
6.	अनुज सिंह **उर्फ** रामानुज सिंह **उर्फ** सेठ सिंह **बनाम** बिहार राज्य (22 अप्रैल, 2022)		142		–	–	–
7.	राजस्थान राज्य **बनाम** बनवारी लाल और एक अन्य (8 अप्रैल, 2022)		159		–	7	628
8.	भारत संघ और अन्य **बनाम** आशीष अग्रवाल (4 मई, 2022)		180		2781	–	–
9.	स्वदेश कुमार अग्रवाल **बनाम** दिनेश कुमार अग्रवाल और अन्य (5 मई, 2022)		212		2193	10	235
10.	ए. जी. पेरारीवलन **बनाम** राज्य मार्फत पुलिस अधीक्षक, केंद्रीय अन्वेषण ब्यूरो/एसआईटी/एमडीएमए, चेन्नई, तमिलनाडु और एक अन्य (18 मई, 2022)		251		2608	–	–
11.	साबित्री सामंत्रे **बनाम** उड़ीसा राज्य (20 मई, 2022)		278		2591	–	–

1	2	3	4	5
12.	चंद्रपाल **बनाम** छत्तीसगढ़ राज्य (पूर्वतर में मध्य प्रदेश) (27 मई, 2022)	[2022] 2 294	2022 2542	(2022) –
13.	राजस्थान राज्य और अन्य **बनाम** चेतन जेफ (11 मई, 2022)	317	2274	– –
14.	सुरेन्द्रन **बनाम** केरल राज्य (13 मई, 2022)	339	2322	– –
15.	भारतीय स्टेट बैंक और अन्य **बनाम** के. एस. विश्वनाथ (20 मई, 2022)	362	–	– –
16.	उत्तम **बनाम** महाराष्ट्र राज्य (2 जून, 2022)	389	–	8 576
17.	महेन्द्र सिंह और अन्य **बनाम** मध्य प्रदेश राज्य (3 जून, 2022)	425	2631	7 157
18.	भारत भूषण गुप्ता **बनाम** प्रताप नारायण वर्मा और एक अन्य (16 जून, 2022)	438	2867	8 333

(xiv) (xv) (xvi)

[2022] 2 उम. नि. प. 317

राजस्थान राज्य और अन्य

बनाम

चेतन जेफ

[2022 की सिविल अपील सं. 3116]

11 मई, 2022

न्यायमूर्ति एम. आर. शाह और न्यायमूर्ति बी. वी. नागरत्ना

सेवा विधि – कांस्टेबल के पद पर नियुक्ति – अभ्यर्थी द्वारा अपने आवेदन पत्र में अपने आपराधिक पूर्ववृत्त को छिपाया जाना और मिथ्या कथन किया जाना – अभ्यर्थी-प्रत्यर्थी की अभ्यर्थिता को नामंजूर किया जाना – अभ्यर्थी द्वारा उच्च न्यायालय में रिट याचिका फाइल किया जाना – उच्च न्यायालय द्वारा अभ्यर्थी के विरुद्ध अपराधों को तुच्छ प्रकृति का होना अभिनिर्धारित करते हुए राज्य को कांस्टेबल के पद के लिए उसकी अभ्यर्थिता पर विचार किए जाने का निदेश दिया जाना – संधार्यता – चूंकि एक कांस्टेबल का कर्तव्य विधि और व्यवस्था बनाए रखना होता है, इसलिए यह प्रत्याशा की जाती है कि वह ईमानदार, भरोसेमंद, विश्वसनीय और निष्ठावान हो, इसलिए जहां ऐसे पद के लिए अभ्यर्थी द्वारा आरंभ में ही अपने आपराधिक पूर्ववृत्त को छिपाया गया हो और आवेदन पत्र में मिथ्या विवरण दिया गया हो, वहां प्राधिकारियों द्वारा ऐसे अभ्यर्थी के आवेदन पत्र को नामंजूर करना न्यायोचित कहा जा सकता है ।

इस मामले के तथ्य इस प्रकार हैं कि राजस्थान पुलिस के विभिन्न जिलों/बटालियनों/इकाइयों में कांस्टेबल (सामान्य), कांस्टेबल (ऑपरेटर), कांस्टेबल (ड्राइवर) और कांस्टेबल (बैंड) के 4684 रिक्त पदों की भर्ती के लिए पुलिस महानिदेशक, राजस्थान, जयपुर द्वारा तारीख 7 अप्रैल,

2018 के पत्र द्वारा आवेदन आमंत्रित किए गए थे । 2008 की भर्ती अधिसूचना के अनुसार, कांस्टेबल के विभिन्न पदों के लिए नियुक्ति प्राप्त करने के लिए सभी इच्छुक अभ्यर्थियों को लिखित परीक्षा, शारीरिक दक्षता परीक्षा, प्रवीणता परीक्षा, विशेष योग्यता परीक्षा और साक्षात्कार में उत्तीर्ण होना आवश्यक था । उक्त अधिसूचना के पैरा 9(ड.) के अनुसार, अभ्यर्थियों को अपने आवेदन पत्रों में सही जानकारी भरना अपेक्षित था । इसमें यह उपबंध किया गया था कि यदि आवेदन पत्र में दी गई जानकारी गलत और अधूरी पाई जाती है, तो ऐसे आवेदन पत्र को चयन प्रक्रिया के किसी भी प्रक्रम पर नामंजूर किया जा सकता है । प्रत्यर्थी ने उक्त पद के लिए आवेदन करते हुए आवेदन पत्र प्रस्तुत किया था । प्रत्यर्थी ने तारीख 26 अप्रैल, 2008 के नौकरी के लिए आवेदन पत्र के स्तंभ सं. 15 में स्पष्ट रूप से यह उल्लेख किया था कि उसका कोई आपराधिक रिकार्ड नहीं है । उसने यह भी उल्लेख किया था कि उसके विरुद्ध कोई प्रथम इत्तिला रिपोर्ट या आपराधिक मामले लंबित नहीं हैं । उसने आवेदन पत्र के साथ यह उल्लेख करते हुए हस्ताक्षरित घोषणा भी संलग्न की थी कि तारीख 26 अप्रैल, 2008 के नौकरी के लिए आवेदन पत्र के पैरा 15 में प्रकट की गई जानकारी सही है और उसके द्वारा किसी आपराधिक रिकार्ड को छिपाया नहीं गया है । मूल रिट याची ने लिखित परीक्षा के साथ-साथ शारीरिक परीक्षा को भी उत्तीर्ण कर लिया । इस प्रक्रम पर यह उल्लेख किया जाना आवश्यक है कि मूल रिट याची पहले से ही भारतीय दंड संहिता की धारा 143, 341 और 336 के अधीन दंडनीय अपराधों के लिए पुलिस थाना, नीम का थाना में उसके विरुद्ध रजिस्ट्रीकृत 2007 की प्रथम इत्तिला रिपोर्ट सं. 458 में आपराधिक कार्यवाहियों का सामना कर रहा था । तथापि, उसके द्वारा नौकरी के लिए आवेदन पत्र में इसका कोई प्रकटन नहीं किया गया था । इस प्रकार, उसने अपने विरुद्ध लंबित प्रथम इत्तिला रिपोर्ट/आपराधिक मामले के बारे में तात्विक तथ्य को छिपाया था । पुलिस अधीक्षक, जिला सीकर ने पुलिस अधीक्षक, हनुमान गढ़ को तारीख 21 अगस्त, 2008 की संसूचना द्वारा उक्त 2007 की प्रथम इत्तिला रिपोर्ट सं. 458 के बारे में सूचित किया था । उक्त सूचना के आधार पर, मूल रिट याची की अभ्यर्थिता को इस आधार पर नामंजूर

कर दिया कि मूल रिट याची ने स्तंभ सं. 15 में अपने आपराधिक पूर्ववृत्त के बारे में तात्विक तथ्य को छिपाया था और नौकरी के लिए आवेदन पत्र में गलत कथन किया था । मूल रिट याची ने अपनी अभ्यर्थिता की नामंजूरी से व्यथित होकर उच्च न्यायालय के विद्वान् एकल न्यायाधीश के समक्ष सिविल रिट याचिका प्रस्तुत की । प्रत्यर्थी-मूल रिट याची के विरुद्ध पुलिस थाना, नीम का थाना, सीकर में भारतीय दंड संहिता की धारा 147, 148, 149, 452, 380, 352, 427 के अधीन दंडनीय अपराधों के लिए तारीख 27 जनवरी, 2012 की एक अन्य प्रथम इत्तिला रिपोर्ट सं. 102/2012 रजिस्ट्रीकृत थी । विद्वान् विचारण न्यायालय ने तारीख 30 जुलाई, 2015 के निर्णय और आदेश द्वारा उसे भारतीय दंड संहिता की धारा 149 के साथ पठित धारा 352 के अधीन अपराधों के लिए पक्षकारों के बीच हुए समझौते को दृष्टिगत करते हुए दोषमुक्त कर दिया था । भारतीय दंड संहिता की धारा 149 के साथ पठित धारा 147, 148, 455, 440 के अधीन अपराधों के लिए मूल याची को संदेह का फायदा देते हुए दोषमुक्त कर दिया गया था । तथापि, विद्वान् अपर मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, नीम का थाना, सीकर ने तारीख 21 जनवरी, 2016 के निर्णय और आदेश द्वारा मूल रिट याची को भारतीय दंड संहिता की धारा 34 के साथ पठित धारा 341 और 323 के अधीन दंडनीय अपराधों के लिए दोषसिद्ध किया था । तथापि, उसे अपराधी परिवीक्षा अधिनियम, 1958 का फायदा दिया गया । विद्वान् एकल न्यायाधीश ने पूर्वोक्त रिट याचिका को मंजूर किया और राज्य को कांस्टेबल के पद के लिए मूल रिट याची के मामले पर विचार करने का निदेश दिया । विद्वान् एकल न्यायाधीश द्वारा सिविल रिट याचिका मंजूर करते हुए और कांस्टेबल के पद के लिए मूल रिट याची के मामले पर विचार करने के लिए राज्य को निदेश देते हुए पारित किए गए निर्णय और आदेश से व्यथित और असंतुष्ट होकर राज्य ने उच्च न्यायालय की खंड न्यायपीठ के समक्ष रिट अपील फाइल की । उच्च न्यायालय की खंड न्यायपीठ द्वारा उक्त अपील खारिज कर दी गई और विद्वान् एकल न्यायाधीश द्वारा पारित किए गए उस निर्णय और आदेश की पुष्टि की, जिसके द्वारा विद्वान् एकल न्यायाधीश ने राज्य को कांस्टेबल के रूप में नियुक्ति के लिए मूल रिट

याची के मामले पर विचार करने के लिए निदेश दिया था । इसी बीच, मूल रिट याची को 2018 की प्रथम इत्तिला रिपोर्ट सं. 505 के संबंध में भारतीय दंड संहिता की धारा 341, 323, 382 और 427 के अधीन दंडनीय अपराधों के लिए आरोप-पत्रित किया गया था । उच्च न्यायालय की खंड न्यायपीठ द्वारा रिट अपील को खारिज करते हुए और विद्वान् एकल न्यायाधीश द्वारा कांस्टेबल के रूप में नियुक्ति के लिए मूल रिट याची के मामले पर विचार करने के लिए अपीलार्थी-राज्य को निदेश देते हुए पारित किए गए निर्णय और आदेश की पुष्टि करते हुए पारित किए गए आक्षेपित निर्णय और आदेश से व्यथित और असंतुष्ट होकर राज्य द्वारा उच्चतम न्यायालय में अपील फाइल की गई । उच्चतम न्यायालय द्वारा अपील मंजूर करते हुए,

अभिनिर्धारित – कांस्टेबल का कर्तव्य विधि और व्यवस्था बनाए रखना है । इसलिए यह प्रत्याशा की जाती है कि वह ईमानदार, भरोसेमंद होना चाहिए और उसकी सत्यनिष्ठा निष्कपट हो और वह विश्वसनीय हो । वर्दीधारी सेवा में के कर्मचारी से उच्च स्तर की ईमानदारी का पूर्वानुमान किया जाता है क्योंकि ऐसे व्यक्ति से विधि को कायम रखने की प्रत्याशा की जाती है और इसके विपरीत छल और कपट के किसी कार्य को बर्दाश्त नहीं किया जा सकता है । वर्तमान मामले में, मूल रिट याची ने उपरोक्त प्रत्याशाओं/अपेक्षाओं की पुष्टि नहीं की है । उसने अपने आपराधिक पूर्ववृत्त के तात्विक तथ्यों को छिपाया था । उसने आवेदन पत्र में यह प्रकटन नहीं किया था कि उसके विरुद्ध एक आपराधिक मामला/प्रथम इत्तिला रिपोर्ट लंबित है । इसके विपरीत, उसने आवेदन पत्र में यह मिथ्या कथन किया था कि वह किसी आपराधिक मामले का सामना नहीं कर रहा है । अत: पूर्वोक्त तथ्यों के छिपाने के कारण समुचित प्राधिकारी द्वारा उसकी अभ्यर्थिता को नामंजूर कर दिया गया था । उपरोक्त के बावजूद, विद्वान् एकल न्यायाधीश ने रिट याची की याचिका मंजूर की और राज्य को कांस्टेबल के रूप में नियुक्ति के लिए मूल रिट याची के मामले पर मुख्य रूप से इस आधार पर विचार करने का निदेश दिया कि अपराध तुच्छ प्रकृति के थे और ऐसे अपराधों को छिपाने की बात की अनदेखी की जानी चाहिए । इसकी पुष्टि खंड

न्यायपीठ द्वारा की गई है । प्रश्न यह नहीं है कि अपराध तुच्छ प्रकृति के थे या नहीं । प्रश्न मूल रिट याची द्वारा अपने आपराधिक पूर्ववृत्त के संबंध में तात्विक तथ्य को छिपाने और आवेदन पत्र में एक मिथ्या कथन करने का है । यदि उसने आरंभ में ही अपने आपराधिक पूर्ववृत्त के संबंध में तात्विक तथ्य को छिपाया है और वास्तव में एक गलत कथन किया है, तो उसे कांस्टेबल के रूप में कैसे नियुक्त किया जा सकता है । भविष्य में उस पर कैसे भरोसा किया जा सकता है ? यह प्रत्याशा कैसे की जा सकती है कि उसके पश्चात् वह अपना कर्तव्य ईमानदारी और सत्यनिष्ठा से निभाएगा ? अत: प्राधिकारियों ने कांस्टेबल के पद के लिए प्रत्यर्थी की अभ्यर्थिता को नामंजूर करके न्यायोचित किया था । अन्यथा भी यह उल्लेख किया जाना आवश्यक है कि बाद में और विद्वान् एकल न्यायाधीश के साथ-साथ खंड न्यायपीठ के समक्ष कार्यवाहियों के दौरान मूल रिट याची के विरुद्ध फाइल की गई तीन से चार अन्य प्रथम इत्तिला रिपोर्टें थीं, जिनके परिणामस्वरूप आपराधिक विचारण चल रहा था और दो मामलों में उसे समझौते के आधार पर दोषमुक्त कर दिया गया था और एक मामले में यद्यपि दोषसिद्ध किया गया था, किंतु उसे अपराधी परिवीक्षा अधिनियम का फायदा प्रदान किया गया था । उसके विरुद्ध एक और आपराधिक मामला लंबित है । अत: मूल रिट याची को कांस्टेबल के ऐसे पद पर नियुक्त नहीं किया जा सकता है ।

निर्दिष्ट निर्णय

		पैरा
[2021]	(2021) 10 एस. सी. सी. 136 : **राजस्थान राज्य विद्युत प्रसारण निगम लि.** बनाम **अनिल कंवरिया** ;	6.11
[2018]	(2018) 18 एस. सी. सी. 733 : **मध्य प्रदेश राज्य** बनाम **अभिजीत सिंह पवार** ;	6.9
[2016]	(2016) 8 एस. सी. सी. 471 : **अवतार सिंह** बनाम **भारत संघ** ;	4.3, 6.9

[2013]	(2013) 9 एस. सी. सी. 363 : **देवेन्द्र कुमार** बनाम **उत्तरांचल राज्य** ;	6.6
[2012]	(2012) 8 एस. सी. सी. 748 : **जैनेन्द्र सिंह** बनाम **उत्तर प्रदेश राज्य** ;	6.7
[2010]	(2010) 14 एस. सी. सी. 103 : **दया शंकर यादव** बनाम **भारत संघ** ;	4.3, 6.8
[2005]	(2005) 2 एस. सी. सी. 746 : **आंध्र प्रदेश राज्य** बनाम **चिन्नम नायडू** ।	6.5

अपीली (सिविल) अधिकारिता : 2022 की सिविल अपील सं. 3116.

2018 की खंड न्यायपीठ विशेष अपील सं. 1479 में राजस्थान उच्च न्यायालय द्वारा तारीख 4 मार्च, 2020 को पारित निर्णय और आदेश के विरुद्ध अपील ।

अपीलार्थियों की ओर से सर्वश्री डा. मनीष सिंघवी, ज्येष्ठ अधिवक्ता और संदीप कुमार झा

प्रत्यर्थी की ओर से श्री रामेश्वर प्रसाद गोयल

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति एम. आर. शाह ने दिया ।

न्या. शाह – 2018 की खंड न्यायपीठ विशेष अपील सं. 1479 में राजस्थान उच्च न्यायालय की जयपुर न्यायपीठ द्वारा तारीख 4 मार्च, 2020 को पारित उस आक्षेपित निर्णय और आदेश से व्यथित और असंतुष्ट होकर राज्य ने वर्तमान अपील फाइल की है, जिसके द्वारा उच्च न्यायालय ने राजस्थान राज्य द्वारा की गई अपील को खारिज कर दिया था और राज्य को कांस्टेबल (सामान्य) के पद पर नियुक्ति के लिए प्रत्यर्थी-मूल याची के मामले पर विचार करने का निदेश देते हुए विद्वान् एकल न्यायाधीश द्वारा पारित निर्णय और आदेश की पुष्टि की है ।

2. वर्तमान मामले से जुड़े तथ्य संक्षेप में नीचे इस प्रकार हैं ।

2.1 राजस्थान पुलिस के विभिन्न जिलों/बटालियनों/इकाइयों में

कांस्टेबल (सामान्य), कांस्टेबल (ऑपरेटर), कांस्टेबल (ड्राइवर) और कांस्टेबल (बैंड) के 4684 रिक्त पदों की भर्ती के लिए पुलिस महानिदेशक, राजस्थान, जयपुर द्वारा तारीख 7 अप्रैल, 2018 के पत्र द्वारा आवेदन आमंत्रित किए गए थे । 2008 की भर्ती अधिसूचना के अनुसार, कांस्टेबल के विभिन्न पदों के लिए नियुक्ति प्राप्त करने के लिए सभी इच्छुक अभ्यर्थियों को लिखित परीक्षा, शारीरिक दक्षता परीक्षा, प्रवीणता परीक्षा, विशेष योग्यता परीक्षा और साक्षात्कार में उत्तीर्ण होना आवश्यक था । उक्त अधिसूचना के पैरा 9(ड.) के अनुसार, अभ्यर्थियों को अपने आवेदन पत्रों में सही जानकारी भरना अपेक्षित था । इसमें यह उपबंध किया गया था कि यदि आवेदन पत्र में दी गई जानकारी गलत और अधूरी पाई जाती है, तो ऐसे आवेदन पत्र को चयन प्रक्रिया के किसी भी प्रक्रम पर नामंजूर किया जा सकता है । प्रत्यर्थी ने उक्त पद के लिए आवेदन करते हुए आवेदन पत्र प्रस्तुत किया था । इस अपील में प्रत्यर्थी (जिसे इसमें इसके पश्चात् रिट याची कहा गया है) ने तारीख 26 अप्रैल, 2008 के नौकरी के लिए आवेदन पत्र के स्तंभ सं. 15 में स्पष्ट रूप से यह उल्लेख किया था कि उसका कोई आपराधिक रिकार्ड नहीं है । उसने यह भी उल्लेख किया था कि उसके विरुद्ध कोई प्रथम इत्तिला रिपोर्ट या आपराधिक मामले लंबित नहीं हैं । उसने आवेदन पत्र के साथ यह उल्लेख करते हुए हस्ताक्षरित घोषणा भी संलग्न की थी कि तारीख 26 अप्रैल, 2008 के नौकरी के लिए आवेदन पत्र के पैरा 15 में प्रकट की गई जानकारी सही है और उसके द्वारा किसी आपराधिक रिकार्ड को छिपाया नहीं गया है ।

2.2 मूल रिट याची ने लिखित परीक्षा के साथ-साथ शारीरिक परीक्षा को भी उत्तीर्ण कर लिया । इस प्रक्रम पर यह उल्लेख किया जाना आवश्यक है कि मूल रिट याची पहले से ही भारतीय दंड संहिता की धारा 143, 341 और 336 के अधीन दंडनीय अपराधों के लिए पुलिस थाना, नीम का थाना में उसके विरुद्ध रजिस्ट्रीकृत 2007 की प्रथम इत्तिला रिपोर्ट सं. 458 में आपराधिक कार्यवाहियों का सामना कर रहा था । तथापि, उसके द्वारा नौकरी के लिए आवेदन पत्र में इसका कोई प्रकटन नहीं किया गया था । इस प्रकार, उसने अपने विरुद्ध लंबित प्रथम

इत्तिला रिपोर्ट/आपराधिक मामले के बारे में तात्विक तथ्य को छिपाया था ।

2.3 पुलिस अधीक्षक, जिला सीकर ने पुलिस अधीक्षक, हनुमान गढ़ को तारीख 21 अगस्त, 2008 की संसूचना द्वारा उक्त 2007 की प्रथम इत्तिला रिपोर्ट सं. 458 के बारे में सूचित किया था । उक्त सूचना के आधार पर, मूल रिट याची की अभ्यर्थिता को इस आधार पर नामंजूर कर दिया कि मूल रिट याची ने स्तंभ सं. 15 में अपने आपराधिक पूर्ववृत्त के बारे में तात्विक तथ्य को छिपाया था और नौकरी के लिए आवेदन पत्र में गलत कथन किया था ।

2.4 मूल रिट याची ने अपनी अभ्यर्थिता की नामंजूरी से व्यथित होकर उच्च न्यायालय के विद्वान् एकल न्यायाधीश के समक्ष 2008 की सिविल रिट याचिका सं. 10250 के द्वारा रिट याचिका प्रस्तुत की । यह प्रतीत होता है कि मूल रिट याची के विरुद्ध पुलिस थाना, नीम का थाना, सीकर में भारतीय दंड संहिता की धारा 147, 148, 149, 452, 380, 352, 427 के अधीन दंडनीय अपराधों के लिए तारीख 27 जनवरी, 2012 की एक अन्य प्रथम इत्तिला रिपोर्ट सं. 102/2012 रजिस्ट्रीकृत थी । विद्वान् विचारण न्यायालय ने तारीख 30 जुलाई, 2015 के निर्णय और आदेश द्वारा उसे भारतीय दंड संहिता की धारा 149 के साथ पठित धारा 352 के अधीन अपराधों के लिए पक्षकारों के बीच हुए समझौते को दृष्टिगत करते हुए दोषमुक्त कर दिया था । भारतीय दंड संहिता की धारा 149 के साथ पठित धारा 147, 148, 455, 440 के अधीन अपराधों के लिए मूल याची को संदेह का फायदा देते हुए दोषमुक्त कर दिया गया था । तथापि, विद्वान् अपर मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, नीम का थाना, सीकर ने तारीख 21 जनवरी, 2016 के निर्णय और आदेश द्वारा मूल रिट याची को भारतीय दंड संहिता की धारा 34 के साथ पठित धारा 341 और 323 के अधीन दंडनीय अपराधों के लिए दोषसिद्ध किया था । तथापि, उसे अपराधी परिवीक्षा अधिनियम, 1958 का फायदा दिया गया ।

2.5 विद्वान् एकल न्यायाधीश ने तारीख 12 मार्च, 2018 के निर्णय और आदेश द्वारा पूर्वोक्त रिट याचिका को मंजूर किया और

राज्य को कांस्टेबल के पद के लिए मूल रिट याची के मामले पर, अन्य बातों के साथ-साथ, निम्नलिखित आधारों पर विचार करने का निदेश दिया :–

> "1. यह कि पक्षकार अभिलेख पर यह दर्शित करने के लिए कोई सामग्री प्रस्तुत करने में असफल रहे थे कि प्रत्यर्थी ने तारीख 26 अप्रैल, 2008 के कथित नौकरी के आवेदन पत्र के स्तंभ 15 में आपराधिक पूर्ववृत्त के संबंध में जानकारी को छिपाया था ।
>
> 2. यह कि प्रस्तुत मामले में प्रत्यर्थी को जिन अपराधों से आरोपित किया गया था, वे तुच्छ प्रकृति के थे और प्रत्यर्थी द्वारा ऐसे अपराधों को छिपाने की बात को याचियों द्वारा अनदेखा किया जाना चाहिए । पूर्वोक्त प्रतिपादना को सिद्ध करने के लिए, माननीय उच्च न्यायालय ने अवतार सिंह **बनाम** भारत संघ और अन्य [(2016) 8 एस. सी. सी. 471] वाले मामले में के निर्णय का अवलंब लिया ।
>
> 3. यह कि भंजा राज **बनाम** राजस्थान राज्य और अन्य (2008 की एस. बी. सिविल रिट याचिका सं. 6884) वाले मामले में तारीख 1 मार्च, 2007 का निर्णय उक्त रिट याचिका में वर्णित तथ्यों को पूरी तरह से लागू होता है ।"

2.6 मूल रिट याची के विरुद्ध भारतीय दंड संहिता की धारा 341 और 323 के अधीन दंडनीय अपराधों के लिए तारीख 5 सितंबर, 2018 की तीसरी प्रथम इत्तिला रिपोर्ट सं. 348/2018 पुलिस थाना, नीम का थाना, सीकर में रजिस्ट्रीकृत की गई थी ।

2.7 विद्वान् एकल न्यायाधीश द्वारा 2008 की सिविल रिट याचिका सं. 10250 मंजूर करते हुए और कांस्टेबल के पद के लिए मूल रिट याची के मामले पर विचार करने के लिए राज्य को निदेश देते हुए पारित किए गए निर्णय और आदेश से व्यथित और असंतुष्ट होकर राज्य ने उच्च न्यायालय की खंड न्यायपीठ के समक्ष रिट अपील फाइल की ।

2.8 रिट अपील के लंबित रहने के दौरान, विद्वान् अपर मुख्य

न्यायिक मजिस्ट्रेट, नीम का थाना, सीकर ने तारीख 9 सितंबर, 2019 के निर्णय और आदेश द्वारा मूल रिट याची को 2018 की प्रथम इत्तिला रिपोर्ट सं. 348 में पक्षकारों के बीच हुए समझौते को दृष्टिगत करते हुए भारतीय दंड संहिता की धारा 341 और 323 के अधीन दंडनीय अपराधों के लिए दोषमुक्त कर दिया ।

2.9 मूल रिट याची के विरुद्ध भारतीय दंड संहिता की धारा 341, 323, 382 और 427 के अधीन दंडनीय अपराधों के लिए तारीख 20 दिसंबर, 2018 की एक अन्य प्रथम इत्तिला रिपोर्ट सं. 505/2018 नीम का थाना, सीकर में रजिस्ट्रीकृत की गई थी ।

2.10 उपरोक्त के बावजूद, उच्च न्यायालय की खंड न्यायपीठ ने तारीख 4 मार्च, 2020 के आक्षेपित निर्णय और आदेश द्वारा उक्त अपील खारिज कर दी और विद्वान् एकल न्यायाधीश द्वारा पारित किए गए उस निर्णय और आदेश की पुष्टि की, जिसके द्वारा विद्वान् एकल न्यायाधीश ने राज्य को कांस्टेबल के रूप में नियुक्ति के लिए मूल रिट याची के मामले पर विचार करने के लिए निदेश दिया था । इसी बीच, मूल रिट याची को 2018 की प्रथम इत्तिला रिपोर्ट सं. 505 के संबंध में भारतीय दंड संहिता की धारा 341, 323, 382 और 427 के अधीन दंडनीय अपराधों के लिए आरोप-पत्रित किया गया था ।

2.11 उच्च न्यायालय की खंड न्यायपीठ द्वारा रिट अपील को खारिज करते हुए और विद्वान् एकल न्यायाधीश द्वारा कांस्टेबल के रूप में नियुक्ति के लिए मूल रिट याची के मामले पर विचार करने के लिए अपीलार्थी-राज्य को निदेश देते हुए पारित किए गए निर्णय और आदेश की पुष्टि करते हुए पारित किए गए आक्षेपित निर्णय और आदेश से व्यथित और असंतुष्ट होकर राज्य ने वर्तमान अपील फाइल की है ।

3. हमने राजस्थान राज्य की ओर से हाजिर होने वाले विद्वान् ज्येष्ठ अधिवक्ता डा. मनीष सिंघवी और अपर महाधिवक्ता तथा मूल रिट याची की ओर से हाजिर होने वाले विद्वान् काउंसेल श्री आर. के. शुक्ला को सुना ।

4. विद्वान् ज्येष्ठ अधिवक्ता, डा. मनीष सिंघवी ने जोरदार रूप से

यह दलील दी कि उन आपराधिक पूर्ववृत्तों पर विचार करते हुए जो मूल रिट याची द्वारा छिपाए गए थे, विद्वान् एकल न्यायाधीश तथा खंड न्यायपीठ दोनों ने अपीलार्थी-राज्य को कांस्टेबल के रूप में नियुक्ति के लिए मूल रिट याची के रूप में विचार करने का निदेश देने में गंभीर गलती की है ।

4.1 राजस्थान राज्य की ओर से हाजिर होने वाले विद्वान् ज्येष्ठ अधिवक्ता, डा. मनीष सिंघवी द्वारा यह दलील दी गई कि इसके बावजूद कि मूल रिट याची के नौकरी के लिए आवेदन पत्र के स्तंभ 15, जिसके द्वारा आपराधिक पूर्ववृत्त के सही और सत्य तथ्यों का उल्लेख करने की अपेक्षा की गई थी और इस तथ्य के बावजूद कि वह 2007 की प्रथम इत्तिला रिपोर्ट सं. 458 के द्वारा दांडिक अभियोजन का सामना कर रहा था, मूल रिट याची ने इन तथ्यों को छिपाया था और इनका प्रकटन नहीं किया था । यह दलील दी गई कि इसके विपरीत "क्या आवेदक के विरुद्ध कोई आपराधिक मामला रजिस्ट्रीकृत किया गया है ?" के स्तंभ में उसने "नहीं" कहा था ।

4.2 अत: यह दलील दी गई कि जब अभ्यर्थी ने आरंभिक प्रक्रम पर ही सही और सत्य तथ्यों का उल्लेख नहीं किया था और तात्विक तथ्यों को छिपाया था, वह कांस्टेबल के पद पर नियुक्त किए जाने का हकदार नहीं है ।

4.3 यह दलील दी गई कि कांस्टेबल, जिसका कर्तव्य विधि और व्यवस्था बनाए रखना है, वह सर्वप्रथम ईमानदार होना चाहिए । यह दलील दी गई कि कोई अभ्यर्थी, जिसने आरंभिक प्रक्रम पर और यहां तक कि कांस्टेबल के रूप में नियुक्ति प्राप्त करने से पूर्व ही आपराधिक पूर्ववृत्त होने के तात्विक तथ्यों को छिपाया है और उसने आवेदन पत्र में एक मिथ्या कथन किया है, उस पर कैसे भरोसा किया जा सकता है और एक कांस्टेबल के रूप में कैसे नियुक्त किया जा सकता है ? यह दलील दी गई कि इसलिए राज्य ने कांस्टेबल के रूप में उसकी अभ्यर्थिता को नामंजूर करके न्यायोचित किया था । **अवतार सिंह** बनाम **भारत संघ**[1]

[1] (2016) 8 एस. सी. सी. 471.

तथा **दया शंकर यादव** बनाम **भारत संघ**[1] वाले मामले में इस न्यायालय के विनिश्चयों का अवलंब लिया गया ।

4.4 राज्य की ओर से विद्वान् ज्येष्ठ अधिवक्ता, डा. मनीष सिंघवी द्वारा यह दलील दी गई कि अन्यथा भी और खंड न्यायपीठ द्वारा रिट अपील का विनिश्चय किए जाने तक मूल रिट याची तीन से चार और प्रथम इत्तिला रिपोर्टों का सामना कर रहा था, जिनमें से दो मामलों में समझौता करके वह दोषमुक्त हो गया था और एक मामले में उसे दोषसिद्ध किया गया है, तथापि, उसमें अपराधी परिवीक्षा अधिनियम का फायदा दिया गया है । यह दलील दी गई कि एक आपराधिक मामला अभी भी उसके विरुद्ध लंबित है । ऐसे व्यक्ति को कांस्टेबल के रूप में नियुक्त नहीं किया जा सकता है । अत: यह अनुरोध किया जाता है कि इस न्यायालय को पश्चात्वर्ती घटनाओं पर भी अवश्य विचार करना चाहिए ।

5. मूल रिट याची की ओर से हाजिर होने वाले विद्वान् काउंसेल, श्री आर. के. शुक्ला द्वारा इस अपील का विरोध किया गया ।

5.1 मूल रिट याची की ओर से हाजिर होने वाले विद्वान् काउंसेल, श्री आर. के. शुक्ला द्वारा जोरदार रूप से यह दलील दी गई कि यह पाए जाने पर कि मूल रिट याची के विरुद्ध अपराध तुच्छ प्रकृति के थे और उसे दोषमुक्त कर दिया गया था तथा एक मामले में उसे अपराधी परिवीक्षा अधिनियम का फायदा प्रदान किया गया है, उच्च न्यायालय के विद्वान् एकल न्यायाधीश तथा खंड न्यायपीठ, दोनों ने राज्य को कांस्टेबल के पद के लिए मूल रिट याची के मामले पर विचार करने का ठीक ही निदेश दिया है ।

5.2 यह दलील दी गई कि जब विद्वान् एकल न्यायाधीश तथा खंड न्यायपीठ, दोनों ने ठोस कारण देते हुए कांस्टेबल के पद के लिए मूल रिट याची के मामले पर विचार करने के लिए राज्य को निदेश देने पर सहमति व्यक्त की है, तो इस न्यायालय द्वारा भारत के संविधान के अनुच्छेद 136 के अधीन शक्तियों का प्रयोग करते हुए इसमें हस्तक्षेप

---

[1] (2010) 14 एस. सी. सी. 103.

नहीं किया जा सकता है ।

6. हमने संबंधित पक्षकारों की ओर से हाजिर होने वाले विद्वान् काउंसेलों को विस्तारपूर्वक सुना ।

6.1 प्रारंभ में, यह उल्लेख किया जाना आवश्यक है कि जिस पद पर रिट याची नियुक्ति की ईप्सा कर रहा है, वह कांस्टेबल का पद है । यह विवादित नहीं हो सकता है कि कांस्टेबल का कर्तव्य विधि और व्यवस्था बनाए रखना है । इसलिए यह प्रत्याशा की जाती है कि वह ईमानदार, भरोसेमंद होना चाहिए और उसकी सत्यनिष्ठा निष्कपट हो और वह विश्वसनीय हो । वर्दीधारी सेवा में के कर्मचारी से उच्च स्तर की ईमानदारी का पूर्वानुमान किया जाता है क्योंकि ऐसे व्यक्ति से विधि को कायम रखने की प्रत्याशा की जाती है और इसके विपरीत छल और कपट के किसी कार्य को बर्दाश्त नहीं किया जा सकता है । वर्तमान मामले में, मूल रिट याची ने उपरोक्त प्रत्याशाओं/अपेक्षाओं की पुष्टि नहीं की है । उसने अपने आपराधिक पूर्ववृत्त के तात्विक तथ्यों को छिपाया था । उसने आवेदन पत्र में यह प्रकटन नहीं किया था कि उसके विरुद्ध एक आपराधिक मामला/प्रथम इत्तिला रिपोर्ट लंबित है । इसके विपरीत, उसने आवेदन पत्र में यह मिथ्या कथन किया था कि वह किसी आपराधिक मामले का सामना नहीं कर रहा है । अत: पूर्वोक्त तथ्यों के छिपाने के कारण समुचित प्राधिकारी द्वारा उसकी अभ्यर्थिता को नामंजूर कर दिया गया था । उपरोक्त के बावजूद, विद्वान् एकल न्यायाधीश ने रिट याची की याचिका मंजूर की और राज्य को कांस्टेबल के रूप में नियुक्ति के लिए मूल रिट याची के मामले पर मुख्य रूप से इस आधार पर विचार करने का निदेश दिया कि अपराध तुच्छ प्रकृति के थे और ऐसे अपराधों को छिपाने की बात की अनदेखी की जानी चाहिए । इसकी पुष्टि खंड न्यायपीठ द्वारा की गई है ।

6.2 प्रश्न यह नहीं है कि अपराध तुच्छ प्रकृति के थे या नहीं । प्रश्न मूल रिट याची द्वारा अपने आपराधिक पूर्ववृत्त के संबंध में तात्विक तथ्य को छिपाने और आवेदन पत्र में एक मिथ्या कथन करने का है । यदि उसने आरंभ में ही अपने आपराधिक पूर्ववृत्त के संबंध में तात्विक तथ्य को छिपाया है और वास्तव में एक गलत कथन किया है,

तो उसे कांस्टेबल के रूप में कैसे नियुक्त किया जा सकता है । भविष्य में उस पर कैसे भरोसा किया जा सकता है ? यह प्रत्याशा कैसे की जा सकती है कि उसके पश्चात् वह अपना कर्तव्य ईमानदारी और सत्यनिष्ठा से निभाएगा ?

6.3 अत: प्राधिकारियों ने कांस्टेबल के पद के लिए प्रत्यर्थी की अभ्यर्थिता को नामंजूर करके न्यायोचित किया था ।

6.4 इस प्रक्रम पर **दया शंकर यादव** (उपर्युक्त) वाले मामले में इस न्यायालय के विनिश्चय को निर्दिष्ट किया जाना आवश्यक है । पैरा 14 और 16 में निम्नलिखित मत व्यक्त और अभिनिर्धारित किया गया है :–

> "14. इस मामले में प्रासंगिक केंद्रीय रिजर्व पुलिस बल नियम, 1955 का नियम 14 सत्यापन से संबंधित है । उक्त नियम के खंड (क) और (ख) नीचे उद्धृत किए जाते हैं :
>
> > **'14. सत्यापन** – (क) जैसे ही किसी व्यक्ति का नामांकन किया जाता है, उसके चरित्र, पूर्ववृत्त, संबंधों और आयु का सत्यापन केंद्रीय सरकार द्वारा समय-समय पर विहित प्रक्रिया के अनुसार किया जाएगा । सत्यापन नामावली उस जिले के जिला मजिस्ट्रेट या उपायुक्त को दे दी जाएगी, जिसका भर्ती किया गया व्यक्ति निवासी है ।
> >
> > (ख) सत्यापन नामावली सीआरपी प्ररूप 25 में होगा और सत्यापन के पश्चात् संबंधित बल के सदस्य के चरित्र और सेवा नामावली के साथ संलग्न किया जाएगा ।'
>
> उक्त जानकारी मांगने का प्रयोजन अभ्यर्थी के चरित्र और पूर्ववृत्त का अभिनिश्चय करना है, जिससे पद के लिए उसकी उपयुक्तता का निर्धारण किया जा सके । अत: अभ्यर्थी को इन स्तभों में पूछे गए प्रश्नों का सच्चाई और पूरी तरह से उत्तर देना होगा और इसमें कोई भी गलत प्रस्तुतिकरण करना या छिपाना या मिथ्या कथन करना स्वयं में एक वर्दीधारी सुरक्षा सेवा के लिए अनुपयुक्त आचरण या चरित्र को प्रदर्शित करेगा ।

16. इस प्रकार, परिवीक्षा पर किसी कर्मचारी को (i) किसी आपराधिक मामले में उसकी दोषसिद्धि या किसी आपराधिक अपराध में उसकी संलिप्तता (भले ही उसे तकनीकी आधारों पर या संदेह का फायदा देते हुए दोषमुक्त कर दिया गया हो) या अन्य आचरण (जैसे परीक्षा में नकल करना) या महाविद्यालय आदि से निष्कासन या निलंबन या प्रतिबंध ; और (ii) किसी आपराधिक अपराध में (भले ही उसे आपराधिक मामले में अंतत: दोषमुक्त कर दिया गया हो) अभियोजन या दोषसिद्धि से संबंधित प्रश्नों के उत्तर में तात्विक जानकारी को छिपाने या मिथ्या कथन करने के आधार पर सेवोन्मुक्त किया जा सकता है या किसी संभावित कर्मचारी को नियोजन से इनकार किया जा सकता है । यह आधार पूर्वत्तर पूर्ववृत्त से सुभिन्न है, क्योंकि यह वर्तमान संदिग्ध आचरण और घोषणा करते समय चरित्रहीनता को दर्शाता है, जिससे वह पद के लिए अनुपयुक्त हो जाता है ।"

6.5 **आंध्र प्रदेश राज्य** बनाम **चिन्नम नायडू**[1] वाले मामले में इस न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया है कि अनुप्रमाणन पत्र में जानकारी की अपेक्षा करने और तत्पश्चात् अभ्यर्थी द्वारा की गई घोषणा का उद्देश्य सेवा में प्रवेश करने या जारी रखने के लिए उसकी उपयुक्तता पर विचार करने के लिए चरित्र और पूर्ववृत्त का अभिनिश्चय और सत्यापन करना है । यह भी मत व्यक्त किया गया है कि जब कोई अभ्यर्थी तात्विक सामग्री को छिपाता है और/या मिथ्या जानकारी देता है, तो वह नियुक्ति या सेवा में बने रहने के लिए किसी अधिकार का दावा नहीं कर सकता है ।

6.6 **देवेन्द्र कुमार** बनाम **उत्तरांचल राज्य**[2] वाले मामले में, प्रशिक्षण में शामिल होने के दौरान कर्मचारी से कतिपय जानकारी, विशिष्ट रूप से यह कि क्या वह कभी किसी आपराधिक मामले में अंतर्ग्रस्त रहा था, देते हुए एक शपथपत्र प्रस्तुत करने के लिए कहा गया था । कर्मचारी ने यह कहते हुए एक शपथपत्र प्रस्तुत किया कि वह कभी भी किसी आपराधिक

---

[1] (2005) 2 एस. सी. सी. 746.

[2] (2013) 9 एस. सी. सी. 363.

मामले में अंतर्ग्रस्त नहीं रहा था । कर्मचारी ने संतोषजनक रूप से अपना प्रशिक्षण पूरा किया और इसी समय नियोजक को चरित्र सत्यापन की प्रक्रिया के अनुसरण में पता चला कि कर्मचारी वास्तव में एक आपराधिक मामले में अंतर्ग्रस्त था । यह पाया गया कि उस मामले में अभियोजन पक्ष द्वारा अंतिम रिपोर्ट प्रस्तुत की गई थी और संबंधित न्यायिक मजिस्ट्रेट द्वारा स्वीकार की गई थी । इसके आधार पर, कर्मचारी को इस आधार पर अचानक सेवोन्मुक्त कर दिया था कि चूंकि वह एक अस्थायी सरकारी सेवक था इसलिए उसे बिना किसी जांच के सेवा से हटाया जा सकता है । कर्मचारी द्वारा उच्च न्यायालय के एक एकल न्यायाधीश के समक्ष रिट याचिका फाइल करके उस आदेश को चुनौती दी गई थी, जिसे खारिज कर दिया गया था । खंड न्यायपीठ ने उस आदेश को कायम रखा, जो इस न्यायालय के समक्ष अपील की विषयवस्तु थी । अपील को खारिज करते हुए इस न्यायालय ने यह मत व्यक्त और अभिनिर्धारित किया कि प्रश्न यह नहीं है कि कर्मचारी इस पद के लिए उपयुक्त है या नहीं । किसी आपराधिक मामले/कार्यवाही का लंबित होना इस तरह विचाराधीन मामले की जानकारी को छिपाने से अलग है । किसी व्यक्ति के विरुद्ध लंबित मामले में नैतिक अधमता अंतर्वलित न हो, किंतु इस जानकारी को छिपाना ही नैतिक अधमता है । यह भी मत व्यक्त किया गया है कि नियोजक द्वारा मांगी गई जानकारी यदि अपेक्षानुसार प्रकट नहीं की जाती है, तो निश्चित रूप से तात्विक जानकारी को छिपाने की कोटि में आएगा और उस स्थिति में सेवा समाप्त किए जाने के लिए दायी बन जाती है, भले ही आगे कोई विचारण न चला हो या संबंधित व्यक्ति दोषमुक्त/उन्मोचित हो गया हो ।

6.7 **जैनेन्द्र सिंह** बनाम **उत्तर प्रदेश राज्य**[1] वाले मामले में इस न्यायालय ने यह मत व्यक्त और अभिनिर्धारित किया है कि "कोई अभ्यर्थी तात्विक जानकारी को छिपाने और/या मिथ्या जानकारी देने के कारण सेवा में बने रहने का दावा नहीं कर सकता है और नियोजक को नियोजन की प्रकृति के साथ-साथ अन्य पहलुओं को ध्यान में रखते हुए उसकी सेवाएं समाप्त करने का विवेकाधिकार है ।" पैरा 29.6 में आगे

[1] (2012) 8 एस. सी. सी. 748.

यह मत व्यक्त किया गया है कि जो व्यक्ति तात्विक जानकारी छिपाता है और/या मिथ्या जानकारी देता है, वह नियुक्ति या सेवा में बने रहने के लिए किसी अधिकार का दावा नहीं कर सकता है । पैरा 29.7 में, यह मत व्यक्त और अभिनिर्धारित किया गया है कि "वर्दीधारी सेवा में सेवा करने के लिए आशयित व्यक्ति से प्रत्याशित मानदंड अन्य सेवाओं से पूर्णतया सुभिन्न हैं और इसलिए किसी महत्वपूर्ण जानकारी के संबंध में किसी भी जानबूझकर किए गए कथन या चूक को गंभीरता से लिया जा सकता है और नियुक्ति प्राधिकारी के अंतिम विनिश्चय को गलत नहीं ठहराया जा सकता है" ।

6.8 **दया शंकर यादव** बनाम **भारत संघ** (उपर्युक्त) वाले मामले में इस न्यायालय को पूर्ववृत्त के संबंध में जानकारी की ईप्सा करने के प्रयोजन पर विचार करना था । यह मत व्यक्त और अभिनिर्धारित किया गया कि पूर्ववृत्त के संबंध में जानकारी की ईप्सा करने का प्रयोजन अभ्यर्थी के चरित्र और पूर्ववृत्त का अभिनिश्चय करना है, जिससे पद के लिए उसकी उपयुक्तता का निर्धारण किया जा सके । यह भी मत व्यक्त किया गया कि जब कोई कर्मचारी या संभावित कर्मचारी सत्यापन प्ररूप में चरित्र और पूर्ववृत्त से संबंधित प्रश्नों के उत्तर घोषित करता है, तो उसके सत्यापन के निम्नलिखित परिणाम हो सकते हैं (एस. सी. सी. पृ. 110-111, पैरा 15) :–

> "15. .... (क) यदि घोषणाकर्ता ने प्रश्नों का सकारात्मक उत्तर दिया है और किसी आपराधिक मामले का ब्योरा प्रस्तुत किया है (जिसमें उसे दोषसिद्ध किया गया था या साक्ष्य के अभाव में संदेह का फायदा देकर दोषमुक्त कर दिया गया था) तो नियोजक उसे रोजगार देने से इनकार कर सकता है (या यदि पहले से ही परिवीक्षा पर नियोजित है, तो उसे सेवा से सेवोन्मुक्त कर सकता है), यदि वह उस अपराध/अपराध की प्रकृति और गंभीरता को ध्यान में रखते हुए अयोग्य पाया जाता है, जिसमें वह अंतर्ग्रस्त था ।
>
> (ख) दूसरी ओर, यदि नियोजक यह पाता है कि घोषणा करने वाले द्वारा प्रकट किया गया आपराधिक मामला उन अपराधों से

संबंधित है, जो तकनीकी थे, या ऐसी प्रकृति के थे जो नियोजन के लिए घोषणाकर्ता की उपयुक्तता को प्रभावित नहीं करते थे, या जहां घोषणाकर्ता को सम्मानजनक रूप से दोषमुक्त और वियुक्त कर दिया गया था, तो नियोजक इस तथ्य की अनदेखी कर सकता है कि घोषणा करने वाले को किसी आपराधिक मामले में अभियोजित किया गया था और उसे नियुक्त करने या नियोजन में जारी रखने के लिए अग्रसर हो सकता है ।

(ग) जहां घोषणाकर्ता ने नकारात्मक रूप से प्रश्नों का उत्तर दिया है और सत्यापन करने पर यह पाया जाता है कि उत्तर गलत थे, तो नियोजक घोषणाकर्ता को नियोजित करने से इनकार कर सकता है (या उसे सेवोन्मुक्त कर सकता है, यदि वह पहले से ही नियोजित है), भले ही घोषणाकर्ता को आरोपों से मुक्त कर दिया गया हो या दोषमुक्त कर दिया गया हो । ऐसा इसलिए है क्योंकि जब उसके चरित्र से संबंधित तात्विक जानकारी को छिपाया जाता है या प्रकटन नहीं किया जाता है, तो स्वयं यह बात घोषणाकर्ता को नियोजित न करने का एक कारण बन जाती है ।

(घ) जहां अनुप्रमाणन पत्र या सत्यापन पत्र में घोषणाकर्ता से किन्हीं आपराधिक कार्यवाहियों में उसकी अंतर्ग्रस्तता का प्रकटन करने की अपेक्षा करने वाले उचित या पर्याप्त प्रश्न नहीं हैं, या जहां अभ्यर्थी उस समय आपराधिक कार्यवाहियों के आरंभ होने के बारे में अनभिज्ञ था, जब उसने सत्यापन नामावली/अनुप्रमाणन पत्र में घोषणाएं की थीं, तब अभ्यर्थी को संबंधित जानकारी न देने के लिए दोषी नहीं पाया जा सकता है । किंतु यदि नियोजक को अन्य साधनों (जैसे पुलिस सत्यापन या शिकायतें आदि) से घोषणाकर्ता की अंतर्ग्रस्तता के बारे में पता चलता है, तो नियोजक उपरोक्त (क) या (ख) में की प्रक्रियाओं का आश्रय ले सकता है ।"

इसके पश्चात्, यह मत व्यक्त और अभिनिर्धारित किया गया है कि किसी कर्मचारी को अभियोजन या किसी आपराधिक अपराध के लिए दोषसिद्धि (भले ही उसे आपराधिक मामले में अंतत: दोषमुक्त कर दिया गया हो) से संबंधित प्रश्नों के उत्तर में तात्विक

जानकारी को छिपाने या मिथ्या कथन करने के आधार पर सेवा से सेवोन्मुक्त किया जा सकता है या किसी संभावित कर्मचारी को नियोजन से इनकार किया जा सकता है ।

6.9 **मध्य प्रदेश राज्य** बनाम **अभिजीत सिंह पवार**[1] वाले मामले में जब कर्मचारी ने चयन प्रक्रिया में भाग लिया था, तो उसने अपने विरुद्ध लंबित आपराधिक मामले को प्रकट करते हुए एक शपथपत्र दिया था । यह शपथपत्र तारीख 22 दिसंबर, 2012 को फाइल किया गया था । इस प्रकटीकरण के अनुसार, वर्ष 2006 में रजिस्ट्रीकृत एक मामला उस तारीख को लंबित था, जब शपथपत्र प्रस्तुत किया गया था । तथापि, ऐसा शपथपत्र फाइल करने के चार दिनों के भीतर मूल शिकायतकर्ता और कर्मचारी के बीच एक समझौता हो गया था और दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 320 के अधीन अपराध का शमन करने के लिए एक आवेदन फाइल किया गया था । कर्मचारी को समझौता विलेख को ध्यान में रखते हुए उन्मोचित कर दिया गया था । उसके पश्चात् कर्मचारी का परीक्षा में चयन हो गया था और उसे चिकित्सा जांच के लिए बुलाया गया था । तथापि, लगभग उसी समय उसके चरित्र का सत्यापन भी किया गया था और चरित्र सत्यापन रिपोर्ट पर सम्यक् विचार करने के पश्चात् उसकी अभ्यर्थिता को नामंजूर कर दिया गया था । कर्मचारी ने अपनी अभ्यर्थिता की नामंजूरी को चुनौती देते हुए उच्च न्यायालय के समक्ष एक रिट याचिका फाइल की । मध्य प्रदेश उच्च न्यायालय के विद्वान् एकल न्यायाधीश ने उक्त रिट याचिका मंजूर की । विद्वान् एकल न्यायाधीश द्वारा राज्य को कर्मचारी को नियुक्त करने का निदेश देते हुए पारित किए गए निर्णय और आदेश की खंड न्यायपीठ द्वारा पुष्टि की गई थी, जिसके कारण इस न्यायालय के समक्ष अपील की गई । **अवतार सिंह** बनाम **भारत संघ**[2] वाले मामले के विनिश्चय सहित इस मुद्दे पर कई सारे विनिश्चयों पर विचार करने के पश्चात् इस न्यायालय ने कर्मचारी की अभ्यर्थिता को नामंजूर करने के आदेश को यह मत व्यक्त करते हुए कायम रखा कि जैसा कि **अवतार सिंह** (उपर्युक्त) वाले मामले में अभिनिर्धारित किया गया है, उन मामलों में

[1] (2018) 18 एस. सी. सी. 733.

[2] (2016) 8 एस. सी. सी. 471.

भी जहां किसी समाप्त हो गए मामले के बारे में सत्य प्रकटन किया गया हो, फिर भी नियोजक को अभ्यर्थी के पूर्ववृत्त पर विचार करने का अधिकार होगा और उसे ऐसे अभ्यर्थी को नियुक्त करने के लिए विवश नहीं किया जा सकता है ।

6.10 **अवतार सिंह** (उपर्युक्त) वाले मामले में के विनिश्चय के पैरा 38.5 को उद्धृत करने और/या पुनर्विचार करने के पश्चात् **अभिजीत सिंह पवार** (उपर्युक्त) वाले मामले में पैरा 13 में इस न्यायालय ने निम्नलिखित मत व्यक्त और अभिनिर्धारित किया :–

> "13. अवतार सिंह [अवतार सिंह **बनाम** भारत संघ (2016) 8 एस. सी. सी. 471] वाले मामले में, यद्यपि इस न्यायालय का संबंध मुख्य रूप से जानकारी का प्रकटन न करने या गलत प्रकटन करने के प्रश्न से था, तो भी पैरा 38.5 में यह मत व्यक्त किया गया था कि उन मामलों में भी जहां किसी समाप्त हो गए मामले के बारे में सत्य प्रकटन किया गया हो, फिर भी नियोजक को अभ्यर्थी के पूर्ववृत्त पर विचार करने का अधिकार होगा और उसे ऐसे अभ्यर्थी को नियुक्त करने के लिए विवश नहीं किया जा सकता है ।"

6.11 हाल ही में, **राजस्थान राज्य विद्युत प्रसारण निगम लि.** बनाम **अनिल कंवरिया**[1] वाले मामले में एक ऐसे कर्मचारी की ओर से दी गई दलील पर विचार करना था, जिसकी सेवाओं को इस आशय की मिथ्या घोषणा फाइल करने के आधार पर समाप्त कर दिया गया था कि उसके विरुद्ध न तो कोई आपराधिक मामला लंबित है और न ही उसे किसी न्यायालय द्वारा दोषसिद्ध किया गया है और बाद में उसे अपराधी परिवीक्षा अधिनियम की धारा 12 का फायदा प्रदान किया गया है और इसलिए उसकी सेवाओं को समाप्त नहीं किया जाना चाहिए था । इस न्यायालय ने पैरा 13 और 14 में निम्नलिखित मत व्यक्त किया है :–

> "13. अन्यथा भी, बाद में 1958 के अधिनियम की धारा 12 का फायदा प्राप्त करना प्रत्यर्थी के लिए सहायक नहीं होगा क्योंकि प्रश्न तारीख 14 अप्रैल, 2015 को यह एक मिथ्या घोषणा करने के

---

[1] (2021) 10 एस. सी. सी. 136.

बारे में है कि उसके विरुद्ध न तो कोई आपराधिक मामला लंबित है और न ही उसे किसी न्यायालय द्वारा दोषसिद्ध किया गया है, जो कि विद्वान् सेशन न्यायालय द्वारा 1958 के अधिनियम की धारा 12 का फायदा देते हुए पारित किए गए आदेश से बहुत पहले की बात थी । जैसा कि इसमें ऊपर मत व्यक्त किया गया है, बाद में दोषमुक्ति के मामले में भी कर्मचारी ने जब एक बार मिथ्या घोषणा की हो और/या लंबित आपराधिक मामले के तात्विक तथ्य को छिपाया हो, तो वह साधिकार नियुक्ति का हकदार नहीं होगा ।

14. इस विवाद्यक/प्रश्न पर एक अन्य दृष्टिकोण से, नियोजक के दृष्टिकोण से विचार किया जा सकता है । प्रश्न इस बारे में नहीं है कि क्या कोई कर्मचारी तुच्छ प्रकृति के किसी विवाद में अंतर्ग्रस्त था और क्या उसे बाद में दोषमुक्त कर दिया था या नहीं । प्रश्न ऐसे कर्मचारी की विश्वसनीयता और/या ईमानदारी का है, जो नियोजन के प्रारंभिक प्रक्रम पर अर्थात् घोषणा/सत्यापन प्रस्तुत करते समय और/या किसी पद के लिए आवेदन करते समय मिथ्या घोषणा करता है और/या किसी आपराधिक मामले में अंतर्ग्रस्त होने के तात्विक तथ्य का प्रकटन नहीं करता है और/या छिपाता है । यदि सही तथ्यों का प्रकटन किया गया होता, तो नियोजक द्वारा उसे नियुक्त नहीं किया गया होता । प्रश्न विश्वास का है । अत: ऐसी स्थिति में, जहां नियोजक को लगता है कि कर्मचारी, जिसने प्रारंभिक प्रक्रम पर ही कोई मिथ्या कथन किया है और/या तात्विक तथ्यों का प्रकटन नहीं किया है और/या तात्विक तथ्यों को छिपाया है और इसलिए उसे सेवा में जारी नहीं रखा जा सकता है क्योंकि ऐसे कर्मचारी पर भविष्य में भी भरोसा नहीं किया जा सकता है, तो नियोजक को ऐसे कर्मचारी को जारी रखने के लिए मजबूर नहीं किया जा सकता है । कर्मचारी को जारी रखना है या नहीं रखना है, यह चयन/विकल्प सदैव नियोजक को दिया जाना चाहिए । पुनरावृत्ति करते हुए, यह मत व्यक्त किया जाता है और जैसा कि इसमें ऊपर अनेक विनिश्चयों में मत व्यक्त किया गया है, ऐसा कर्मचारी साधिकार नियुक्ति और/या सेवा में बने रहने का दावा नहीं कर सकता है ।"

7. पूर्वोक्त मामलों में इस न्यायालय द्वारा अधिकथित विधि को लागू करते हुए, यह नहीं कहा जा सकता है कि प्रस्तुत मामले में कांस्टेबल के पद के लिए मूल रिट याची की अभ्यर्थिता को नामंजूर करने में प्राधिकारी ने कोई गलती की थी ।

8. अन्यथा भी यह उल्लेख किया जाना आवश्यक है कि बाद में और विद्वान् एकल न्यायाधीश के साथ-साथ खंड न्यायपीठ के समक्ष कार्यवाहियों के दौरान मूल रिट याची के विरुद्ध फाइल की गई तीन से चार अन्य प्रथम इत्तिला रिपोर्टें थीं, जिनके परिणामस्वरूप आपराधिक विचारण चल रहा था और दो मामलों में उसे समझौते के आधार पर दोषमुक्त कर दिया गया था और एक मामले में यद्यपि दोषसिद्ध किया गया था, किंतु उसे अपराधी परिवीक्षा अधिनियम का फायदा प्रदान किया गया था । उसके विरुद्ध एक और आपराधिक मामला लंबित है । अत: मूल रिट याची को कांस्टेबल के ऐसे पद पर नियुक्त नहीं किया जा सकता है ।

9. उपरोक्त चर्चा को ध्यान मे रखते हुए और ऊपर उल्लिखित कारणों से, विद्वान् एकल न्यायाधीश तथा खंड न्यायपीठ, दोनों ने कांस्टेबल के रूप में नियुक्ति के लिए प्रत्यर्थी के मामले पर विचार करने के लिए राज्य को निदेश देने में गलती की थी । उच्च न्यायालय द्वारा पारित किया गया निर्णय और आदेश तथ्यों के साथ-साथ विधि के आधार पर भी असंधार्य है । इन परिस्थितियों में, इसे अभिखंडित तथा अपास्त किया जाना चाहिए और तद्नुसार इसे अभिखंडित और अपास्त किया जाता है । यह अभिनिर्धारित किया जाता है कि कांस्टेबल के पद के लिए प्रत्यर्थी-मूल रिट याची की अभ्यर्थिता को समुचित प्राधिकारी द्वारा ठीक ही नामंजूर किया गया था । तद्नुसार, यह अपील मंजूर की जाती है । मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में खर्चे के बारे में कोई आदेश नहीं किया जाता है ।

अपील मंजूर की गई ।

जस.

[2022] 2 उम. नि. प. 339

सुरेन्द्रन

बनाम

केरल राज्य

[2019 की दांडिक अपील सं. 1080]

13 मई, 2022

मुख्य न्यायमूर्ति एन. वी. रमना, न्यायमूर्ति ए. एस. बोपन्ना और न्यायमूर्ति हिमा कोहली

साक्ष्य अधिनियम, 1872 (1872 का 1) – धारा 32(1) [सपठित भारतीय दंड संहिता, 1860 की धारा 304ख और 498क] – मृत्युकालिक कथन – मृतका द्वारा अपने विवाह के दो वर्ष के भीतर आत्महत्या किया जाना – मृतका द्वारा अपने मृत्युकालिक कथन में ससुराल वालों द्वारा दहेज को लेकर तंग किए जाने का कथन किया जाना – विचारण न्यायालय द्वारा धारा 304ख और धारा 498क के अधीन दोषसिद्ध किया जाना – अपील में उच्च न्यायालय द्वारा धारा 304ख के अधीन दोषसिद्धि को अपास्त और धारा 498क के अधीन दोषसिद्धि को कायम रखा जाना – धारा 304ख के अधीन अपराध के लिए दोषमुक्त किए जाने पर क्रूरता के अपराध के लिए दोषसिद्धि के संबंध में मृतका के मृत्युकालिक कथन की ग्राह्यता – कसौटी – धारा 32(1) के अधीन कथन की ग्राह्यता के लिए कसौटी यह नहीं है कि ग्रहण किए जाने वाला साक्ष्य व्यक्ति की मृत्यु से संबंधित किसी आरोप से प्रत्यक्ष रूप से संबद्ध हो या मृत्यु से संबंधित आरोप सिद्ध नहीं किया जा सका था, अपितु कसौटी यह है कि उस मामले में मृत्यु के कारण को कार्यवाही की प्रकृति को ध्यान में रखे बिना प्रश्नगत किया गया हो और वह मृत्यु से संबंधित 'संव्यवहार की परिस्थितियों' का एक भाग होना चाहिए और जहां अन्य साक्ष्य से भी मृतका के साथ क्रूरता करने के संबंध में अभियुक्त की दोषिता युक्तियुक्त संदेह के परे साबित होती है, वहां क्रूरता के अपराध के लिए उसकी दोषसिद्धि उचित है ।

इस अपील के तथ्य इस प्रकार हैं कि अपीलार्थी का विवाह तारीख 9 अप्रैल, 1995 को मृतका के साथ हुआ था । विवाह के पश्चात्, मृतका अपीलार्थी और उसके परिवार के सदस्यों के साथ अपने दांपत्य निवास में रहती थी । अपीलार्थी ने अपने परिवार के सदस्यों के साथ विवाह के कुछ पश्चात् मृतका को तंग करना आरंभ कर दिया और उसका पति (अभियुक्त-अपीलार्थी) अतिरिक्त दहेज की मांग कर रहा था । मृतका ने अभियुक्तों द्वारा मानसिक रूप से तंग करने के कारण विष खाकर आत्महत्या करने का प्रयत्न किया किंतु सौभाग्यवश, वह उपचार के पश्चात् स्वस्थ होने में समर्थ रही । इस घटना के पश्चात्, पक्षकारों के बीच मध्यस्थता हुई और पक्षकारों के बीच एक समझौता हुआ, जिसके द्वारा मृतका ने अभियुक्तों के मकान पर निवास करना जारी रखा । उपरोक्त करार के बावजूद, अभिकथित रूप से उसे तंग करना जारी रखा और उसने विवाह के दो वर्ष के भीतर फांसी लगाकर आत्महत्या कर ली । अभियोजन पक्ष ने अपीलार्थी, उसके माता-पिता और उसके दो भाइयों को भारतीय दंड संहिता की धारा 304ख और 498क के अधीन आरोपित किया । विचारण के लंबित रहते हुए, अपीलार्थी के पिता का स्वर्गवास हो गया । विचारण न्यायालय ने अभियोजन पक्ष और प्रतिरक्षा पक्ष के सभी साक्षियों की परीक्षा करने और प्रस्तुत किए गए दस्तावेजों का परिशीलन करने के पश्चात् अभियुक्तों को भारतीय दंड संहिता की धारा 304ख और 498क के अधीन दोषसिद्ध किया । अपील न्यायालय ने अपीलार्थी के भाइयों को दोनों अपराधों से दोषमुक्त कर दिया । तथापि, अपीलार्थी और उसकी माता के विरुद्ध दोषसिद्धि और दंडादेश की पुष्टि की गई । अपीलार्थी और उसकी माता ने व्यथित होकर केरल उच्च न्यायालय के समक्ष दांडिक पुनरीक्षण अर्जी फाइल की । उच्च न्यायालय द्वारा पुनरीक्षण अर्जी मंजूर की गई और अपीलार्थी तथा उसकी माता की भारतीय दंड संहिता की धारा 498क के अधीन दोषसिद्धि की पुष्टि करते हुए उन्हें भारतीय दंड संहिता की धारा 304ख के अधीन आरोप से दोषमुक्त कर दिया । तथापि, उच्च न्यायालय ने अपीलार्थी पर अधिरोपित दंडादेश को कम करके एक वर्ष का कठोर कारावास और उसकी माता पर अधिरोपित दंडादेश को एक माह का कठोर कारावास कर दिया । अपीलार्थी की माता द्वारा अपनी दोषसिद्धि के विरुद्ध कोई अपील

फाइल नहीं की गई । अपीलार्थी द्वारा अपनी दोषसिद्धि और दंडादेश से व्यथित होकर उच्चतम न्यायालय में यह दलील देते हुए अपील फाइल की गई कि चूंकि उसे धारा 304ख के अधीन दोषमुक्त कर दिया गया था इसलिए मृतका-पत्नी के मृत्युकालिक कथन का अवलंब धारा 498क के अधीन उसकी दोषसिद्धि को कायम रखने के लिए नहीं लिया जा सकता है । उच्चतम न्यायालय द्वारा अपील खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 32(1) की शब्दावली से यह प्रतीत होता है कि उक्त धारा के अधीन ग्राह्यता की कसौटी यह नहीं है कि ग्रहण किया जाने वाला साक्ष्य व्यक्ति की मृत्यु से संबंधित किसी आरोप से प्रत्यक्ष रूप से संबद्ध होना चाहिए, या मृत्यु से संबंधित आरोप साबित नहीं किया जा सका था । बल्कि, कसौटी यह प्रतीत होती है कि मृत्यु का कारण उस मामले में कार्यवाही की प्रकृति को ध्यान में रखे बिना प्रश्नगत किया गया हो और जिस उद्देश्य के लिए ऐसा साक्ष्य ग्रहण किए जाने की ईप्सा की जा रही है वह मृत्यु से संबंधित 'संव्यवहार की परिस्थितियों' का एक भाग होना चाहिए । क्रूरता के विषय में किसी मृतका पत्नी का साक्ष्य कुछ परिस्थितियों में भारतीय दंड संहिता की धारा 498क के अधीन आरोप के लिए विचारण में साक्ष्य अधिनियम की धारा 32(1) के अधीन ग्राह्य हो सकता है । तथापि, कतिपय आवश्यक पूर्व शर्तें हैं, जिन्हें साक्ष्य ग्रहण किए जाने से पूर्व अवश्य पूरा किया जाना चाहिए । पहली शर्त यह है कि उसकी मृत्यु का कारण मामले में अवश्य प्रश्नगत होना चाहिए । इसमें, उदाहरण के लिए, ऐसे मामले सम्मिलित होंगे, जहां भारतीय दंड संहिता की धारा 498क के अधीन आरोप के साथ-साथ अभियोजन पक्ष ने अभियुक्त को भारतीय दंड संहिता की धारा 302, 306 या 304ख के अधीन भी आरोपित किया हो । तथापि, यह उल्लेख किया जाना आवश्यक है कि जब तक उसकी मृत्यु का कारण प्रश्नगत हो, चाहे मृत्यु से संबंधित आरोप साबित किया गया है या नहीं, ग्राह्यता के विषय में अतात्विक है । दूसरी शर्त यह है कि अभियोजन पक्ष को यह दर्शित करना होगा कि उस साक्ष्य का संबंध, जिसे भारतीय दंड संहिता की धारा 498क के विषय में ग्रहण किए जाने की ईप्सा की गई है, अवश्य मृत्यु के संव्यवहार की परिस्थितियों से होना चाहिए । साक्ष्य कितना भी दूरस्थ

हो सकता है और मृतका की मृत्यु के कारण से कैसे जुड़ा है, यह आवश्यक रूप से प्रत्येक मामले के तथ्यों और परिस्थितियों पर निर्भर करेगा । इस विषय में कोई विनिर्दिष्ट कठोर सिद्धांत या नियम नहीं दिया जा सकता है । प्रस्तुत मामले में इस न्यायालय की यह राय है कि इस न्यायालय के लिए यह अवधारण करने की कवायद करना आवश्यक नहीं है कि क्या मृतका के कथन को साक्ष्य अधिनियम की धारा 32(1) के अधीन ग्रहण किया जा सकता है या नहीं । जैसा कि राज्य की ओर से विद्वान् काउंसेल द्वारा ठीक ही बताया गया है, इस अपील का विनिश्चय इस पहलू पर विचार किए बिना भी किया जा सकता है क्योंकि अभिलेख पर के अन्य साक्ष्य से अपीलार्थी की दोषिता युक्तियुक्त संदेह के परे स्पष्ट रूप से साबित होती है । यह तथ्य कि मृतका पत्नी को तंग किया जा रहा था, अभि. सा. 3 (मृतका की माता) के साक्ष्य से स्पष्ट होता है । उसने अपनी मुख्य परीक्षा में विनिर्दिष्ट रूप से यह कथन किया था कि अपीलार्थी मृतका को उनके विवाह के कुछ दिनों के भीतर यह धमकी देकर उसके पैतृक गृह में वापस लाया था कि यदि अतिरिक्त दहेज नहीं दिया गया, तो वह उसे छोड़ देगा और एक अन्य "सुंदर" लड़की से विवाह कर लेगा । ऐसे तंग किए जाने के परिणामस्वरूप मृतका ने पहली बार अभिकथित रूप से विष खाकर आत्महत्या करने का प्रयत्न किया था । जब उसका अस्पताल में उपचार किया जा रहा था, तब पक्षकारों के बीच एक समझौता हुआ था, जिसमें अपीलार्थी भी भागीदार था, जिसमें यह सहमति हुई थी कि आगे दहेज की कोई मांग नहीं की जाएगी । इस करार को विचारण न्यायालय के समक्ष प्रदर्श पी-3 के रूप में प्रदर्शित किया गया था । यद्यपि उच्च न्यायालय ने यह उपदर्शित किया था कि उक्त समझौता साक्ष्य में ग्राह्य नहीं था, तो भी इस समझौते के विद्यमान होने के तथ्य के बारे में अभि. सा. 9, जो एक स्वतंत्र साक्षी है तथा अभि. सा. 3 द्वारा अभिसाक्ष्य दिया गया था । इसके अतिरिक्त, अभि. सा. 3 द्वारा अपनी प्रतिपरीक्षा में यह कथन किया गया था कि समझौते के पश्चात् भी अपीलार्थी ने मृतका के साथ दुर्व्यवहार करना जारी रखा था । मृतका ने अपने साथ हो रहे दुर्व्यवहार के कारण अंततोगत्वा एक साड़ी से स्वयं को फांसी लगाकर आत्महत्या कर ली थी । अपीलार्थी की ओर से विद्वान् काउंसेल अपने सर्वोत्तम प्रयासों के बावजूद इस न्यायालय को इस बात के लिए प्रेरित नहीं कर

सके कि अभि. सा. 3 का साक्ष्य अविश्वसनीय है । अभि. सा. 3 के साक्ष्य की विश्वसनीयता को कायम रखते हुए निचले न्यायालयों के तीन एक-जैसे निष्कर्ष हैं । अपीलार्थी की ओर से विद्वान् काउंसेल की यह दलील कि अभि. सा. 3 का साक्ष्य अविश्वसनीय है क्योंकि वह मृतका की माता है, स्वीकार नहीं की जा सकती है । विधि का यह एक स्थिर सिद्धांत है कि नातेदार या हितबद्ध साक्षी द्वारा दिए गए साक्ष्य को केवल इसी आधार पर त्यक्त नहीं किया जा सकता है । तथापि, प्रज्ञा के नियम के रूप में, न्यायालय ऐसे नातेदार या हितबद्ध साक्षी के साक्ष्य की और अधिक सावधानीपूर्वक संवीक्षा कर सकता है । उपरोक्त को दृष्टिगत करते हुए, इस न्यायालय को उच्च न्यायालय द्वारा अपीलार्थी की भारतीय दंड संहिता की धारा 498क के अधीन दोषसिद्धि और उसे एक वर्ष का कठोर कारावास भुगतने का दंडादेश देते हुए पारित किए गए आक्षेपित निर्णय में हस्तक्षेप करने का कोई कारण दिखाई नहीं देता है । (पैरा 17, 20, 21, 22, 24, 25, 26 और 27)

निर्दिष्ट निर्णय

		पैरा
[2020]	(2020) 10 एस. सी. सी. 533 : **इलांगोवन** बनाम **तमिलनाडु राज्य** ;	26
[2013]	(2013) 8 एस. सी. सी. 781 : **कांतिलाल मार्ताजी पंडोर** बनाम **गुजरात राज्य** ;	13
[2009]	(2009) 13 एस. सी. सी. 80 : **भैरों सिंह** बनाम **मध्य प्रदेश राज्य** ;	13, 23
[2002]	(2002) 2 एस. सी. सी. 619 : **गनंथ पटनायक** बनाम **उड़ीसा राज्य** ;	12, 23
[2001]	(2001) 10 एस. सी. सी. 736 : **इंद्रपाल** बनाम **मध्य प्रदेश राज्य** ;	13, 23
[1985]	[1985] 1 उम. नि. प. 995 = (1984) 4 एस. सी. सी. 116 : **शरद बिरधीचंद शारदा** बनाम **महाराष्ट्र राज्य** ;	19

[1940] ए. आई. आर. 1940 नागपुर 340 :
परमानंद गंगा प्रसाद बनाम **एम्परर** ; 16

[1939] ए. आई. आर. 1939 पीसी 47 :
पकाला नारायण स्वामी बनाम **किंग एम्परर** ; 18

[1928] ए. आई. आर. 1928 पटना 162 :
लालजी दुसाध बनाम **किंग एम्परर** ; 15

[1866] (1866) 8 डब्ल्यू. आर. क्रिमिनल 75 :
क्वीन बनाम **बिस्सोरुनजुन मुकर्जी** । 14

अपीली (दांडिक) अधिकारिता : 2019 की दांडिक अपील सं. 1080.

2006 की दांडिक पुनरीक्षण अर्जी सं. 1801 में केरल उच्च न्यायालय, एर्नाकुलम के तारीख 12 सितंबर, 2018 के निर्णय और आदेश के विरुद्ध अपील ।

अपीलार्थी की ओर से सर्वश्री एडोल्फ मैथ्यू और संजय जैन

प्रत्यर्थी की ओर से सर्वश्री हर्षद वी. हमीद, दिलीप पुलक्कट, (श्रीमती) एशली हर्षद, मुहम्मद सिद्दिक और जी. प्रकाश

न्यायालय का निर्णय मुख्य न्यायमूर्ति एन. वी. रमना ने दिया ।

मु. न्या. रमना – यह अपील, विशेष इजाजत लेकर, 2006 की दांडिक पुनरीक्षण अर्जी सं. 1801 में केरल उच्च न्यायालय द्वारा तारीख 12 सितंबर, 2018 को पारित किए गए उस निर्णय के विरुद्ध फाइल की गई है, जिसके द्वारा उच्च न्यायालय ने अपीलार्थी-पति (अभियुक्त सं. 5) द्वारा फाइल की गई पुनरीक्षण अर्जी मंजूर की थी । उच्च न्यायालय ने आक्षेपित निर्णय द्वारा निचले न्यायालयों के दोषसिद्धि के एक-जैसे निष्कर्षों को अपास्त कर दिया और अपीलार्थी की भारतीय दंड संहिता की धारा 498क के अधीन दोषसिद्धि की पुष्टि करते हुए उसे भारतीय दंड संहिता की धारा 304ख के अधीन दोषमुक्त कर दिया । उच्च न्यायालय ने अपीलार्थी पर अधिरोपित दंडादेश को एक वर्ष के कठोर कारावास में भी उपांतरित कर दिया था ।

2. इस अपील के निपटारे के लिए आवश्यक तथ्यों का सारांश इस प्रकार है : अपीलार्थी का विवाह तारीख 9 अप्रैल, 1995 को मृतका के साथ हुआ था । विवाह के पश्चात्, मृतका अपीलार्थी और उसके परिवार के सदस्यों के साथ अपने दांपत्य निवास में रहती थी । यह अभिकथन किया गया है कि अपीलार्थी ने अपने परिवार के सदस्यों के साथ विवाह के कुछ पश्चात् मृतका को तंग करना आरंभ कर दिया और वह अतिरिक्त दहेज की मांग कर रहा था । अभिकथित रूप से, मृतका ने अभियुक्तों द्वारा मानसिक रूप से तंग करने के कारण तारीख 11 फरवरी, 1996 को बेंजाइल हेक्सा क्लोराइड पाउडर खाकर आत्महत्या करने का प्रयत्न किया था । सौभाग्यवश, वह राजकीय अस्पताल, पलाक्काड में उपचार के पश्चात् स्वस्थ होने में समर्थ रही । इस घटना के पश्चात्, पक्षकारों के बीच मध्यस्थता हुई और पक्षकारों के बीच एक समझौता हुआ, जिसके द्वारा मृतका ने अभियुक्तों के मकान पर निवास करना जारी रखा । उपरोक्त करार के बावजूद, यह अभिकथित है कि तंग करना जारी रहा और मृतका ने तारीख 21 अक्तूबर, 1996 को स्वयं अपने घर पर फांसी लगाकर आत्महत्या कर ली ।

3. अभियोजन पक्ष ने अपीलार्थी, उसके माता-पिता और उसके दो भाइयों को भारतीय दंड संहिता की धारा 304ख और 498क के अधीन आरोपित किया । विचारण के लंबित रहते हुए, अपीलार्थी के पिता का स्वर्गवास हो गया । विचारण न्यायालय ने अभियोजन पक्ष और प्रतिरक्षा पक्ष के सभी साक्षियों की परीक्षा करने और प्रस्तुत किए गए दस्तावेजों का परिशीलन करने के पश्चात् अभियुक्तों को भारतीय दंड संहिता की धारा 304ख और 498क के अधीन दोषसिद्ध किया । अपील न्यायालय ने तारीख 12 मई, 2006 के निर्णय द्वारा अपीलार्थी के भाइयों को दोनों अपराधों से दोषमुक्त कर दिया । तथापि, अपीलार्थी और उसकी माता के विरुद्ध दोषसिद्धि और दंडादेश की पुष्टि की गई ।

4. अपीलार्थी और उसकी माता ने व्यथित होकर केरल उच्च न्यायालय के समक्ष दांडिक पुनरीक्षण अर्जी फाइल की । जैसा कि ऊपर पहले ही वर्णन किया गया है, उच्च न्यायालय ने आक्षेपित निर्णय द्वारा पुनरीक्षण अर्जी मंजूर की और अपीलार्थी तथा उसकी माता की भारतीय दंड संहिता की धारा 498क के अधीन दोषसिद्धि की पुष्टि करते हुए उन्हें

भारतीय दंड संहिता की धारा 304 के अधीन आरोप से दोषमुक्त कर दिया । तथापि, उच्च न्यायालय ने अपीलार्थी पर अधिरोपित दंडादेश को कम करके एक वर्ष का कठोर कारावास और उसकी माता पर अधिरोपित दंडादेश को एक माह का कठोर कारावास कर दिया । अपीलार्थी की माता ने इस न्यायालय के समक्ष कोई अपील फाइल नहीं की है ।

5. अपीलार्थी की ओर से विद्वान् काउंसेल द्वारा दी गई दलीलों का मुख्य जोर दो प्रकार का है । पहला, आत्महत्या टिप्पण और मृतका द्वारा किए गए अन्य कथनों का अवलंब न्यायालय द्वारा उसे भारतीय दंड संहिता की धारा 498क के अधीन दोषसिद्ध करने के लिए नहीं लिया जा सकता था क्योंकि वे भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 (संक्षेप में 'साक्ष्य अधिनियम') की धारा 32(1) की परिधि के अंतर्गत नहीं आते हैं । दूसरा, अभि. सा. 3 (मृतका की माता) का साक्ष्य विरोधाभासी है और इसका अपीलार्थी को दोषसिद्ध करने के लिए अवलंब नहीं लिया जा सकता है । उपरोक्त दो तर्कों के आधार पर, अपीलार्थी की ओर से विद्वान् काउंसेल ने इस न्यायालय को इस बात के लिए प्रेरित करने का प्रयत्न किया कि अपीलार्थी को भारतीय दंड संहिता की धारा 498क के अधीन दोषसिद्ध करने के लिए कोई विश्वसनीय साक्ष्य नहीं है और इसलिए उसे इससे दोषमुक्त किया जाना चाहिए ।

6. दूसरी ओर, प्रत्यर्थी-राज्य की ओर से विद्वान् काउंसेल ने यह दलील दी कि निचले न्यायालय द्वारा निकाले गए तथ्यों के तीन-तीन एक-जैसे निष्कर्ष हैं जिनमें इस न्यायालय द्वारा भारतीय संविधान के अनुच्छेद 136 के अधीन अपनी अधिकारिता का प्रयोग करते हुए कोई हस्तक्षेप करना आवश्यक नहीं है । राज्य की ओर से विद्वान् काउंसेल ने यह भी दलील दी कि अपीलार्थी को भारतीय दंड संहिता की धारा 498क के अधीन दोषसिद्ध करने के लिए एक स्पष्ट मामला सिद्ध करने हेतु अभिलेख पर पर्याप्त साक्ष्य है ।

7. अपीलार्थी और प्रत्यर्थी-राज्य की ओर से विद्वान् काउंसेलों को विस्तार से सुना ।

8. अग्रसर होने से पूर्व, अपीलार्थी की ओर से विद्वान् काउंसेल द्वारा दी गई दलीलों, विशिष्ट रूप से इस दलील का उल्लेख करना

समीचीन है कि अपीलार्थी को उच्च न्यायालय द्वारा पुनरीक्षण में भारतीय दंड संहिता की धारा 304ख के अधीन दोषमुक्त किया गया था और इसलिए उच्च न्यायालय द्वारा भारतीय दंड संहिता की धारा 498क के अधीन उसकी दोषसिद्धि को कायम रखने के लिए मृतका के कथनों का अवलंब नहीं लिया जा सकता था क्योंकि यह साक्ष्य अधिनियम की धारा 32(1) की परिधि के अंतर्गत नहीं आते हैं ।

9. इस संदर्भ में, साक्ष्य अधिनियम की धारा 32 के कतिपय उपबंधों को निर्दिष्ट करना समुचित है । धारा 32 किसी ऐसे व्यक्ति द्वारा किए गए कथनों की ग्राह्यता के संबंध में है, जिसे साक्षी के रूप में बुलाया नहीं जा सकता है । इस धारा में ही उन परिस्थितियों को विनिर्दिष्ट किया गया है, जिनमें ऐसे कथन सुसंगत हो जाते हैं । प्रस्तुत मामले में, हमारा सरोकार एक ऐसी ही परिस्थिति से है अर्थात् जब व्यक्ति, जिसने कथन किया है, मर गया है । अपीलार्थी की ओर से विद्वान् काउंसेल ने मृतका के साक्ष्य को अपवर्जित करने का प्रयत्न करते हुए प्रमुख रूप से साक्ष्य अधिनियम की धारा 32(1) पर यह सुझाव देते हुए ध्यान केंद्रित किया कि यह साक्ष्य उपर्युक्त उपधारा की परिधि के अंतर्गत नहीं आता है और इसलिए अग्राह्य है । साक्ष्य अधिनियम की धारा 32 का सुसंगत भाग नीचे उद्धृत किया जाता है :–

> "**32. वे दशाएं जिनमें उस व्यक्ति द्वारा सुसंगत तथ्य का किया गया कथन सुसंगत है, जो मर गया है या मिल नहीं सकता, इत्यादि** – सुसंगत तथ्यों के लिखित या मौखिक कथन, जो ऐसे व्यक्ति द्वारा किए गए थे, जो मर गया है या मिल नहीं सकता है या जो साक्ष्य देने के लिए असमर्थ हो गया है या जिसकी हाजिरी इतने विलंब या व्यय के बिना उपाप्त नहीं की जा सकती, जितना मामले की परिस्थितियों में न्यायालय को अयुक्तियुक्त प्रतीत होता है, निम्नलिखित दशाओं में स्वयंमेव सुसंगत हैं –
>
> (1) **जबकि वह मृत्यु के कारण से संबंधित है** – जबकि वह कथन किसी व्यक्ति द्वारा अपनी मृत्यु के कारण के बारे में या उस संव्यवहार की किसी परिस्थिति के बारे में किया गया है जिसके फलस्वरूप उसकी मृत्यु हुई, तब <u>उन मामलों</u>

में, जिनमें उस व्यक्ति की मृत्यु का कारण पश्नगत हो ।

ऐसे कथन सुसंगत हैं चाहे उस व्यक्ति को, जिसने उन्हें किया है, उस समय जब वे किए गए थे, मृत्यु की प्रत्याशा थी या नहीं और चाहे उस कार्यवाही की, जिसमें उस व्यक्ति की मृत्यु का कारण प्रश्नगत होता है, प्रकृति कैसी ही क्यों न हो ।

* * * *"

(बल देने के लिए रेखांकन किया गया है)

10. साक्ष्य अधिनियम की धारा 32(1) को विख्यात रूप से "मृत्युकालिक कथन" के रूप में निर्दिष्ट किया जाता है, यद्यपि स्वत: इस वाक्यांश का साक्ष्य अधिनियम में उल्लेख नहीं है । न्यायालयों के पास साक्ष्य अधिनियम की धारा 32 विशिष्ट रूप से धारा 32(1) की व्याप्ति और परिधि पर अनेक बार विचार करने का अवसर आया है ।

11. साक्ष्य अधिनियम की धारा 32(1) का अवलंब लेने के लिए, उपधारा में अधिकथित मुख्य शर्तों में से एक शर्त यह है कि विवाद्यक अवश्य "उन मामलों में, जिनमें उस व्यक्ति की मृत्यु का कारण प्रश्नगत हो" उद्भूत होना चाहिए । अपीलार्थी की ओर से विद्वान् काउंसेल की दलील यह है कि प्रस्तुत मामले में उच्च न्यायालय द्वारा अपीलार्थी की भारतीय दंड संहिता की धारा 304ख के अधीन दोषमुक्ति और इसको चुनौती देते हुए किसी अपील के अभाव में प्रस्तुत मामला केवल भारतीय दंड संहिता की धारा 498क से संबंधित है । अत: प्रस्तुत मामला उपर्युक्त उपधारा की परिधि के अंतर्गत नहीं आता है क्योंकि अब यह ऐसा मामला नहीं रह जाता है जिसमें मृतका की मृत्यु का कारण प्रश्नगत हो । इसलिए न्यायालय द्वारा अपीलार्थी को भारतीय दंड संहिता की धारा 498क के अधीन दोषसिद्ध करने हेतु मृतका के कथनों को ग्रहण करने के लिए साक्ष्य अधिनियम की धारा 32(1) का अवलंब नहीं लिया जा सकता है ।

12. अपीलार्थी की ओर से विद्वान् काउंसेल ने प्राथमिक रूप से **गनंथ पटनायक** बनाम **उड़ीसा राज्य**[1] वाले मामले में इस न्यायालय के

[1] (2002) 2 एस. सी. सी. 619.

निर्णय का अवलंब लिया, जिसमें इस न्यायालय ने निम्नलिखित मत व्यक्त किया था :–

"10. क्रूरता की एक अन्य परिस्थिति मृतका से बालक को ले जाने के विषय में है । ऐसे किसी निष्कर्ष पर पहुंचने के लिए, विचारण न्यायालय ने अभि. सा. 5 के कथन को निर्दिष्ट किया है, जो मृतका की बहिन है । उसने तारीख 4 मई, 1990 को न्यायालय में अभिलिखित किए गए अपने अभिसाक्ष्य में यह कथन किया था –

'जब कभी मैं अपनी बहिन के पास जाती थी, हर बार वह यह शिकायत करती थी कि स्कूटर और टू-इन-वन की शेष दहेज की रकम न देने के लिए उसके पति और ससुराल वालों द्वारा उसके साथ ठीक व्यवहार नहीं किया जाता है ।'

और यह भी कहा था –

'तारीख 3 जून, 1987 को अंतिम बार मैं मृतका के मकान अर्थात् उसके अलग निवास पर गई थी । स्वर्णा, स्निग्धा, सीमा अपा, बेबी अपा उस दिन मेरे साथ उसके मकान पर गई थी । उस समय मृतका ने हमारे समक्ष पूर्व की भांति शिकायत की थी और इस साक्षी ने यह कहा कि उसने यह कहा था कि अभियुक्तों द्वारा आजकल उस पर हमला किया जा रहा है । उसने हमारे समक्ष यह भी शिकायत की थी कि अभियुक्त उससे बालक को छीनकर ले गया है और उसकी सास आई है और उसके (मृतका) विरुद्ध कोई षड्यंत्र किया जा रहा है । उसने यह भी बताया था कि 'माते एऊ बंचेई देबा नहीं' ।'

ऐसा कथन अभिलेख पर भारतीय साक्ष्य अधिनियम की धारा 32 की सहायता से उस समय लिया गया प्रतीत होता है, जब अपीलार्थी की धारा 304ख के अधीन अपराध के लिए विचारण किया जा रहा था और ऐसा कथन उक्त धारा के खंड (1) के अधीन ग्राह्य था क्योंकि यह मृतका की मृत्यु के कारण और उस संव्यवहार की

परिस्थितियों से संबंधित था जिनमें उसकी मृत्यु हुई थी । ऐसा कथन दंड संहिता, 1860 की धारा 498क के अधीन दंडनीय अपराध के लिए साक्ष्य में ग्राह्य नहीं है और इसे केवल एक अनुश्रुत साक्ष्य होने के रूप में माना जाना चाहिए । धारा 32 अनुश्रुत नियम का अपवाद है और किसी ऐसे व्यक्ति द्वारा, जिसकी मृत्यु हो गई है, अपनी मृत्यु के कारण के संबंध में या ऐसी परिस्थितियों के संबंध में, जिनमें उसकी मृत्यु हुई थी, किए गए कथनों या घोषणाओं के संबंध में है । यदि कोई कथन जो अन्यथा अनुश्रुत नियम के अंतर्गत आता है और साक्ष्य अधिनियम की धारा 32 के अपवादों के अंतर्गत नहीं आता है, तो उसका अभियुक्त की दोषिता का निष्कर्ष निकालने के लिए अवलंब नहीं लिया जा सकता है ।"

(बल देने के लिए रेखांकन किया गया है)

13. यद्यपि विद्वान् काउंसेल द्वारा उद्धृत नहीं किया गया है, तो भी यह प्रतीत होता है कि उसके द्वारा प्रस्तुत की गई प्रतिपादना का समर्थन **इंद्रपाल** बनाम **मध्य प्रदेश राज्य**[1], **भैरों सिंह** बनाम **मध्य प्रदेश राज्य**[2] और **कांतिलाल मार्ताजी पंडोर** बनाम **गुजरात राज्य**[3] वाले मामलों में इस न्यायालय के तीन अन्य निर्णयों से होता है । इन सभी निर्णयों में भी उसी प्रकार के तर्काधार का अनुसरण किया गया प्रतीत होता है जो **गनंथ पटनायक** (उपर्युक्त) वाले मामले में अनुसरण किया गया था अर्थात् जब एक बार न्यायालय ने अभियुक्त को किसी व्यक्ति की मृत्यु से संबंधित आरोप से दोषमुक्त कर दिया गया है, तो सर्वथा मृतक का साक्ष्य भारतीय दंड संहिता की धारा 498क के अधीन आरोप को साबित करने के लिए ग्राह्य नहीं होगा क्योंकि फिर मामला आगे मृतक की मृत्यु से संबंधित नहीं होगा ।

14. यह उल्लेख करना सुसंगत होगा कि वाक्यांश "उन मामलों में, जिनमें उस व्यक्ति की मृत्यु का कारण प्रश्नगत हो" केवल उन मामलों

---

[1] (2001) 10 एस. सी. सी. 736.

[2] (2009) 13 एस. सी. सी. 80.

[3] (2013) 8 एस. सी. सी. 781.

को निर्दिष्ट करने मात्र की अपेक्षा ज्यादा व्यापक है, जिनमें हत्या, आत्महत्या, या दहेज मृत्यु का आरोप है । ऐसे दृष्टांत रहे हैं, जहां न्यायालयों ने ऐसे मामले में कथनों को ग्रहण करने के लिए साक्ष्य अधिनियम की धारा 32(1) का प्रयोग किया है, जहां आरोप एक भिन्न प्रकृति का था या यहां तक कि सिविल कार्यवाही में भी प्रयोग किया है । यह बात साक्ष्य अधिनियम की धारा 32(1) के दूसरे भाग से प्रचुर मात्रा में स्पष्ट होती है, जिसमें यह विनिर्दिष्ट किया गया है कि ऐसे कथन सुसंगत हैं "चाहे उस कार्यवाही की, जिसमें उस व्यक्ति की मृत्यु का कारण प्रश्नगत होता है, प्रकृति कैसी ही क्यों न हो" । साक्ष्य अधिनियम की धारा 32 के दृष्टांत (क) में किसी बलात्संग के मामले में मृतका द्वारा किए गए ऐसे कथन को निर्दिष्ट किया गया है, जिसे इस धारा के अधीन ग्रहण किया जा सकेगा, यही स्थिति साक्ष्य अधिनियम के अधिनियमन के पूर्व भी भारत में थी, जैसा कि **क्वीन** बनाम **बिस्सोरुनजुन मुकर्जी**[1] वाले मामले में इस न्यायालय द्वारा अभिनिर्धारित किया गया है ।

15. **लालजी दुसाध** बनाम **किंग एम्परर**[2] वाले मामले में पटना उच्च न्यायालय ने भारतीय दंड संहिता की धारा 302, 392 और 397 के अधीन आरोपों से संबंधित एक मामले में मृतक द्वारा किए गए कथनों की ग्राह्यता को कायम रखा था । उस मामले में, विपदग्रस्त मृतक के साथ लूट की गई थी और उसी संव्यवहार के भाग के रूप में उसकी हत्या कर दी गई थी । उस मामले में अभियुक्त की ओर से विद्वान् काउंसेल की दलील, अन्य बातों के साथ-साथ, यह थी कि मृतक के मृत्युकालिक कथन को भारतीय दंड संहिता की धारा 392 और 397 के अधीन आरोपों के संबंध में साक्ष्य अधिनियम की धारा 32(1) के अधीन ग्रहण नहीं किया जा सकता था । इस दलील को अस्वीकार करते हुए, उच्च न्यायालय ने निम्नलिखित मत व्यक्त किया था :–

> "अगला विधिक मुद्दा मृत्युकालिक कथनों के संबंध में लिया जाता है ।

---

[1] (1866) 8 डब्ल्यू. आर. क्रिमिनल 75.

[2] ए. आई. आर. 1928 पटना 162.

यह दलील दी गई है कि जहां तक धारा 392 और 397 के अधीन अपराधों के लिए आरोपों का संबंध है, मृत्युकालिक कथन भारतीय साक्ष्य अधिनियम की धारा 32(1) के अधीन ग्राह्य नहीं हैं क्योंकि मृतक की मृत्यु के कारण को उन आरोपों के विचारण में प्रश्नगत नहीं किया गया है । यह दलील दी गई कि इस मुद्दे पर भारतीय विधि वैसी ही है, जैसी आंग्ल विधि है और मृत्यु के कारण के बारे में कोई मृत्युकालिक कथन केवल तब ग्राह्य है जब मृत्यु का कारित करना आरोप का विषय है । मैं इस मत से सहमत नहीं हो सकता हूं । धारा 32 की शब्दावली अति व्यापक है और यह आवश्यक नहीं है कि आरोप मानववध का होना चाहिए । मृत्यु के कारण के बारे में साक्ष्य लूट के आरोप के लिए सुसंगत था और परिणामस्वरूप मृत्यु का कारण अर्थात् अपीलार्थी द्वारा कारित किया गया हमला विचारण में प्रश्नगत था । भारतीय साक्ष्य अधिनियम को अधिनियमित करने से पूर्व क्वीन **बनाम** बिस्सोरुनजुन मुकर्जी [(1866) 6 डब्ल्यू. आर. (क्रि.) वाले मामले में यह अभिनिर्धारित किया गया था कि भारत में आंग्ल विधि के अति संकीर्ण नियम का अनुसरण करने की आवश्यकता नहीं थी और किसी मृत्युकालिक कथन को बलात्संग के आरोप में साक्ष्य के रूप में प्रयुक्त किया जा सकता था । वर्तमान भारतीय साक्ष्य अधिनियम की धारा 32 के दृष्टांतों में से एक में ऐसे साक्ष्य के लिए अभिव्यक्त रूप से उपबंध किया गया है, जहां आरोप आपराधिक मानववध का न होकर बलात्संग का हो ।]"

(बल देने के लिए रेखांकन किया गया है)

16. इसके अतिरिक्त, बहुविध आरोपों के साथ ऐसी किसी कार्यवाही में जहां एक आरोप घोषणाकर्ता की मृत्यु से प्रत्यक्ष रूप से संबद्ध होता है और अन्य आरोप संबद्ध नहीं होता है, तो इस न्यायालय ने घोषणाकर्ता के साक्ष्य को ग्रहण किया था, भले ही अभियोजन पक्ष मृत्यु से संबंधित आरोप को साबित करने में असफल रहा था । उदाहरण के लिए, **परमानंद गंगा प्रसाद** बनाम **एम्परर**[1] वाले मामले में नागपुर उच्च

[1] ए. आई. आर. 1940 नागपुर 340.

न्यायालय ने निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया था :–

"7. ..... हमारे द्वारा यथा वर्णित अभियोजन के वृत्तांत से यह दर्शित होता है कि जांच के आरंभ से लेकर अंत तक मुंडे की मृत्यु का कारण तात्विक था । ऐसा होते हुए, मात्र इस तथ्य से कि हत्या का आरोप असफल रहा था और अभियुक्त के विरुद्ध सिद्ध नहीं किया गया था, कथन उन अन्य अपराधों के प्रयोजनार्थ अग्राह्य नहीं हो जाएगा जो उसी संव्यवहार के अनुक्रम में कारित किए गए थे और जिनके लिए अभियुक्त आरोपित किए गए थे ।

8. हम यह भी मत व्यक्त कर सकते हैं कि किसी विशिष्ट साक्ष्य की ग्राह्यता के संबंध में सभी मामलों में तात्विक समय जब ग्राह्यता की बात को विनिश्चित किया जाना चाहिए, वह समय है, जब न्यायालय साक्ष्य प्राप्त करता है न कि इसका पारिणामिक परिणाम । इस मामले में, जब अभियोजन पक्ष द्वारा कथन फाइल किए गए थे और साबित किए गए थे तब किसी भी परिस्थिति में यह तर्क नहीं दिया जा सकता है कि मृतक की मृत्यु का कारण प्रश्नगत नहीं था । मुंडे की मृत्यु का कारण प्रश्नगत था क्योंकि धारा 302 के अधीन भी एक आरोप था और यह आरोप धारा 239(घ) के अधीन मामले में अन्य आरोपों के साथ उसी संव्यवहार के भाग के रूप में संबद्ध था । इसलिए वह प्रक्रम, जिस पर अभियोजन पक्ष द्वारा न्यायालय के समक्ष इन कथनों को ग्राह्य होने के रूप में प्रस्तुत किया गया था, यह तर्क नहीं दिया जा सकता है कि वे ग्राह्य नहीं थे और कोई दस्तावेज जब एक बार साक्ष्य में स्वीकार कर लिया जाता है, तो मामले में सभी प्रयोजनों के लिए ग्राह्य रहता है । मामले का पश्चात्वर्ती परिणाम अर्थात् हत्या का आरोप असफल रहने की बात से दस्तावेज की ग्राह्यता के लिए किसी प्रकार का कोई अंतर नहीं किया जाना चाहिए । ठीक ऐसा ही प्रिवी कौंसिल के माननीय न्यायमूर्तियों ने बाबू लाल **बनाम** एम्परर [(1938) 25 ए. आई. आर. पीसी 130 = 174 आईसी 1 = 65 आईए 158 = 32 एसएलआर 476 = 39 क्रि. एल. जे. 452 = आईएलआर (1938) 2 कलकत्ता 295 (पीसी)] वाले मामले

> में कहा था कि कार्यवाहियों में वह सुसंगत समय जिस पर संव्यवहार की समानता के बारे में शर्त को पूर्ण किया जाना आवश्यक है, वह अभ्यारोपण करने का समय है न कि उसका पारिणामिक परिणाम । इसलिए हमारा विचार है कि हम किसी दस्तावेज की ग्राह्यता के विषय में यही बात कहने में न्यायोचित होंगे .....।"
>
> (बल देने के लिए रेखांकन किया गया है)

17. उपरोक्त निर्णयों और साक्ष्य अधिनियम की धारा 32(1) की शब्दावली से यह प्रतीत होता है कि उक्त धारा के अधीन ग्राह्यता की कसौटी यह नहीं है कि ग्रहण किया जाने वाला साक्ष्य व्यक्ति की मृत्यु से संबंधित किसी आरोप से प्रत्यक्ष रूप से संबद्ध होना चाहिए, या मृत्यु से संबंधित आरोप साबित नहीं किया जा सका था । बल्कि, कसौटी यह प्रतीत होती है कि मृत्यु का कारण उस मामले में कार्यवाही की प्रकृति को ध्यान में रखे बिना प्रश्नगत किया गया हो और जिस उद्देश्य के लिए ऐसा साक्ष्य ग्रहण किए जाने की ईप्सा की जा रही है वह मृत्यु से संबंधित 'संव्यवहार की परिस्थितियों' का एक भाग होना चाहिए ।

18. धारा में आने वाले 'व्यवहार की परिस्थितियों' वाक्यांश का प्रिवी कौंसिल द्वारा **पकाला नारायण स्वामी** बनाम **किंग एम्परर**[1] वाले मामले में के निर्णय में निर्वचन किया गया है, जिसे साक्ष्य अधिनियम की धारा 32(1) के अधीन साक्ष्य की ग्राह्यता पर प्राधिकृत निर्णय समझा जाता है । उस मामले में, प्रिवी कौंसिल हत्या के एक ऐसे मामले पर विचार कर रही थी जिसमें अभियुक्त के विरुद्ध मुख्य साक्ष्य में से एक साक्ष्य मृतक द्वारा अपनी पत्नी को किया गया कथन था । प्रतिरक्षा पक्ष ने यह दलील दी थी कि ऐसे साक्ष्य को अनुश्रुति नियम के कारण अपवर्जित किया जाना चाहिए था । तथापि, उक्त साक्ष्य को साक्ष्य अधिनियम की धारा 32(1) के अधीन ग्रहण किया गया था और अभियुक्त को दोषसिद्ध किया गया था । अपील में, प्रिवी कौंसिल को जिस एक प्रश्न का उत्तर देना था, वह इस बात के संबंध में था कि क्या मृतक का कथन उचित रूप से ग्रहण किया गया था या नहीं । इस संदर्भ में, प्रिवी कौंसिल ने निम्नलिखित मत व्यक्त किया था :–

---

[1] ए. आई. आर. 1939 पीसी 47.

"भारतीय न्यायालयों में इस धारा के प्रभाव के बारे में कई प्रकार के प्रश्न उठाए गए हैं । यह सुझाव दिया गया है कि कथन संव्यवहार हो जाने के पश्चात् ही किया जाना चाहिए, यह कि कथन करने वाला व्यक्ति किसी भी स्थिति में मरणासन्न होना चाहिए, यह कि 'परिस्थितियों' के अंतर्गत ऐसे कार्य आते हैं जो कि तब और वहां किए गए हों, जब और जहां मृत्यु कारित हुई हो । माननीय न्यायाधीशों की यह राय है कि प्रयुक्त किए गए शब्दों के स्वाभाविक अर्थ से इन परिस्थितियों में से कोई भी परिसीमा व्यक्त नहीं होती है । ऐसा कथन मृत्यु का कारण उद्भूत होने से पूर्व या इसके पूर्व कि मृतक के पास उसे मार डाले जाने का पूर्वानुमान लगाने का कोई कारण हो, किया जा सकता है । परिस्थितियां उसी संव्यवहार की परिस्थितियां होनी चाहिएं : भय या संदेह चाहे किसी विशिष्ट व्यक्ति का हो या अन्यथा, को इंगित करने वाली साधारण अभिव्यक्तियां और जो मृत्यु के कारण से प्रत्यक्ष रूप से संबद्ध न हों, ग्राह्य नहीं होंगी । किंतु मृतक द्वारा किए गए ये कथन कि वह उस घटनास्थल की ओर जा रहा था, जहां उसकी वास्तव में हत्या की गई थी, या उसके इस प्रकार जाने के कारणों के बारे में, या वह किसी विशिष्ट व्यक्ति से मिलने जा रहा था, या उसे ऐसे व्यक्ति द्वारा उसे मिलने के लिए आमंत्रित किया गया था, इनमें से प्रत्येक परिस्थिति उस संव्यवहार की परिस्थितियां होंगी और इस प्रकार की होंगी चाहे व्यक्ति अज्ञात था या अभियुक्त व्यक्ति नहीं था । ऐसा कोई कथन वास्तव में अभियुक्त व्यक्ति का अनभिशंसी कथन हो सकता है । 'संव्यवहार की परिस्थितियां' निस्संदेह एक ऐसा वाक्यांश है, जिससे कुछ परिसीमाएं व्यक्त होती हैं । यह इतना विस्तृत नहीं है, जितना कि इसका 'पारिस्थितिक साक्ष्य' में सदृश उपयोग किया गया है, जिसके अंतर्गत सभी सुसंगत तथ्यों का साक्ष्य आ जाता है । दूसरी ओर, वह 'संबंधित तथ्य और कार्य' की अपेक्षा अधिक संकुचित है । परिस्थितियों का संबंध वास्तविक घटना से कुछ निकट का होना चाहिए : यद्यपि, उदाहरण के लिए, लंबे समय तक दिए जा रहे विष के मामले में वे वास्तविक घातक खुराक देने की तारीख से पर्याप्त अंतराल की तारीखों से संबंधित हो सकती हैं ।

यह मत व्यक्त करना होगा कि 'परिस्थितियां' उस संव्यवहार की हैं, जिसके परिणामस्वरूप घोषणाकर्ता की मृत्यु हुई थी । यह आवश्यक नहीं है कि उसके बजाय कोई ज्ञात संव्यवहार हो जिसमें घोषणाकर्ता की अंततोगत्वा मृत्यु कारित हुई थी क्योंकि साक्ष्य की ग्राह्यता की शर्त यह है कि 'मृत्यु (घोषणाकर्ता की) का कारण प्रश्नगत हो ।' प्रस्तुत मामले में मृतक की मृत्यु का कारण प्रश्नगत है । संव्यवहार वह है जिसमें तारीख 21 या 22 मार्च को मृतक की हत्या की गई थी और उसका शव एक बक्से में पाया गया था जिसे अभियुक्त की ओर से खरीदा गया साबित किया गया था । मृतक द्वारा तारीख 20 या 21 मार्च को किया गया यह कथन कि वह उस स्थान से जहां मृतक रहता था, एक व्यक्ति, अभियुक्त की पत्नी जो अभियुक्त के मकान में रहती थी, से मिलने के लिए रवाना हुआ था, स्पष्ट रूप से उस संव्यवहार की कुछ परिस्थितियों के बारे में कथन होना प्रतीत होता है, जिसमें उसकी मृत्यु हुई थी । इस कथन को ठीक ही ग्रहण किया गया था ।"

(बल देने के लिए रेखांकन किया गया है)

19. विधि के इस सिद्धांत को इस न्यायालय द्वारा विभिन्न अवसरों पर कायम रखा गया है । **शरद बिरधीचंद शारदा** बनाम **महाराष्ट्र राज्य**[1] वाले मामले में इस न्यायालय ने साक्ष्य अधिनियम की धारा 32(1) के सिद्धांतों का "संव्यवहार की परिस्थितियों" से संबंधित सिद्धांतों सहित सारांश दिया था :–

"21. इस प्रकार ऊपर उल्लिखित नजीरों और साक्ष्य अधिनियम की धारा 32(1) की स्पष्ट भाषा को देखने से निम्नलिखित प्रतिपादन सामने आते हैं –

(1) धारा 32 अनुश्रुति के नियम का अपवाद है और ऐसे व्यक्ति का, जो मर जाता है, चाहे वह मृत्यु मानववध हो या आत्महत्या, कथन ग्राह्य बनाती है, परंतु यह तब जबकि ऐसे

[1] [1985] 1 उम. नि. प. 995 = (1984) 4 एस. सी. सी. 116.

कथन का संबंध मृत्यु के कारण से हो, या उससे ऐसी परिस्थितियां स्पष्ट होती हों, जिनके कारण मृत्यु हुई थी । जैसा कि ऊपर उपदर्शित किया गया है, इस संबंध में भारतीय साक्ष्य अधिनियम के अधीन, हमारे समाज की विशिष्ट दशाओं को और हमारे लोगों की विभिन्न प्रकृति और स्वरूप को देखते हुए, यह आवश्यक समझा गया कि अन्याय से बचने की दृष्टि से धारा 32 की परिधि को विस्तृत किया जाए ।

(2) निकटता की कसौटी का अर्थान्वयन अधिक शाब्दिक रूप से नहीं किया जा सकता और उसे सर्वव्यापी रूप से लागू होने वाले फार्मूले में व्यावहारिक रूप से इस प्रकार नहीं लाया जा सकता जिससे कि वह सीमित दायरे में बंध जाए । समय की दूरी प्रत्येक मामले की परिस्थितियों पर निर्भर होगी या उसके साथ ही उसमें परिवर्तन होगा, उदाहरण के लिए जहां कि मृत्यु, ऐसे निरंतर नाटक का, जिसकी प्रक्रिया लंबी है, तर्कसंगत अंत है और जैसी कि वह है, उस कथा का अंत है, वहां उस नाटक की समाप्ति से प्रत्यक्षत: संबंधित प्रत्येक कदम के विषय में किया गया कथन इसलिए ग्राह्य होगा, क्योंकि समस्त कथन को समन्वित रूप से, न कि संदर्भ से हटकर पढ़ना होगा । कभी-कभी अव्यवहित हेतु से संगत कथन या ऐसे कथन जिनसे अव्यवहित हेतु का पता चलता है, इस आधार पर भी ग्राह्य हो सकते हैं कि वे मृत्यु के संव्यवहार के अंग हैं । यह स्पष्ट है कि ये सभी कथन मृतक की जो कि अपनी बात मरणासन्न होकर कहता है, मृत्यु के पश्चात् ही सामने आते हैं । उदाहरण के लिए जहां कि मृत्यु विवाह के बहुत ही संक्षिप्त समय के भीतर होती है या जहां कि समय की दूरी की सीमा 3 या 4 माह से अधिक नहीं है, वहां वह कथन धारा 32 के अधीन ग्राह्य हो सकता है ।

(3) धारा 32 के खंड (1) का द्वितीय भाग इस नियम का दूसरा अपवाद है कि दंड विधि में ऐसे व्यक्ति का साक्ष्य, जिसकी प्रतिपरीक्षा अभियुक्त द्वारा नहीं की जा रही थी या जिसे करने का अवसर नहीं दिया जा रहा था, इसलिए

मूल्यहीन होगा क्योंकि प्रतिपरीक्षा शपथ की सत्यनिष्ठा और पवित्रता के साथ मात्र इस कारण जुड़ी रहती है कि जो व्यक्ति मरने वाला होता है, उसका मिथ्या कथन करना संभाव्य नहीं होता, जब तक यह दर्शित करने के लिए सबल साक्ष्य मौजूद न हो कि कथन या तो उकसाने या सिखाये-पढ़ाने से प्राप्त किया गया है ।

(4) इस ओर ध्यान देना महत्वपूर्ण हो सकता है कि धारा 32 में न केवल मानववध के बारे में उपबंध किया गया है, बल्कि उसके अंतर्गत आत्महत्या भी है; इसलिए ऐसी सभी परिस्थितियां, जो कि मानववध के मामले को साबित करने के लिए सुसंगत हो सकती हैं, आत्महत्या के मामले को साबित करने के लिए समान रूप से सुसंगत होंगी ।

(5) जहां कि साक्ष्य में मृतक द्वारा किए गए कथन और लिखे गए पत्र हैं, जो कि उसकी मृत्यु से प्रत्यक्षत: संसक्त हैं, या संबंधित हैं, और जोकि दुर्भाग्य की कहानी कहते हैं, वहां उक्त कथन धारा 32 की परिधि के भीतर पूरी तरह से आएगा और इसी कारण से वह ग्राह्य होगा । ऐसे मामलों में केवल समय की दूरी, कथन को असंगत नहीं बनाएगी ।"

(बल देने के लिए रेखांकन किया गया है)

20. उपरोक्त निर्णयों के अनुशीलन से यह स्पष्ट हो जाता है कि कुछ परिस्थितियों में क्रूरता के विषय में किसी मृतका पत्नी का साक्ष्य भारतीय दंड संहिता की धारा 498क के अधीन आरोप के लिए विचारण में साक्ष्य अधिनियम की धारा 32(1) के अधीन ग्राह्य हो सकता है । तथापि, कतिपय आवश्यक पूर्व शर्तें हैं, जिन्हें साक्ष्य ग्रहण किए जाने से पूर्व अवश्य पूरा किया जाना चाहिए ।

21. पहली शर्त यह है कि उसकी मृत्यु का कारण मामले में अवश्य प्रश्नगत होना चाहिए । इसमें, उदाहरण के लिए, ऐसे मामले सम्मिलित होंगे, जहां भारतीय दंड संहिता की धारा 498क के अधीन आरोप के साथ-साथ अभियोजन पक्ष ने अभियुक्त को भारतीय दंड संहिता की धारा

302, 306 या 304ख के अधीन भी आरोपित किया हो । तथापि, यह उल्लेख किया जाना आवश्यक है कि जब तक उसकी मृत्यु का कारण प्रश्नगत हो, चाहे मृत्यु से संबंधित आरोप साबित किया गया है या नहीं, ग्राह्यता के विषय में अतात्विक है ।

22. दूसरी शर्त यह है कि अभियोजन पक्ष को यह दर्शित करना होगा कि उस साक्ष्य का संबंध, जिसे भारतीय दंड संहिता की धारा 498क के विषय में ग्रहण किए जाने की ईप्सा की गई है, अवश्य मृत्यु के संव्यवहार की परिस्थितियों से होना चाहिए । साक्ष्य कितना भी दूरस्थ हो सकता है और मृतका की मृत्यु के कारण से कैसे जुड़ा है, यह आवश्यक रूप से प्रत्येक मामले के तथ्यों और परिस्थितियों पर निर्भर करेगा । इस विषय में कोई विनिर्दिष्ट कठोर सिद्धांत या नियम नहीं दिया जा सकता है ।

23. अत: उपरोक्त सीमा तक **गनंथ पटनायक** (उपर्युक्त), **इंद्रपाल** (उपुर्युक्त), **भैरों सिंह** (उपर्युक्त) और **कांतिलाल मर्ताजी पंडोर** (उपर्युक्त) वाले मामलों में इस न्यायालय के निर्णय सही नहीं हो सकते हैं, जिनमें यह अभिनिर्धारित किया गया है कि भारतीय दंड संहिता की धारा 498क के अधीन आरोप को साबित करने के लिए मृतका के साक्ष्य को साक्ष्य अधिनियम की धारा 32(1) के अधीन केवल इस कारण से स्वीकार नहीं किया जा सकता है कि अभियुक्त को मृतका की मृत्यु से संबंधित आरोप से दोषमुक्त कर दिया गया था । ये निर्णय सीमित सीमा तक उलटे जाते हैं ।

24. प्रस्तुत मामले पर आते हैं । हमारी यह राय है कि इस न्यायालय के लिए यह अवधारण करने की कवायद करना आवश्यक नहीं है कि क्या मृतका के कथन को साक्ष्य अधिनियम की धारा 32(1) के अधीन ग्रहण किया जा सकता है या नहीं । जैसा कि राज्य की ओर से विद्वान् काउंसेल द्वारा ठीक ही बताया गया है, इस अपील का विनिश्चय इस पहलू पर विचार किए बिना भी किया जा सकता है क्योंकि अभिलेख पर के अन्य साक्ष्य से अपीलार्थी की दोषिता युक्तियुक्त संदेह के परे स्पष्ट रूप से साबित होती है ।

25. यह तथ्य कि मृतका पत्नी को तंग किया जा रहा था, अभि.

सा. 3 (मृतका की माता) के साक्ष्य से स्पष्ट होता है । उसने अपनी मुख्य परीक्षा में विनिर्दिष्ट रूप से यह कथन किया था कि अपीलार्थी मृतका को उनके विवाह के कुछ दिनों के भीतर यह धमकी देकर उसके पैतृक गृह में वापस लाया था कि यदि अतिरिक्त दहेज नहीं दिया गया, तो वह उसे छोड़ देगा और एक अन्य "सुंदर" लड़की से विवाह कर लेगा । ऐसे तंग किए जाने के परिणामस्वरूप मृतका ने पहली बार अभिकथित रूप से विष खाकर आत्महत्या करने का प्रयत्न किया था । जब उसका अस्पताल में उपचार किया जा रहा था, तब पक्षकारों के बीच एक समझौता हुआ था, जिसमें अपीलार्थी भी भागीदार था, जिसमें यह सहमति हुई थी कि आगे दहेज की कोई मांग नहीं की जाएगी । इस करार को विचारण न्यायालय के समक्ष प्रदर्श पी-3 के रूप में प्रदर्शित किया गया था । यद्यपि उच्च न्यायालय ने यह उपदर्शित किया था कि उक्त समझौता साक्ष्य में ग्राह्य नहीं था, तो भी इस समझौते के विद्यमान होने के तथ्य के बारे में अभि. सा. 9, जो एक स्वतंत्र साक्षी है तथा अभि. सा. 3 द्वारा अभिसाक्ष्य दिया गया था । इसके अतिरिक्त, अभि. सा. 3 द्वारा अपनी प्रतिपरीक्षा में यह कथन किया गया था कि समझौते के पश्चात् भी अपीलार्थी ने मृतका के साथ दुर्व्यवहार करना जारी रखा था । मृतका ने अपने साथ हो रहे दुर्व्यवहार के कारण अंततोगत्वा एक साड़ी से स्वयं को फांसी लगाकर आत्महत्या कर ली थी ।

26. अपीलार्थी की ओर से विद्वान् काउंसेल अपने सर्वोत्तम प्रयासों के बावजूद इस न्यायालय को इस बात के लिए प्रेरित नहीं कर सके कि अभि. सा. 3 का साक्ष्य अविश्वसनीय है । अभि. सा. 3 के साक्ष्य की विश्वसनीयता को कायम रखते हुए निचले न्यायालयों के तीन एक-जैसे निष्कर्ष हैं । अपीलार्थी की ओर से विद्वान् काउंसेल की यह दलील कि अभि. सा. 3 का साक्ष्य अविश्वसनीय है क्योंकि वह मृतका की माता है, स्वीकार नहीं की जा सकती है । विधि का यह एक स्थिर सिद्धांत है कि नातेदार या हितबद्ध साक्षी द्वारा दिए गए साक्ष्य को केवल इसी आधार पर त्यक्त नहीं किया जा सकता है । तथापि, प्रज्ञा के नियम के रूप में, न्यायालय ऐसे नातेदार या हितबद्ध साक्षी के साक्ष्य की और अधिक सावधानीपूर्वक संवीक्षा कर सकता है । इस न्यायालय ने **इलांगोवन**

बनाम **तमिलनाडु राज्य**[1] वाले मामले में निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया है :–

> "7. अपीलार्थी की ओर से विद्वान् काउंसेल की नातेदार साक्षियों के परिसाक्ष्यों के संबंध में पहली दलील के विषय में, यह स्थिर विधि है कि किसी नातेदार या हितबद्ध साक्षी के परिसाक्ष्य को न्यायालयों पर इस अतिरिक्त भार के साथ विचार में लिया जा सकता है कि ऐसे मामलों में ऐसे साक्ष्य की सावधानीपूर्वक संवीक्षा की जाए । [सुधाकर **बनाम** राज्य (2018) 5 एस. सी. सी. 435 वाला मामला देखें] । अत: अपीलार्थी की ओर से काउंसेल की मात्र यह दलील कि मामले में साक्षियों के परिसाक्ष्यों की अनदेखी की जानी चाहिए क्योंकि वे नातेदार थे, न्यायालय के ध्यान में इस पर विश्वास न करने के लिए किसी कारण की ओर ध्यान दिलाए बिना स्वीकार नहीं किया जा सकता है ।"
>
> (बल देने के लिए रेखांकन किया गया है)

27. उपरोक्त को दृष्टिगत करते हुए, हमें उच्च न्यायालय द्वारा अपीलार्थी की भारतीय दंड संहिता की धारा 498क के अधीन दोषसिद्धि और उसे एक वर्ष का कठोर कारावास भुगतने का दंडादेश देते हुए पारित किए गए आक्षेपित निर्णय में हस्तक्षेप करने का कोई कारण दिखाई नहीं देता है ।

28. तद्नुसार, यह अपील खारिज की जाती है । अपीलार्थी जमानत पर है । उसके जमानत बंधपत्र खारिज किए जाते हैं और उसे दंडादेश की शेष अवधि को भुगतने के लिए आज से एक सप्ताह के भीतर संबंधित प्राधिकारियों के समक्ष अभ्यर्पण करने का निदेश दिया जाता है ।

अपील खारिज की गई ।

जस.

---

[1] (2020) 10 एस. सी. सी. 533.

[2022] 2 उम. नि. प. 362

भारतीय स्टेट बैंक और अन्य

बनाम

के. एस. विश्वनाथ

[2022 की सिविल अपील सं. 3490]

20 मई, 2022

न्यायमूर्ति एम. आर. शाह और न्यायमूर्ति बी. वी. नागरत्ना

सेवा विधि – सेवा से पदच्युति – बैंक के उप प्रबंधक-प्रत्यर्थी द्वारा कपटपूर्ण नकदी प्रेषण के दस्तावेज तैयार करके दस लाख रुपए का दुर्विनियोग किया जाना – जांच अधिकारी द्वारा दस्तावेजी और मौखिक साक्ष्य के आधार पर निकाले गए निष्कर्षों से सहमत होकर अनुशासनिक प्राधिकारी द्वारा अपचारी अधिकारी को सेवा से पदच्युत किया जाना – अपील प्राधिकारी द्वारा पुष्टि किया जाना – रिट याचिका में उच्च न्यायालय के एकल न्यायाधीश द्वारा पदच्युति के आदेश को अपास्त किया जाना – उच्च न्यायालय की खंड न्यायपीठ द्वारा बैंक की रिट अपील को खारिज किया जाना – संधार्यता – जहां जांच अधिकारी द्वारा दस्तावेजी व मौखिक साक्ष्य के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला गया हो कि अपचारी अधिकारी मिथ्या दस्तावेज तैयार करके धन का दुर्विनियोग करने का दोषी था और अनुशासनिक प्राधिकारी द्वारा तथ्य के साबित निष्कर्षों से सहमत होते हुए अपचारी अधिकारी को सेवा से पदच्युत किया गया और अपील प्राधिकारी द्वारा भी उसकी पुष्टि की गई, वहां उच्च न्यायालय द्वारा सेवा से पदच्युति के विरुद्ध फाइल की गई रिट याचिका में अपील न्यायालय की भांति संपूर्ण साक्ष्य का पुनर्विलोकन/पुनर्मूल्यांकन करके अपना निष्कर्ष निकालना न्यायोचित नहीं कहा जा सकता है क्योंकि उसके द्वारा ऐसे निष्कर्षों में केवल तब हस्तक्षेप किया जा सकता है, जहां नैसर्गिक न्याय के सिद्धांतों का पालन न किया गया हो या कतई कोई साक्ष्य न हो, अत: अपचारी कर्मचारी की सेवा से पदच्युति को अन्यायोचित नहीं कहा जा सकता है ।

सेवा विधि – सेवा से पदच्युति – बैंक के उप प्रबंधक-प्रत्यर्थी द्वारा कपटपूर्ण नकदी प्रेषण के दस्तावेज तैयार करके दस लाख रुपए का दुर्विनियोग किया जाना – जांच अधिकारी द्वारा दस्तावेजी और मौखिक साक्ष्य के आधार पर निकाले गए निष्कर्षों से सहमत होकर अनुशासनिक प्राधिकारी द्वारा अपचारी अधिकारी को सेवा से पदच्युत किया जाना – अपील प्राधिकारी द्वारा पुष्टि किया जाना – अपचारी कर्मचारी को दांडिक कार्यवाहियों में दंड न्यायालय द्वारा संदेह का फायदा देते हुए दोषमुक्त किया जाना – चूंकि दांडिक मामले और अनुशासनिक कार्यवाहियों में अपेक्षित सबूत के मानदंड भिन्न-भिन्न हैं इसलिए यदि किसी अपचारी कर्मचारी को दांडिक कार्यवाहियों में संदेह का फायदा देते हुए दोषमुक्त कर दिया गया है, तो इससे संपूर्ण अनुशासनिक कार्यवाहियां अविधिमान्य नहीं हो जाएंगी और न ही दोषिता के निष्कर्ष या पारिणामिक दंड की विधिमान्यता पर कोई प्रभाव पड़ेगा ।

वर्तमान अपील के तथ्य संक्षेप में इस प्रकार हैं । इस अपील में प्रत्यर्थी-अपचारी अधिकारी भारतीय स्टेट बैंक, बैंगलूरू की एसएसआई पीन्या 2 स्टेज शाखा में उप प्रबंधक (रोकड़) के रूप में कार्य कर रहा था । वहां दस लाख रुपए की आवश्यकता थी जो बैंक की पीन्या इंडस्ट्रियल इस्टेट शाखा से संग्रहित किए जाने थे । अपचारी अधिकारी ने एक कूटरचित पत्र के आधार पर कपटपूर्वक दस लाख रुपए निकाल लिए और एसएसआई शाखा में हिसाब में नहीं लिए गए । उक्त पत्र पर तात्पर्यित रूप से एसएसआई शाखा के सहायक महाप्रबंधक द्वारा हस्ताक्षर किए गए थे । उसने पत्र पर पाए गए अपने हस्ताक्षर से इनकार किया । बाद में लेखा का मिलान करने पर यह पाया गया कि पीन्या इंडस्ट्रियल इस्टेट शाखा से दस लाख रुपए निकाले गए थे, जो एसएसआई शाखा में जमा किए जाने थे, किंतु उन्हें हिसाब में नहीं लिया गया था और उक्त रकम एसएसआई शाखा में जमा नहीं की गई थी । उसके पश्चात् स्थानीय मुख्य अधिकारी ने केंद्रीय अन्वेषण ब्यूरो में एक शिकायत दी, जिसके आधार पर प्रथम इत्तिला रिपोर्ट रजिस्ट्रीकृत की गई । यह पाया गया था कि कपट ऐसे अंदरूनी व्यक्ति द्वारा किया गया है, जो रोकड़ के प्रेषण के लिए प्रक्रिया तथा एसएसआई शाखा के शाखा प्रबंधक के हस्ताक्षर से भली-भांति परिचित था । प्रत्यर्थी-अपचारी

अधिकारी को निलंबनाधीन रखा गया । उसके पश्चात् अपचारी अधिकारी के विरुद्ध एक विभागीय जांच आरंभ की गई । प्रबंध मंडल द्वारा आरोपों को साबित करने के लिए जांच अधिकारी के समक्ष 41 दस्तावेज और 9 साक्षी पेश किए गए । जांच अधिकारी के निष्कर्षों से नियुक्ति प्राधिकारी सहमत हुआ और सेवा पदच्युति की शास्ति अधिरोपित की, जिसकी पुष्टि अपील प्राधिकारी द्वारा की गई । उसके पश्चात्, प्रत्यर्थी-अपचारी अधिकारी ने उच्च न्यायालय के विद्वान् एकल न्यायाधीश के समक्ष एक रिट याचिका फाइल की । रिट याचिका का निपटारा किए जाने तक, प्रत्यर्थी-अपचारी अधिकारी ने अधिवर्षिता की आयु प्राप्त कर ली । विद्वान् एकल न्यायाधीश ने दंड के आदेश को अपास्त कर दिया और बैंक को मूल रिट याची को पिछले वेतन को छोड़कर सभी पारिणामिक फायदे देने का निदेश दिया क्योंकि इसी बीच उसने अधिवर्षिता की आयु प्राप्त कर ली थी । विद्वान् एकल न्यायाधीश द्वारा नियुक्ति प्राधिकारी द्वारा अधिरोपित दंड के आदेश को अपास्त करते हुए पारित किए गए निर्णय और आदेश से व्यथित और असंतुष्ट होकर बैंक ने उच्च न्यायालय की खंड न्यायपीठ के समक्ष रिट अपील फाइल की । अपचारी अधिकारी ने भी पिछले वेतन से इनकारी के विरुद्ध रिट अपील फाइल की । दोनों रिट अपीलों की सुनवाई, विनिश्चय और निपटारा सामान्य आक्षेपित निर्णय और आदेश द्वारा किया गया । उच्च न्यायालय की खंड न्यायपीठ ने सामान्य आक्षेपित निर्णय और आदेश द्वारा दोनों अपीलें खारिज कर दीं, जिनमें से एक अपीलार्थी-प्रबंध मंडल द्वारा और दूसरी अपचारी अधिकारी द्वारा फाइल की गई थी । उच्च न्यायालय की खंड न्यायपीठ द्वारा पारित किए गए निर्णय से व्यथित और असंतुष्ट होकर बैंक-नियोजक द्वारा उच्चतम न्यायालय में अपील फाइल की गई । उच्चतम न्यायालय द्वारा अपील मंजूर करते हुए,

अभिनिर्धारित – प्रारंभ में यह उल्लेख किया जाना आवश्यक है कि अनुशासनिक प्राधिकारी द्वारा अपचारी अधिकारी के विरुद्ध विभागीय जांच में यह अभिकथन किया गया था कि उसने कपटपूर्वक रोकड़ प्रेषण दस्तावेज तैयार किए और उन्हें पीन्या इंडस्ट्रियल इस्टेट शाखा, बैंगलूरू में प्रस्तुत करके पदधारियों को उन्हें असली होने का विश्वास दिलाया और एसएसआई पीन्या 2 स्टेज शाखा को दस लाख रुपए रोकड़ प्रेषण

के रूप में निकाल लिए और इस रोकड़ को प्राप्त करने के पश्चात् वह एसएसआई पीन्या 2 स्टेज शाखा की बहियों में उसे हिसाब में नहीं लिया । पूर्वोक्त आरोप को साबित करने के लिए प्रबंध मंडल ने 9 साक्षियों की परीक्षा की और 41 दस्तावेज प्रस्तुत किए । पूर्वोक्त आरोप को जांच अधिकारी द्वारा अभि. सा. 1 से अभि. सा. 7 के रूप में परीक्षा किए गए प्रबंध मंडल साक्षियों के अभिसाक्ष्य सहित अभिलेख पर के संपूर्ण साक्ष्य का मूल्यांकन करने पर साबित किया गया अभिनिर्धारित किया गया है । जांच अधिकारी द्वारा अभिलिखित किए गए पूर्वोक्त निष्कर्ष अभिलेख पर के दस्तावेजी तथा मौखिक दोनों प्रकार के साक्ष्य के मूल्यांकन करने पर निकाले गए थे । उपरोक्त के बावजूद, उच्च न्यायालय ने यह मत और अभिनिर्धारित किया कि प्रबंध मंडल अपचारी अधिकारी की अभिकथित अपराध में सहापराधिता को साबित करने में असफल रहा है । पूर्वोक्त से यह देखा जा सकता है कि प्रबंध मंडल घटनाओं की संपूर्ण श्रृंखला को साबित करने में समर्थ रहा है जिससे यह निष्कर्ष निकलता है कि वह अपचारी अधिकारी था जिसने तारीख 6 अगस्त, 1996 का मिथ्या पत्र तैयार किया था ; वह कपटपूर्ण पत्र लेकर नकदी निकालने के लिए शाखा में गया था ; वह ही था जिसने दस लाख रुपए की नकदी/प्रेषण लिया था और उसके पश्चात् उक्त रकम को एसएसआई पीन्या 2 स्टेज शाखा में जमा नहीं किया था । इसके पश्चात्, अपचारी अधिकारी की सहापराधिता को साबित करने के लिए प्रबंध मंडल द्वारा और क्या सिद्ध और साबित किया जाना अपेक्षित था ? उच्च न्यायालय द्वारा पारित किए गए आक्षेपित निर्णय और आदेश से यह प्रतीत होता है कि उच्च न्यायालय ने बैंक/प्रबंध मंडल के अपचारी अधिकारी को पदच्युत करने वाले विनिश्चय को चुनौती देते हुए भारत के संविधान के अनुच्छेद 226/227 के अधीन फाइल की गई रिट याचिका पर इस प्रकार विचार किया था मानो उच्च न्यायालय अपील प्राधिकारी की शक्तियों का प्रयोग कर रहा हो । उच्च न्यायालय ने भारत के संविधान के अनुच्छेद 226/227 के अधीन शक्तियों का प्रयोग करते हुए अभिलेख पर के साक्ष्य का पुनर्मूल्यांकन किया है जो अन्यथा अनुज्ञेय नहीं है, जैसा कि इस न्यायालय द्वारा अनेक विनिश्चयों में अभिनिर्धारित किया गया है । पूर्वोक्त विनिश्चयों में इस न्यायालय

द्वारा अधिकथित की गई विधि को प्रस्तुत मामले के तथ्यों को लागू करते हुए हमारी यह राय है कि उच्च न्यायालय ने अनुशासनिक प्राधिकारी द्वारा प्रत्यर्थी-अपचारी अधिकारी को सेवा से पदच्युत करते हुए पारित किए गए आदेश में हस्तक्षेप करके गंभीर गलती कारित की है । उच्च न्यायालय ने अभिलेख पर के संपूर्ण साक्ष्य का पुनर्मूल्यांकन करके और उसके पश्चात् जांच अधिकारी द्वारा अभिलिखित किए गए और अनुशासनिक प्राधिकारी द्वारा स्वीकार किए गए तथ्य के निष्कर्षों में हस्तक्षेप करके गलती की है । जांच अधिकारी द्वारा अभिलिखित किए गए निष्कर्षों, जो अभिलेख पर के साक्ष्य के मूल्यांकन के आधार पर निकाले गए थे, में हस्तक्षेप करके उच्च न्यायालय द्वारा पारित किया गया आदेश स्पष्ट अवैधता से ग्रसित है । इसमें ऊपर उल्लिखित जांच अधिकारी द्वारा अभिलिखित किए गए निष्कर्षों से यह नहीं कहा जा सकता है कि कतई ऐसा कोई साक्ष्य नहीं था, जिससे इस निष्कर्ष का युक्तियुक्त रूप से समर्थन होता हो कि अपचारी अधिकारी आरोप का दोषी नहीं है । (पैरा 7, 7.1, 7.2 और 7.3)

अब जहां तक प्रत्यर्थी-अपचारी अधिकारी की ओर से दी गई इस दलील का संबंध है कि चूंकि उसे दंड न्यायालय में दोषमुक्त कर दिया गया है और इसलिए उसे अनुशासनिक कार्यवाही में दोषी नहीं ठहराया जा सकता है, पूर्वोक्त दलील में कोई सार नहीं है । दंड न्यायालय द्वारा पारित किए गए निर्णय और आदेश से यह प्रतीत होता है कि उसे संदेह का फायदा दिया गया है । अन्यथा भी, सबूत का मानदंड जो किसी दांडिक मामले और अनुशासनिक कार्यवाहियों में अपेक्षित होता है, भिन्न-भिन्न है । इस तथ्य से कि दंड न्यायालय ने प्रत्यर्थी को उसे संदेह का फायदा देते हुए दोषमुक्त कर दिया था, संपूर्ण अनुशासनिक कार्यवाही किसी प्रकार से अविधिमान्य नहीं हो जाएगी और न ही दोषिता के निष्कर्ष या पारिणामिक दंड की विधिमान्यता प्रभावित होगी । जैसा कि इस न्यायालय द्वारा अनेक विनिश्चयों में अभिनिर्धारित किया गया है, दांडिक कार्यवाही में अपेक्षित सबूत का मानदंड विभागीय जांच में अपेक्षित सबूत के मानदंड से भिन्न होने के कारण दोनों कार्यवाहियों में एक-जैसे आरोपों और साक्ष्य से भिन्न-भिन्न परिणाम निकल सकते हैं, अर्थात् विभागीय कार्यवाहियों में दोषिता का निष्कर्ष और दांडिक

कार्यवाहियों में संदेह का फायदा देते हुए दोषमुक्ति का निष्कर्ष निकाला जा सकता है । (पैरा 9)

अब विचार करने के लिए उद्धृत जिस अगले प्रश्न का संबंध है, यह है कि क्या इस मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में नियुक्ति प्राधिकारी ने अपचारी अधिकारी को सेवा से पदच्युत करके न्यायोचित किया था, दस लाख रुपए की राशि का दुर्विनियोग करने और इसे बैंक में जमा न करने के साबित किए गए आरोप की गंभीरता पर विचार करते हुए यह नहीं कहा जा सकता है कि पदच्युति का आदेश आरोप और अवचार के अननुपातिक था । इस प्रक्रम पर अपचारी अधिकारी द्वारा अपनाई गई अपराधी कार्य प्रणाली पर भी विचार किया जाना चाहिए । अभिलेख पर के साक्ष्य के अनुसार, वह तारीख 6 अगस्त, 1996 को मिथ्या और कूटरचित दस्तावेज के साथ एक अन्य व्यक्ति के साथ गया था और उसने उस व्यक्ति का परिचय नए रोकड़िया के रूप में कराया था तथा उसने आश्वस्त किया था कि वाउचर उसके द्वारा हस्ताक्षरित नहीं किया गया है अपितु अन्य व्यक्ति द्वारा हस्ताक्षरित किया गया है, जिसका उसके द्वारा एक नए रोकड़िया के रूप में परिचय कराया गया था । अत: उसने यह दिखाया कि अभिलेख पर ऐसा कोई साक्ष्य नहीं है कि उसने वास्तव में धन प्राप्त किया था । इससे अपचारी अधिकारी की आपराधिक मन:स्थिति/आचरण दर्शित होता है । इसलिए मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में यह नहीं कहा जा सकता है कि अनुशासनिक प्राधिकारी/सक्षम प्राधिकारी/प्रबंध मंडल ने प्रत्यर्थी-अपचारी अधिकारी को सेवा से पदच्युत करके कोई गलती कारित की थी । उपरोक्त को दृष्टिगत करते हुए और ऊपर उल्लिखित कारणों से उच्च न्यायालय की खंड न्यायपीठ द्वारा अपील को खारिज करते हुए और विद्वान् एकल न्यायाधीश द्वारा पारित किए गए उस निर्णय और आदेश में, जिसके द्वारा प्रत्यर्थी-अपचारी अधिकारी को सेवा से पदच्युत करते हुए अनुशासनिक प्राधिकारी द्वारा अधिरोपित दंड के आदेश में हस्तक्षेप किया गया था, हस्तक्षेप न करते हुए पारित किए गए आक्षेपित निर्णय और आदेश तथा विद्वान् एकल न्यायाधीश द्वारा पारित किए गए निर्णय और आदेश को तद्द्वारा अभिखंडित और अपास्त किया जाता है । प्रबंध मंडल द्वारा प्रत्यर्थी-अपचारी अधिकारी को साबित आरोप और

अवचार के आधार पर पदच्युत करते हुए पारित किए गए आदेश को तद्द्वारा प्रत्यावर्तित किया जाता है । (पैरा 10, 11 और 12)

निर्दिष्ट निर्णय

		पैरा
[2020]	(2020) 3 एस. सी. सी. 423 : **कर्नाटक राज्य** बनाम **एन. गंगा राज** ;	3.3
[1984]	[1985] 3 उम. नि. प. 1160 = (1984) 4 एस. सी. सी. 635 : **राजिन्दर कुमार किन्द्रा** बनाम **दिल्ली प्रशासन** ;	4.2
[1978]	ए. आई. आर. 1978 एस. सी. 1277 : **नंद किशोर प्रसाद** बनाम **बिहार राज्य और अन्य** ।	4.1, 7.3

अपीली (दांडिक) अधिकारिता : 2022 की सिविल अपील सं. 3490.

2011 की रिट अपील सं. 4220 में कर्नाटक उच्च न्यायालय, बंगलुरु द्वारा तारीख 16 मार्च, 2021 को पारित निर्णय और आदेश के विरुद्ध अपील ।

अपीलार्थी की ओर से सर्वश्री संजय कपूर, (सुश्री) मेघा कर्णवाल, अर्जुन भाटिया, (श्रीमती) शुभ्रा कपूर और ललित राजपूत

प्रत्यर्थी की ओर से सर्वश्री अनीश कुमार गुप्ता, निसर्ग चौधरी, (श्रीमती) रचना प्रीति गुप्ता और (सुश्री) रीटा गुप्ता

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति एम. आर. शाह ने दिया ।

न्या. शाह – अपीलार्थी भारतीय स्टेट बैंक-नियोजक ने 2011 की रिट अपील सं. 4220 में कर्नाटक उच्च न्यायालय, बैंगलूरू द्वारा तारीख 16 मार्च, 2021 के पारित किए गए उस आक्षेपित निर्णय और आदेश से व्यथित और असंतुष्ट होकर यह अपील फाइल की है, जिसके द्वारा उच्च न्यायालय ने अपीलार्थी-नियोजक-भारतीय स्टेट बैंक द्वारा फाइल

की गई 2011 की उक्त रिट अपील सं. 4220 खारिज कर दी और अनुशासनिक प्राधिकारी द्वारा पारित किए गए पदच्युति के आदेश को अपास्त करते हुए तथा अपचारी अधिकारी को पारिणामिक फायदों का पिछले वेतन के बिना संदाय करने के लिए बैंक को निदेश देते हुए विद्वान् एकल न्यायाधीश द्वारा पारित किए गए निर्णय और आदेश की पुष्टि की ।

2. वर्तमान अपील के तथ्य संक्षेप में इस प्रकार हैं । इस अपील में प्रत्यर्थी-अपचारी अधिकारी तारीख 14 मार्च, 1996 से भारतीय स्टेट बैंक, बैंगलूरू की एसएसआई पीन्या 2 स्टेज शाखा में उप प्रबंधक (रोकड़) के रूप में कार्य कर रहा था । वहां दस लाख रुपए की आवश्यकता थी जो बैंक की पीन्या इंडस्ट्रियल इस्टेट शाखा से संग्रहित किए जाने थे । अपचारी अधिकारी ने तारीख 6 अगस्त, 1996 के एक कूटरचित पत्र के आधार पर कपटपूर्वक दस लाख रुपए निकाल लिए । अपचारी अधिकारी ने पीन्या इंडस्ट्रियल इस्टेट शाखा में तारीख 6 अगस्त, 1996 का एक मिथ्या पत्र प्रस्तुत किया और पूर्वोक्त दस लाख रुपए की रकम निकाल ली, जो एसएसआई शाखा में हिसाब में नहीं ली गई । तारीख 6 अगस्त, 1996 के पत्र पर तात्पर्यित रूप से एसएसआई शाखा के सहायक महा प्रबंधक, ए. आर. बालासुब्रमण्यन द्वारा हस्ताक्षर किए गए थे । उसने तारीख 6 अगस्त, 1996 के पत्र पर पाए गए अपने हस्ताक्षर से इनकार किया । बाद में लेखा का मिलान करने पर यह पाया गया कि पीन्या इंडस्ट्रियल इस्टेट शाखा से दस लाख रुपए निकाले गए थे, जो एसएसआई शाखा में जमा किए जाने थे, किंतु उन्हें हिसाब में नहीं लिया गया था और उक्त रकम एसएसआई शाखा में जमा नहीं की गई थी । उसके पश्चात् स्थानीय मुख्य अधिकारी ने तारीख 10 नवंबर, 1998 को केंद्रीय अन्वेषण ब्यूरो में एक शिकायत दी, जिसके आधार पर प्रथम इत्तिला रिपोर्ट रजिस्ट्रीकृत की गई । पूर्वोक्त प्रथम इत्तिला रिपोर्ट तारीख 18 सितंबर, 1998 को किए गए आरंभिक अन्वेषण के पश्चात् रजिस्ट्रीकृत की गई थी । यह पाया गया था कि कपट ऐसे अंदरूनी व्यक्ति द्वारा किया गया है, जो रोकड़ के प्रेषण के लिए प्रक्रिया तथा एसएसआई शाखा के शाखा प्रबंधक के हस्ताक्षर से भली-भांति परिचित था । प्रत्यर्थी-अपचारी अधिकारी को निलंबनाधीन रखा गया । उसके

पश्चात् अपचारी अधिकारी के विरुद्ध एक विभागीय जांच आरंभ की गई और उसे निम्नलिखित आरोप पत्र से आरोपित किया गया था :–

"(i) आपने तारीख 6 अगस्त, 1996 को कपटपूर्ण रोकड़ प्रेषण दस्तावेज तैयार किए और उन्हें पीन्या इंडस्ट्रियल इस्टेट शाखा, बैंगलूरू में प्रस्तुत करके पदधारियों को उन्हें असली होने का विश्वास दिलाया और एसएसआई पीन्या II इस्टेट शाखा से रोकड़ प्रेषण के रूप में दस लाख रुपए निकाल लिए और आप एसएसआई पीन्या II इस्टेट शाखा की बहियों में उसे हिसाब में लेने में असफल रहे ।

(ii) आपने तारीख 23 सितंबर, 1998 से तारीख 8 जून, 1988 तक की अवधि के दौरान किसान विकास पत्र और भारतीय स्टेट बैंक कर्मचारी सहकारी प्रत्यय सोसाइटी, बैंगलूरू में विशेष आवधिक जमा करके काफी विनिधान किया और आप अपने द्वारा प्रस्तुत की गई आस्ति और दायित्व विवरणियों में इनका उचित प्रकटन करने में असफल रहे ।

आपके ऊपर (i) में उल्लिखित कृत्य के परिणामस्वरूप बैंक को दस लाख रुपए की असम्यक् हानि उपगत हुई ।"

2.1 प्रबंध मंडल द्वारा आरोपों को साबित करने के लिए जांच अधिकारी के समक्ष 41 दस्तावेज और 9 साक्षी पेश किए गए । प्रबंध मंडल साक्षियों अभि. सा. 1 से अभि. सा. 7 के कथनों/अभिसाक्ष्यों पर विचार करने के पश्चात् जांच अधिकारी ने आरोप सं. 1 को साबित और आरोप सं. 2 को भागत: साबित ठहराते हुए अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की । जांच अधिकारी के निष्कर्षों से नियुक्ति प्राधिकारी सहमत हुआ और सेवा पदच्युति की शास्ति अधिरोपित की, जिसकी पुष्टि अपील प्राधिकारी द्वारा की गई ।

2.2 उसके पश्चात्, प्रत्यर्थी-अपचारी अधिकारी ने उच्च न्यायालय के विद्वान् एकल न्यायाधीश के समक्ष एक रिट याचिका फाइल की । रिट याचिका का निपटारा किए जाने तक, प्रत्यर्थी-अपचारी अधिकारी ने अधिवर्षिता की आयु प्राप्त कर ली । विद्वान् एकल न्यायाधीश ने तारीख 22 मार्च, 2011 के निर्णय और आदेश द्वारा दंड के आदेश को

अपास्त कर दिया और बैंक को मूल रिट याची को पिछले वेतन को छोड़कर सभी पारिणामिक फायदे देने का निदेश दिया क्योंकि इसी बीच उसने अधिवर्षिता की आयु प्राप्त कर ली थी ।

2.3 विद्वान् एकल न्यायाधीश द्वारा नियुक्ति प्राधिकारी द्वारा अधिरोपित दंड के आदेश को अपास्त करते हुए पारित किए गए निर्णय और आदेश से व्यथित और असंतुष्ट होकर बैंक ने उच्च न्यायालय की खंड न्यायपीठ के समक्ष 2011 की रिट अपील सं. 4220 फाइल की । अपचारी अधिकारी ने भी पिछले वेतन से इनकारी के विरुद्ध 2011 की रिट अपील सं. 4599 फाइल की । दोनों रिट अपीलों की सुनवाई, विनिश्चय और निपटारा सामान्य आक्षेपित निर्णय और आदेश द्वारा किया गया । उच्च न्यायालय की खंड न्यायपीठ ने सामान्य आक्षेपित निर्णय और आदेश द्वारा दोनों अपीलें खारिज कर दीं, जिनमें से एक अपीलार्थी-प्रबंध मंडल द्वारा और दूसरी अपचारी अधिकारी द्वारा फाइल की गई थी ।

2.4 उच्च न्यायालय की खंड न्यायपीठ द्वारा 2011 की रिट अपील सं. 4220 को खारिज और विद्वान् एकल न्यायाधीश द्वारा नियुक्ति प्राधिकारी द्वारा अधिरोपित दंड को अपास्त करते हुए पारित किए गए निर्णय और आदेश की पुष्टि करते हुए पारित किए गए आक्षेपित निर्णय और आदेश से व्यथित और असंतुष्ट होकर बैंक-नियोजक ने वर्तमान अपील फाइल की है ।

3. बैंक की ओर से हाजिर होने वाले विद्वान् काउंसेल श्री संजय कपूर ने जोरदार रूप से यह दलील दी कि मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में विद्वान् एकल न्यायाधीश तथा खंड न्यायपीठ, दोनों ने जांच अधिकारी द्वारा अभिलिखित निष्कर्षों में हस्तक्षेप करके तात्विक रूप से गलती की है, जो अभिलेख पर के दस्तावेजी तथा मौखिक दोनों प्रकार के साक्ष्य के मूल्यांकन पर आधारित थे ।

3.1 यह दलील दी गई कि जांच के दौरान प्रबंध मंडल ने आरोपों को साबित करने के लिए कुल नौ साक्षियों की परीक्षा की थी और अभिलेख पर 41 दस्तावेज प्रस्तुत किए थे । प्रबंध मंडल के साक्षी तात्विक रूप से बैंक के कर्मचारी थे और उनकी भी जांच के दौरान

प्रतिपरीक्षा की गई थी । यह दलील दी गई कि प्रस्तुत मामले में अभि. सा. 2 और अभि. सा. 3, रोकड़ अधिकारी और लेखापाल ने प्रेषण की ईप्सा करने के लिए शाखा द्वारा अपनाई जाने वाली परिपाटी की पुष्टि की थी तथा इस तथ्य की भी पुष्टि की थी कि प्रत्यर्थी सुसंगत तारीख को एक और व्यक्ति के साथ आया था, जिसका उसने शाखा के रोकड़िया के रूप में परिचय कराया था । पूर्वोक्त साक्षियों की परीक्षा करके प्रबंध मंडल ने यह सिद्ध और साबित किया है कि प्रत्यर्थी को वाउचर और प्रेषण/नकदी तहखाने के अंदर दिए थे ।

3.1.1 यह दलील दी गई कि साक्षी अर्थात् अभि. सा. 4 शाखा प्रबंधक की परीक्षा करके प्रबंध मंडल ने यह साबित किया है कि जिस शाखा प्रबंधक के अभिकथित हस्ताक्षर अभिकथित पत्र पर पाए गए थे, वह हस्ताक्षर उसके नहीं थे और उसने यह पुष्टि की थी कि दस लाख रुपए के प्रेषण की ईप्सा करते हुए अभिकथित रूप से उसके हस्ताक्षर वाले पत्र पर कतई उसके द्वारा हस्ताक्षर नहीं किए गए थे । उसने अपने साक्ष्य के दौरान प्रसामान्य अपनाई जाने वाली परिपाटी को स्पष्ट किया था ।

3.1.2 यह दलील दी गई कि अभि. सा. 5 और अभि. सा. 6 ने यह पुष्टि की थी कि वह प्रत्यर्थी-अपचारी अधिकारी ही था, जो रोकड़ प्रेषण लेकर एक अन्य व्यक्ति के साथ शाखा में आया था और वह उक्त घटना का साक्षी था ।

3.1.3 शाखा प्रबंधक की ओर से हाजिर होने वाले विद्वान् काउंसेल श्री कपूर द्वारा यह भी दलील दी गई कि यहां तक कि प्रबंध मंडल यह सिद्ध और साबित करने में भी सफल रहा है कि वह प्रत्यर्थी-अपचारी अधिकारी ही था जिसने कपटपूर्ण पत्र तैयार किया था । इसके अतिरिक्त, अभि. सा. 7 फोटोस्टेट दुकान के स्वत्वधारी ने यह पुष्टि की थी कि वह प्रत्यर्थी ही था, जो कपटपूर्ण पत्र टंकित कराने के लिए आया था और उसने अपनी दुकान में इसे टंकित किया था । यह दलील दी गई कि उसने जांच में भी प्रत्यर्थी की शनाख्त की थी ।

3.2 अपीलार्थी-बैंक की ओर से हाजिर होने वाले विद्वान् काउंसेल द्वारा यह दलील दी गई कि अभिलेख पर प्रस्तुत किए गए पूर्वोक्त

सटीक साक्ष्य के बावजूद उच्च न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित करके गलती की है कि बैंक अभिकथित अपराध में प्रत्यर्थी की सहापराधिता को साबित करने में समर्थ नहीं रहा है । यह दलील दी गई कि दंड के आदेश को अपास्त करते हुए विद्वान् एकल न्यायाधीश ने रिट अधिकारिता की व्याप्ति और परिधि तथा सांविधानिक न्यायालय को प्रदत्त न्यायिक पुनर्विलोकन की शक्ति के परे कार्य किया था ।

3.3 **कर्नाटक राज्य** बनाम **एन. गंगा राज**[1] वाले मामले में इस न्यायालय के विनिश्चय का अवलंब लेते हुए अपीलार्थी-बैंक की ओर से हाजिर होने वाले विद्वान् काउंसेल श्री कपूर द्वारा यह दलील दी गई कि उक्त विनिश्चय में इस न्यायालय ने यह मत व्यक्त और अभिनिर्धारित किया था कि किसी सांविधानिक न्यायालय को प्रदत्त न्यायिक पुनर्विलोकन की शक्ति अपीली प्राधिकारी को प्रदत्त शक्ति जैसी नहीं है अपितु केवल विनिश्चय करने की प्रक्रिया तक सीमित है । यह दलील दी गई कि जैसा कि अभिनिर्धारित किया गया है, भारतीय संविधान के अनुच्छेद 226/227 के अधीन उच्च न्यायालय साक्ष्य का पुनर्मूल्यांकन नहीं करेगा, जांच में निकाले गए निष्कर्षों में हस्तक्षेप नहीं करेगा, साक्ष्य की पर्याप्तता या विश्वसनीयता पर विचार नहीं करेगा या तथ्य संबंधी गलती को ठीक नहीं करेगा, चाहे वह कितनी भी गंभीर हो ।

3.4 यह दलील दी गई कि उच्च न्यायालय ने जांच अधिकारी द्वारा अभिलिखित किए गए निष्कर्षों में हस्तक्षेप करके और नियुक्ति प्राधिकारी द्वारा अधिरोपित दंड को अपास्त करके गंभीर गलती की है ।

4. वर्तमान अपील का विरोध करते हुए प्रत्यर्थी-अपचारी अधिकारी की ओर से हाजिर होने वाले विद्वान् काउंसेल ने निम्नलिखित दलीलें दीं :–

(i) इस अपील में प्रत्यर्थी का अपने 28 वर्षों के लंबे सेवाकाल में एक लिपिक के रूप से अपना कार्यभार ग्रहण से लेकर अभिकथित घटना की तारीख तक निष्कलंक अभिलेख रहा है और यहां तक कि दो प्रोन्नतियां भी प्राप्त की हैं ;

(ii) दस लाख रुपए की संपूर्ण रकम अभिकथित रूप से श्री एम.

---

[1] (2020) 3 एस. सी. सी. 423.

एन. किरण नामक व्यक्ति को संदत्त की गई थी, न कि प्रत्यर्थी-अपचारी अधिकारी को ;

(iii) प्रारंभ में शाखा के स्थानीय मुख्य अधिकारी ने श्री एम. आर. श्रीनाथ, सहायक महाप्रबंधक को मामले का अन्वेषण करने का निदेश दिया था । श्री श्रीनाथ ने मामले का अन्वेषण किया और पाया कि एसएसआई पीन्या II शाखा के किसी अधिकारी की कोई अंतर्ग्रस्तता नहीं है और अपचारी अधिकारी को पूरी तरह से मुक्त कर दिया था । यह दलील दी गई कि यह मत व्यक्त किया गया था कि प्रेषण का अनुरोध करते हुए पत्र की शैली अपचारी अधिकारी द्वारा प्रायिक तौर पर अपनाई जाने वाली शैली से मेल खाती थी । यह मत व्यक्त किया गया है कि एसएसआई पीन्या शाखा में किसी दस्तावेज के साथ छेड़छाड़ नहीं की गई थी और यह बात एसएसआई पीन्या शाखा के कर्मचारिवृंद की अंतर्ग्रस्तता न होने का सूचक है ;

(iv) केंद्रीय अन्वेषण ब्यूरो द्वारा अन्वेषण की गई दांडिक कार्यवाहियों में सक्षम दांडिक न्यायालय द्वारा अपचारी अधिकारी को दोषमुक्त कर दिया गया है । विद्वान् एकल न्यायाधीश ने विनिर्दिष्ट रूप से यह मत व्यक्त किया था और अभिनिर्धारित किया था कि जांच नैसर्गिक न्याय के सिद्धांतों के अतिक्रमण के कारण दूषित थी ;

(v) जांच अधिकारी ने प्रत्यर्थी को मात्र अनुमानों और अटकलबाजियों के आधार पर दोषी अभिनिर्धारित किया था ;

(vi) जांच अधिकारी ने अभि. सा. 7 के अभिसाक्ष्य पर विश्वास करके गलती की थी, जिसने फोटो प्रति करने वाली दुकान का प्रबंधक होने का दावा किया था ;

(vii) यह प्रबंधक यह साबित करने में असफल रहा था कि तारीख 6 अगस्त, 1996 का दस्तावेज/पत्र प्रत्यर्थी-अपचारी अधिकारी द्वारा तैयार किया गया था ;

(viii) इसलिए जब एक बार दस्तावेज को तैयार करने की बात ही

अभि. सा. 7 के साक्ष्य से संदेहास्पद हो जाती है, तो प्रत्यर्थी द्वारा उक्त दस्तावेजों पर कूटरचित हस्ताक्षर करने का प्रश्न ही नहीं है ;

(ix) अत: संपूर्ण अभिकथन भ्रांति के आधार पर किया गया है जिसे किसी साक्ष्य द्वारा साबित नहीं किया गया है ।

4.1 **नंद किशोर प्रसाद** बनाम **बिहार राज्य और अन्य**[1] वाले मामले में इस न्यायालय के विनिश्चय का अवलंब लेते हुए यह दलील दी गई कि जैसा कि इस न्यायालय द्वारा अभिनिर्धारित किया गया है, घरेलू अधिकरण न्यायिककल्प स्वरूप के होते हैं । इसलिए नैसर्गिक न्याय के नियमों की न्यूनतम अपेक्षा यह है कि अधिकरण को अपने निष्कर्ष पर ऐसे कुछ साक्ष्य अर्थात् तर्कपूर्ण सामग्री के आधार पर पहुंचना चाहिए जो अपचारी की दोषिता को उसके विरुद्ध लगाए गए आरोपों के संबंध में निश्चितता की कुछ मात्रा के साथ इंगित करती हो ।

4.2 **राजिन्दर कुमार किन्द्रा** बनाम **दिल्ली प्रशासन**[2] वाले मामले में इस न्यायालय के विनिश्चय का अवलंब लेते हुए यह दलील दी गई कि कोई न्यायिककल्प अधिकरण, जो कोई विधिक साक्ष्य न होने के आधार पर निष्कर्ष अभिलिखित करता है, तब ऐसे निष्कर्ष या तो स्वयं उसके अपने निष्कर्ष हैं या अटकलबाजी और अनुमानों पर आधारित हैं । जांच मस्तिष्क का प्रयोग न करने की एक अतिरिक्त खामी से ग्रस्त है और दूषित हो जाती है ।

4.3 न्यायिक पुनर्विलोकन पर यह दलील दी गई कि यदि प्रक्रिया-संबंधी अतिक्रमण और नैसर्गिक न्याय के सिद्धांतों का अतिक्रमण किया गया है, तो न्यायालयों के लिए ऐसी प्रशासनिक कार्रवाई को अपास्त करना न्यायोचित है और बहुत से मामलों में संभवत: नए सिरे से जांच करने का निदेश दे सकते हैं । यह दलील दी गई कि तथापि, प्रस्तुत मामले में अपचारी अधिकारी ने अधिवर्षिता की आयु प्राप्त कर ली है इसलिए उस पर नए सिरे से जांच का भार नहीं डाला जा सकता है और

---

[1] ए. आई. आर. 1978 एस. सी. 1277.

[2] [1985] 3 उम. नि. प. 1160 = (1984) 4 एस. सी. सी. 635.

न्यायालयों को उक्त प्रशासनिक कार्रवाई को ही अपास्त करना चाहिए । यह दलील दी गई कि अत: प्रत्यर्थी को पूर्ण पिछले वेतन के साथ बहाल किया जाना चाहिए था । इसके बजाए उच्च न्यायालय ने प्रत्यर्थी-अपचारी अधिकारी को पिछला वेतन देने के लिए इनकार कर दिया । अत: उच्च न्यायालय द्वारा पारित आक्षेपित निर्णय और आदेश में इस न्यायालय द्वारा भारत के संविधान के अनुच्छेद 136 के अधीन प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग करने के लिए हस्तक्षेप किए जाने की आवश्यकता नहीं है । उपरोक्त दलीलें देते हुए वर्तमान अपील को खारिज करने की प्रार्थना की गई ।

5. प्रत्युत्तर में अपीलार्थी-बैंक की ओर से हाजिर होने वाले विद्वान् काउंसेल ने यह बताया कि विद्वान् एकल न्यायाधीश द्वारा पारित किए गए निर्णय और आदेश, जिसकी पुष्टि खंड न्यायपीठ द्वारा की गई थी, को देखते हुए प्रत्यर्थी-अपचारी अधिकारी को अंतरस्थ फायदों के मद्ये 25.61 लाख रुपए और पेंशन इत्यादि का बकाया तथा उसके पश्चात् 20,502/- रुपए प्रति माह पेंशन के मद्ये मिलेंगे, जो बेइमानी के लिए पुरस्कार देने की कोटि में आएगा ।

6. हमने पक्षकारों की ओर से विद्वान् काउंसेलों को विस्तारपूर्वक सुना ।

7. प्रारंभ में, यह उल्लेख किया जाना आवश्यक है कि अनुशासनिक प्राधिकारी द्वारा अपचारी अधिकारी के विरुद्ध विभागीय जांच में यह अभिकथन किया गया था कि उसने कपटपूर्वक रोकड़ प्रेषण दस्तावेज तैयार किए और उन्हें पीन्या इंडस्ट्रियल इस्टेट शाखा, बैंगलूरू में प्रस्तुत करके पदधारियों को उन्हें असली होने का विश्वास दिलाया और एसएसआई पीन्या 2 स्टेज शाखा को दस लाख रुपए रोकड़ प्रेषण के रूप में निकाल लिए और इस रोकड़ को प्राप्त करने के पश्चात् वह एसएसआई पीन्या 2 स्टेज शाखा की बहियों में उसे हिसाब में नहीं लिया । पूर्वोक्त आरोप को साबित करने के लिए प्रबंध मंडल ने 9 साक्षियों की परीक्षा की और 41 दस्तावेज प्रस्तुत किए । पूर्वोक्त आरोप को जांच अधिकारी द्वारा अभि. सा. 1 से अभि. सा. 7 के रूप में परीक्षा किए गए प्रबंध मंडल साक्षियों के अभिसाक्ष्य सहित अभिलेख पर के

संपूर्ण साक्ष्य का मूल्यांकन करने पर साबित किया गया अभिनिर्धारित किया गया है । जांच रिपोर्ट और जांच अधिकारी द्वारा अभिलिखित किए गए निष्कर्षों पर विचार करने पर यह प्रतीत होता है कि प्रबंध मंडल अपचारी अधिकारी की सहापराधिता को सिद्ध और साबित करने में समर्थ रहा और यह साबित करने में सफल रहा है कि :–

(i) अपचारी अधिकारी ने तारीख 6 अगस्त, 1996 का कपटपूर्ण पत्र तैयार किया था (अभि. सा. 7 की परीक्षा से) जिसने प्रेषण के लिए अनुरोध करते हुए पत्र पर अपचारी अधिकारी की शैली/लिखावट का मिलान किया था (अभि. सा. 1 द्वारा) ;

(ii) वह प्रत्यर्थी-अपचारी अधिकारी था, जो एक और व्यक्ति के साथ आया था जिसने उसका परिचय नए रोकड़िया के रूप में कराया था और अपचारी अधिकारी ने वाउचर प्रस्तुत किया था तथा उसे तहखाने के अंदर से प्रेषण/नकदी दी गई थी (अभि. सा. 2 और अभि. सा. 3 की परीक्षा द्वारा) ;

(iii) शाखा प्रबंधक ने यह पुष्टि की थी कि दस लाख रुपए के प्रेषण की ईप्सा करते हुए अभिकथित रूप से उसके हस्ताक्षर वाले पत्र पर उसके द्वारा हस्ताक्षर नहीं किए गए थे (अभि. सा. 4 द्वारा) ;

(iv) और यह कि वह प्रत्यर्थी-अपचारी अधिकारी था जो रोकड़ प्रेषण के लिए एक अन्य व्यक्ति के साथ शाखा में गया था और रोकड़ प्रेषण प्रत्यर्थी-अपचारी अधिकारी को संदत्त किया गया था ।

जांच अधिकारी द्वारा अभिलिखित किए गए पूर्वोक्त निष्कर्ष अभिलेख पर के दस्तावेजी तथा मौखिक दोनों प्रकार के साक्ष्य के मूल्यांकन करने पर निकाले गए थे । उपरोक्त के बावजूद, उच्च न्यायालय ने यह मत और अभिनिर्धारित किया कि प्रबंध मंडल अपचारी अधिकारी की अभिकथित अपराध में सहापराधिता को साबित करने में असफल रहा है ।

7.1 पूर्वोक्त से यह देखा जा सकता है कि प्रबंध मंडल घटनाओं की

संपूर्ण श्रृंखला को साबित करने में समर्थ रहा है जिससे यह निष्कर्ष निकलता है कि वह अपचारी अधिकारी था जिसने तारीख 6 अगस्त, 1996 का मिथ्या पत्र तैयार किया था ; वह कपटपूर्ण पत्र लेकर नकदी निकालने के लिए शाखा में गया था ; वह ही था जिसने दस लाख रुपए की नकदी/प्रेषण लिया था और उसके पश्चात् उक्त रकम को एसएसआई पीन्या 2 स्टेज शाखा में जमा नहीं किया था । इसके पश्चात्, अपचारी अधिकारी की सहापराधिता को साबित करने के लिए प्रबंध मंडल द्वारा और क्या सिद्ध और साबित किया जाना अपेक्षित था ?

7.2 उच्च न्यायालय द्वारा पारित किए गए आक्षेपित निर्णय और आदेश से यह प्रतीत होता है कि उच्च न्यायालय ने बैंक/प्रबंध मंडल के अपचारी अधिकारी को पदच्युत करने वाले विनिश्चय को चुनौती देते हुए भारत के संविधान के अनुच्छेद 226/227 के अधीन फाइल की गई रिट याचिका पर इस प्रकार विचार किया था मानो उच्च न्यायालय अपील प्राधिकारी की शक्तियों का प्रयोग कर रहा हो । उच्च न्यायालय ने भारत के संविधान के अनुच्छेद 226/227 के अधीन शक्तियों का प्रयोग करते हुए अभिलेख पर के साक्ष्य का पुनर्मूल्यांकन किया है जो अन्यथा अनुज्ञेय नहीं है, जैसा कि इस न्यायालय द्वारा अनेक विनिश्चयों में अभिनिर्धारित किया गया है ।

7.3 हाल ही में, **नंद किशोर प्रसाद** (उपर्युक्त) वाले मामले में न्यायिक पुनर्विलोकन और किसी विभागीय जांच में उच्च न्यायालय की शक्ति तथा विभागीय जांच में अभिलिखित किए गए निष्कर्षों में हस्तक्षेप पर इस न्यायालय के अन्य विनिश्चयों पर विचार करने के पश्चात् यह मत व्यक्त और अभिनिर्धारित किया गया कि उच्च न्यायालय किसी लोक सेवक के विरुद्ध विभागीय जांच करने वाले प्राधिकारियों के विनिश्चय पर एक अपील न्यायालय नहीं है । यह भी मत व्यक्त और अभिनिर्धारित किया गया कि उच्च न्यायालय का सरोकार यह अवधारण करने तक है कि क्या जांच इस बाबत सक्षम प्राधिकारी द्वारा और इस बाबत विहित प्रक्रिया के अनुसार की गई है या नहीं, और क्या नैसर्गिक न्याय के नियमों का अतिक्रमण तो नहीं किया गया है । आगे यह भी मत व्यक्त किया गया कि यदि कुछ ऐसा साक्ष्य

है, जो उस प्राधिकारी ने स्वीकार किया है जिसे जांच करने का कर्तव्य सौंपा गया है और उस साक्ष्य से युक्तियुक्त रूप से इस निष्कर्ष का समर्थन होता है कि अपचारी अधिकारी आरोप के लिए दोषी है, तो भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के अधीन याचिका में उच्च न्यायालय का यह कार्य नहीं है कि वह साक्ष्य का पुनर्विलोकन/पुनर्मूल्यांकन करे और साक्ष्य के आधार पर एक स्वतंत्र निष्कर्ष पर पहुंचें । इस न्यायालय ने पैरा 9 से 14 में, अनुशासनिक प्राधिकारी द्वारा किए गए विनिश्चयों का पुनर्विलोकन करने की उच्च न्यायालय की शक्ति पर अन्य विनिश्चयों पर निम्नलिखित रूप में विचार किया था :–

> "9. आंध्र प्रदेश राज्य **बनाम** एस. श्री रामाराव (ए. आई. आर. 1963 एस. सी. 1723) वाले मामले में इस न्यायालय की एक तीन न्यायाधीशों की न्यायपीठ ने यह अभिनिर्धारित किया है कि उच्च न्यायालय किसी लोक सेवक के विरुद्ध विभागीय जांच करने वाले प्राधिकारियों के विनिश्चय पर अपील न्यायालय नहीं है । इसका सरोकार यह अवधारण करना है कि क्या जांच इस बाबत सक्षम प्राधिकारी द्वारा और इस बाबत विहित प्रक्रिया के अनुसार की गई है या नहीं, और क्या नैसर्गिक न्याय के नियमों का अतिक्रमण तो नहीं किया गया है । इस न्यायालय ने निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया –
>
> > '.....संविधान के अनुच्छेद 226 के अधीन किसी कार्यवाही में उच्च न्यायालय का गठन किसी लोक सेवक के विरुद्ध विभागीय जांच करने वाले प्राधिकारियों के विनिश्चय पर अपील न्यायालय के रूप में नहीं होता है : इसका सरोकार यह अवधारण करना है कि क्या जांच इस बाबत सक्षम प्राधिकारी द्वारा और इस बाबत विहित प्रक्रिया के अनुसार की गई है या नहीं, और क्या नैसर्गिक न्याय के नियमों का अतिक्रमण तो नहीं किया गया है । जहां कुछ ऐसा साक्ष्य है, जिसे जांच करने का कर्तव्य सौंपे गए प्राधिकारी ने स्वीकार किया है और उस साक्ष्य से इस निष्कर्ष का युक्तियुक्त रूप से समर्थन होता हो कि अपचारी अधिकारी आरोप का दोषी है, तो अनुच्छेद 226 के अधीन किसी रिट के लिए याचिका में उच्च

न्यायालय का कार्य साक्ष्य का पुनर्विलोकन करना और साक्ष्य के आधार पर एक स्वतंत्र निष्कर्ष पर पहुंचना नहीं है ।'

10. बी. सी. चतुर्वेदी **बनाम** भारत संघ [(1995) 6 एस. सी. सी. 749 = 1996 एस. सी. सी. (एल एंड एस) 80] वाले मामले में पुन: इस न्यायालय की एक तीन न्यायाधीशों की न्यायपीठ ने यह अभिनिर्धारित किया है कि न्यायिक पुनर्विलोकन की शक्ति किसी विनिश्चय की अपील नहीं है अपितु उस रीति का पुनर्विलोकन करना है जिस रीति में विनिश्चय किया गया है । न्यायिक पुनर्विलोकन की शक्ति का अभिप्राय: यह सुनिश्चित करना है कि व्यक्ति के साथ उचित बर्ताव किया गया हो, न कि यह सुनिश्चित करना है कि वह निष्कर्ष जिस पर प्राधिकारी पहुंचता है, वह आवश्यक रूप से न्यायालय की दृष्टि में सही हो । न्यायालय/अधिकरण अपनी न्यायिक पुनर्विलोकन की शक्ति में साक्ष्य का पुनर्मूल्यांकन करने और साक्ष्य के आधार पर स्वयं अपने निष्कर्ष पर पहुंचने के लिए अपील प्राधिकारी के रूप में कार्य नहीं करता है । इस मामले में निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया गया था (एस. सी. सी. पृ. 759-60, पैरा 12-13) –

'12. न्यायिक पुनर्विलोकन किसी विनिश्चय की अपील नहीं है, अपितु उस रीति का पुनर्विलोकन करना है, जिस रीति में विनिश्चय किया गया है । न्यायिक पुनर्विलोकन की शक्ति का अभिप्राय: यह सुनिश्चित करना है कि व्यक्ति के साथ उचित बर्ताव किया गया हो, न कि यह सुनिश्चित करना है कि वह निष्कर्ष जिस पर प्राधिकारी पहुंचता है, वह आवश्यक रूप से न्यायालय की दृष्टि में सही हो । जब किसी लोक सेवक द्वारा किए गए अवचार के आरोपों पर जांच की जाती है, तो न्यायालय/अधिकरण का सरोकार यह अवधारण करना है कि क्या जांच सक्षम अधिकारी द्वारा की गई थी या क्या नैसर्गिक न्याय के नियमों का पालन किया गया है या नहीं, क्या निष्कर्ष या परिणाम कुछ साक्ष्य पर आधारित हैं या नहीं, जिस प्राधिकारी को जांच करने की शक्ति सौंपी गई है उसे तथ्य संबंधी निष्कर्ष या परिणाम पर पहुंचने की

अधिकारिता, शक्ति और प्राधिकार है या नहीं । न तो साक्ष्य अधिनियम के तकनीकी नियम और न ही इसमें यथा परिभाषित तथ्य के सबूत या साक्ष्य अनुशासनिक कार्यवाही को लागू होते हैं । जब प्राधिकारी यह स्वीकार कर लेता है कि साक्ष्य और निष्कर्ष का उनसे समर्थन होता है, तो अनुशासनिक प्राधिकारी यह अभिनिर्धारित करने का हकदार है कि अपचारी अधिकारी आरोप का दोषी है । न्यायालय/अधिकरण अपनी न्यायिक पुनर्विलोकन की शक्ति में साक्ष्य का पुनर्मूल्यांकन करने और साक्ष्य के आधार पर स्वयं अपने स्वतंत्र निष्कर्ष पर पहुंचने के लिए अपील प्राधिकारी के रूप में कार्य नहीं करता है । न्यायालय/अधिकरण वहां हस्तक्षेप कर सकता है जहां प्राधिकारी ने अपचारी अधिकारी के विरुद्ध कार्यवाहियां नैसर्गिक न्याय के नियमों से विसंगत रीति में या जांच की पद्धति विहित करने वाले कानूनी नियमों का अतिक्रमण करके की हैं या जहां अनुशासनिक प्राधिकारी द्वारा निकाला गया निष्कर्ष या परिणाम किसी साक्ष्य पर आधारित नहीं है । यदि निष्कर्ष या परिणाम ऐसा है कि कोई युक्तियुक्त व्यक्ति कभी ऐसे निष्कर्ष पर नहीं पहुंचेगा, तो न्यायालय/अधिकरण उस निष्कर्ष या परिणाम में हस्तक्षेप कर सकेगा और अनुतोष में परिवर्तन कर सकेगा जिससे कि इसे प्रत्येक मामले के तथ्यों के लिए समुचित बनाया जा सके ।

13. अनुशासनिक प्राधिकारी तथ्यों का एकमात्र न्यायाधीश (जज) होता है । जहां अपील की जाती है, वहां अपील प्राधिकारी को साक्ष्य या दंड की प्रकृति का पुनर्मूल्यांकन करने की समविस्तीर्ण शक्ति है । किसी अनुशासनिक जांच में, विधिक साक्ष्य का कठोर सबूत और उस साक्ष्य के आधार पर निष्कर्ष निकालना सुसंगत नहीं है । न्यायालय/अधिकरण के समक्ष साक्ष्य की पर्याप्तता या साक्ष्य की विश्वसनीयता की दलील दिया जाना अनुज्ञात नहीं किया जा सकता है । भारत संघ **बनाम** एच. सी. गोयल [(1964) 4 एस. सी. आर. 718 = ए. आई. आर. 1964 एस. सी. 364] वाले मामले में इस

न्यायालय ने पृष्ठ 728 पर यह अभिनिर्धारित किया है कि यदि अनुशासनिक प्राधिकारी द्वारा साक्ष्य पर विचार करके निकाला गया निष्कर्ष अनुचित है या अभिलेख को देखने से ही स्पष्ट गलती से ग्रसित है या कतई किसी साक्ष्य पर आधारित नहीं है, तो उत्प्रेषण रिट जारी की जा सकती है ।'

12. स्टेट बैंक ऑफ बीकानेर एंड जयपुर **बनाम** नेमी चंद नलवाया [(2011) 4 एस. सी. सी. 584 = (2011) 1 एस. सी. सी. (एल एंड एस) 721] वाले मामले में इस न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि न्यायालय घरेलू जांच में अपील न्यायालय के रूप में कार्य नहीं करेंगे और प्रस्तुत किए गए साक्ष्य का पुननिर्धारण नहीं करेंगे और न ही इस आधार पर हस्तक्षेप करेंगे कि अभिलेख पर सामग्री के आधार पर एक अन्य मत संभव है । यदि जांच निष्पक्ष और उचित रूप से की गई है और निष्कर्ष साक्ष्य पर आधारित हैं, तो साक्ष्य की पर्याप्तता या साक्ष्य की विश्वसनीय प्रकृति का प्रश्न विभागीय जांच में निकाले गए निष्कर्षों में हस्तक्षेप करने का आधार नहीं होगा । इस न्यायालय ने निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया (एस. सी. सी. पृष्ठ 587-88, पैरा 7 और 10) ;

'7. अब यह सुस्थिर है कि न्यायालय घरेलू जांच में अपील न्यायालय के रूप में कार्य नहीं करेंगे और प्रस्तुत किए गए साक्ष्य का पुननिर्धारण नहीं करेंगे और न ही इस आधार पर हस्तक्षेप करेंगे कि अभिलेख पर सामग्री के आधार पर एक अन्य मत संभव है । यदि जांच निष्पक्ष और उचित रूप से की गई है और निष्कर्ष साक्ष्य पर आधारित हैं, तो साक्ष्य की पर्याप्तता या साक्ष्य की विश्वसनीय प्रकृति का प्रश्न विभागीय जांच में निकाले गए निष्कर्षों में हस्तक्षेप करने का आधार नहीं होगा । अत: न्यायालय विभागीय जांच में अभिलिखित किए गए तथ्य के निष्कर्षों में वहां के सिवाय हस्तक्षेप नहीं करेगा जहां ऐसे निष्कर्ष किसी साक्ष्य पर आधारित नहीं हैं या जहां वे स्पष्ट रूप से अनुचित हैं । अनुचितता का पता लगाने की कसौटी यह देखना है कि क्या

कोई अधिकरण युक्तियुक्त रूप से कार्य करते हुए अभिलेख पर सामग्री के आधार पर ऐसे निष्कर्ष या परिणाम पर पहुंच सकता था या नहीं । तथापि, न्यायालय अनुशासनिक विषयों में तब हस्तक्षेप कर सकते हैं यदि नैसर्गिक न्याय के सिद्धांतों या कानूनी विनियमों का अतिक्रमण किया गया हो या यदि आदेश मनमाना, स्वेच्छाचारी, असद्भावी या बाह्य बातों पर आधारित होना पाया जाता है । [बी. सी. चतुर्वेदी **बनाम** भारत संघ (1995) 6 एस. सी. सी. 749 = 1996 एस. सी. सी. (एल एंड एस) 80, भारत संघ **बनाम** जी. गनायुथम (1997) 7 एस. सी. सी. 463 = 1997 एस. सी. सी. (एल एंड एस) 1806, बैंक ऑफ इंडिया **बनाम** देगाला सूर्यनारायण (1999) 5 एस. सी. सी. 762 = 1999 एस. सी. सी. (एल एंड एस) 1036 और बंबई उच्च न्यायालय **बनाम** शशिकांत एस. पाटिल (2000) 1 एस. सी. सी. 416 = 2000 एस. सी. सी. (एल एंड एस) 144 वाले मामले देखें] ।

* * * *

10. इस तथ्य से कि दांडिक न्यायालय ने बाद में प्रत्यर्थी को संदेह का फायदा देते हुए उसे दोषमुक्त कर दिया था, संपूर्ण अनुशासनिक कार्यवाही किसी प्रकार से अविधिमान्य नहीं हो जाएगी और न ही दोषिता के निष्कर्ष या पारिणामिक दंड की विधिमान्यता प्रभावित होगी । दांडिक कार्यवाहियों में अपेक्षित सबूत का मानदंड विभागीय जांच में अपेक्षित सबूत के मानदंड से भिन्न होने के कारण एक-जैसे आरोपों और साक्ष्य से दोनों कार्यवाहियों में भिन्न-भिन्न परिणाम हो सकते हैं अर्थात् विभागीय कार्यवाहियों में दोषिता के निष्कर्ष और दांडिक कार्यवाहियों में संदेह का फायदा देते हुए दोषमुक्ति । इतना ही नहीं, जब विभागीय कार्यवाहियां दांडिक कार्यवाहियों की तुलना में समय के हिसाब से घटना के अधिक सन्निकट हों । दांडिक न्यायालय द्वारा निकाले गए निष्कर्षों का पहले समाप्त की गई घरेलू जांच पर कोई प्रभाव नहीं होगा । कोई कर्मचारी जो जांच में निकाले गए निष्कर्षों और अनुशासनिक

प्राधिकारी द्वारा दिए गए दंड को चुनौती न देकर उसे अंतिमता प्राप्त करने देता है, तो वह कई वर्षों के पश्चात् इस आधार पर विनिश्चय को चुनौती नहीं दे सकता है कि बाद में दांडिक न्यायालय ने उसे दोषमुक्त कर दिया है ।'

13. भारत संघ **बनाम** पी. गुनाशेकरन [(2015) 2 एस. सी. सी. 610 = (2015) 1 एस. सी. सी. (एल एंड एस) 554] के रूप में संप्रकाशित एक अन्य निर्णय में इस न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि साक्ष्य का पुनर्मूल्यांकन करते समय उच्च न्यायालय अनुशासनिक कार्यवाहियों में एक अपील प्राधिकरण के रूप में कार्य नहीं कर सकता है । इस न्यायालय ने वे मानदंड अभिनिर्धारित किए कि कब उच्च न्यायालय अनुशासनिक कार्यवाहियों में हस्तक्षेप नहीं करेगा (एस. सी. सी. पृष्ठ 617, पैरा 13) –

'13. भारत के संविधान के अनुच्छेद 226/227 के अधीन उच्च न्यायालय –

(i) साक्ष्य का पुनर्मूल्यांकन नहीं करेगा ;

(ii) जांच में निकाले गए निष्कर्षों में हस्तक्षेप नहीं करेगा, यदि जांच विधि के अनुसार की गई है ;

(iii) साक्ष्य की पर्याप्तता पर विचार नहीं करेगा ;

(iv) साक्ष्य की विश्वसनीयता पर विचार नहीं करेगा ;

(v) यदि ऐसा कुछ विधिक साक्ष्य है जिस पर निष्कर्ष आधारित हो सकता है, हस्तक्षेप नहीं करेगा ;

(vi) तथ्य संबंधी गलती में सुधार नहीं करेगा चाहे यह कितनी भी गंभीर प्रतीत होती हो ;

(vii) दंड की आनुपातिकता पर विचार नहीं करेगा, जब तक कि इससे उसकी अंतश्चेतना को धक्का न पहुंचता हो ।'

14. दूसरी ओर, प्रत्यर्थी की ओर से विद्वान् काउंसेल ने

इलाहाबाद बैंक **बनाम** कृष्ण नारायण तिवारी [(2017) 2 एस. सी. सी. 308 = (2017) 1 एस. सी. सी. (एल एंड एस) 335] के रूप में संप्रकाशित निर्णय का अवलंब लिया, जिसमें इस न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया था कि यदि अनुशासनिक प्राधिकारी ऐसा निष्कर्ष अभिलिखित करता है जिसका किसी प्रकार के किसी साक्ष्य से समर्थन नहीं होता है या निष्कर्ष ऐसा है जो अयुक्तियुक्त रूप से निकाला गया है, तो रिट न्यायालय अनुशासनिक कार्यवाहियों में निकाले गए निष्कर्ष में हस्तक्षेप कर सकता है । हम यह नहीं पाते हैं कि इस कसौटी के आधार पर भी अधिकरण या उच्च न्यायालय अनुशासनिक प्राधिकारी द्वारा अभिलिखित किए गए निष्कर्षों में हस्तक्षेप कर सकता है । यह कोई साक्ष्य न होने या निष्कर्ष अनुचित होने का मामला नहीं है । प्रत्यर्थी अवचार का दोषी है, इस निष्कर्ष में केवल इस आधार पर हस्तक्षेप किया गया है कि विभाग के साक्ष्य में विसंगतियां हैं । साक्ष्य में विसंगतियां होने से यह कोई साक्ष्य न होने का मामला नहीं बन जाएगा । जांच अधिकारी ने साक्ष्य का मूल्यांकन किया है और यह निष्कर्ष निकाला है कि प्रत्यर्थी अवचार का दोषी है ।"

इसके पश्चात् इस न्यायालय ने पैरा 7, 8 और 15 में निम्नलिखित मत व्यक्त और अभिनिर्धारित किया :–

"7. अनुशासनिक प्राधिकारी ने इस निष्कर्ष पर पहुंचने के लिए कि प्रत्यर्थी के विरुद्ध लगाए गए आरोप साबित होते हैं, जांच अधिकारी के समक्ष प्रस्तुत किए गए साक्ष्य पर विचार किया है ।

8. हम यह पाते हैं कि अधिकरण द्वारा दंड के आदेश में किया गया हस्तक्षेप, जिसकी पुष्टि उच्च न्यायालय द्वारा की गई है, स्पष्ट गलती से ग्रसित है । न्यायिक पुनर्विलोकन की शक्ति विनिश्चय करने की प्रक्रिया का पुनर्विलोकन करने तक सीमित है । सांविधानिक न्यायालय या अधिकरण को प्रदत्त न्यायिक पुनर्विलोकन की शक्ति एक अपील प्राधिकरण की शक्ति नहीं है ।

* * * *

15. अनुशासनिक प्राधिकारी ने जांच अधिकारी के निष्कर्षों से सहमति व्यक्त की थी और दंड का आदेश पारित किया था । राज्य सरकार के समक्ष की गई अपील भी खारिज हो गई थी । जब एक बार विभागीय प्राधिकारी द्वारा साक्ष्य को स्वीकार किया गया है, तो अधिकरण या उच्च न्यायालय न्यायिक पुनर्विलोकन की शक्ति का प्रयोग करते हुए अभिलिखित किए गए तथ्यों के निष्कर्षों में साक्ष्य का पुनर्मूल्यांकन करते हुए इस प्रकार हस्तक्षेप नहीं कर सकता था मानो न्यायालय अपील प्राधिकरण हो । हम यह भी अवेक्षा कर सकते हैं कि उक्त निर्णय में एस. श्री रामाराव [आंध्र प्रदेश राज्य **बनाम** एस. श्री रामाराव, ए. आई. आर. 1963 एस. सी. 1723] और बी. सी. चतुर्वेदी [बी. सी. चतुर्वेदी **बनाम** भारत संघ (1995) 6 एस. सी. सी. 749 = 1996 एस. सी. सी. (एल एंड एस) 80] वाले मामलों में बृहत्तर न्यायपीठ के निर्णयों, जिनका ऊपर उल्लेख किया गया है, पर विचार नहीं किया गया है । अत: अधिकरण और उच्च न्यायालय द्वारा पारित किए गए आदेश स्पष्ट अवैधता से ग्रसित हैं और विधि में कायम नहीं रखे जा सकते हैं ।"

8. पूर्वोक्त विनिश्चयों में इस न्यायालय द्वारा अधिकथित की गई विधि को प्रस्तुत मामले के तथ्यों को लागू करते हुए हमारी यह राय है कि उच्च न्यायालय ने अनुशासनिक प्राधिकारी द्वारा प्रत्यर्थी-अपचारी अधिकारी को सेवा से पदच्युत करते हुए पारित किए गए आदेश में हस्तक्षेप करके गंभीर गलती कारित की है । उच्च न्यायालय ने अभिलेख पर के संपूर्ण साक्ष्य का पुनर्मूल्यांकन करके और उसके पश्चात् जांच अधिकारी द्वारा अभिलिखित किए गए और अनुशासनिक प्राधिकारी द्वारा स्वीकार किए गए तथ्य के निष्कर्षों में हस्तक्षेप करके गलती की है । जांच अधिकारी द्वारा अभिलिखित किए गए निष्कर्षों, जो अभिलेख पर के साक्ष्य के मूल्यांकन के आधार पर निकाले गए थे, में हस्तक्षेप करके उच्च न्यायालय द्वारा पारित किया गया आदेश स्पष्ट अवैधता से ग्रसित है । इसमें ऊपर उल्लिखित जांच अधिकारी द्वारा अभिलिखित किए गए निष्कर्षों से यह नहीं कहा जा सकता है कि कतई ऐसा कोई साक्ष्य नहीं था, जिससे इस निष्कर्ष का युक्तियुक्त रूप से समर्थन होता

हो कि अपचारी अधिकारी आरोप का दोषी नहीं है ।

9. अब जहां तक प्रत्यर्थी-अपचारी अधिकारी की ओर से दी गई इस दलील का संबंध है कि चूंकि उसे दंड न्यायालय में दोषमुक्त कर दिया गया है और इसलिए उसे अनुशासनिक कार्यवाही में दोषी नहीं ठहराया जा सकता है, पूर्वोक्त दलील में कोई सार नहीं है । दंड न्यायालय द्वारा पारित किए गए निर्णय और आदेश से यह प्रतीत होता है कि उसे संदेह का फायदा दिया गया है । अन्यथा भी, सबूत का मानदंड जो किसी दांडिक मामले और अनुशासनिक कार्यवाहियों में अपेक्षित होता है, भिन्न-भिन्न है । इस तथ्य से कि दंड न्यायालय ने प्रत्यर्थी को उसे संदेह का फायदा देते हुए दोषमुक्त कर दिया था, संपूर्ण अनुशासनिक कार्यवाही किसी प्रकार से अविधिमान्य नहीं हो जाएगी और न ही दोषिता के निष्कर्ष या पारिणामिक दंड की विधिमान्यता प्रभावित होगी । जैसा कि इस न्यायालय द्वारा अनेक विनिश्चयों में अभिनिर्धारित किया गया है, दांडिक कार्यवाही में अपेक्षित सबूत का मानदंड विभागीय जांच में अपेक्षित सबूत के मानदंड से भिन्न होने के कारण दोनों कार्यवाहियों में एक-जैसे आरोपों और साक्ष्य से भिन्न-भिन्न परिणाम निकल सकते हैं, अर्थात् विभागीय कार्यवाहियों में दोषिता का निष्कर्ष और दांडिक कार्यवाहियों में संदेह का फायदा देते हुए दोषमुक्ति का निष्कर्ष निकाला जा सकता है ।

10. अब विचार करने के लिए उद्भूत जिस अगले प्रश्न का संबंध है, यह है कि क्या इस मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में नियुक्ति प्राधिकारी ने अपचारी अधिकारी को सेवा से पदच्युत करके न्यायोचित किया था, दस लाख रुपए की राशि का दुर्विनियोग करने और इसे बैंक में जमा न करने के साबित किए गए आरोप की गंभीरता पर विचार करते हुए यह नहीं कहा जा सकता है कि पदच्युति का आदेश आरोप और अवचार के अननुपातिक था । इस प्रक्रम पर अपचारी अधिकारी द्वारा अपनाई गई अपराधी कार्य प्रणाली पर भी विचार किया जाना चाहिए । अभिलेख पर के साक्ष्य के अनुसार, वह तारीख 6 अगस्त, 1996 को मिथ्या और कूटरचित दस्तावेज के साथ एक अन्य व्यक्ति के साथ गया था और उसने उस व्यक्ति का परिचय नए रोकड़िया के रूप में कराया था तथा उसने आश्वस्त किया था कि वाउचर उसके द्वारा

हस्ताक्षरित नहीं किया गया है अपितु अन्य व्यक्ति द्वारा हस्ताक्षरित किया गया है, जिसका उसके द्वारा एक नए रोकड़िया के रूप में परिचय कराया गया था । अत: उसने यह दिखाया कि अभिलेख पर ऐसा कोई साक्ष्य नहीं है कि उसने वास्तव में धन प्राप्त किया था । इससे अपचारी अधिकारी की आपराधिक मन:स्थिति/आचरण दर्शित होता है । इसलिए मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में यह नहीं कहा जा सकता है कि अनुशासनिक प्राधिकारी/सक्षम प्राधिकारी/प्रबंध मंडल ने प्रत्यर्थी-अपचारी अधिकारी को सेवा से पदच्युत करके कोई गलती कारित की थी ।

11. उपरोक्त को दृष्टिगत करते हुए और ऊपर उल्लिखित कारणों से उच्च न्यायालय की खंड न्यायपीठ द्वारा अपील को खारिज करते हुए और विद्वान् एकल न्यायाधीश द्वारा पारित किए गए उस निर्णय और आदेश में, जिसके द्वारा प्रत्यर्थी-अपचारी अधिकारी को सेवा से पदच्युत करते हुए अनुशासनिक प्राधिकारी द्वारा अधिरोपित दंड के आदेश में हस्तक्षेप किया गया था, हस्तक्षेप न करते हुए पारित किए गए आक्षेपित निर्णय और आदेश तथा विद्वान् एकल न्यायाधीश द्वारा पारित किए गए निर्णय और आदेश को तद्द्वारा अभिखंडित और अपास्त किया जाता है ।

12. प्रबंध मंडल द्वारा प्रत्यर्थी-अपचारी अधिकारी को साबित आरोप और अवचार के आधार पर पदच्युत करते हुए पारित किए गए आदेश को तद्द्वारा प्रत्यावर्तित किया जाता है ।

13. तदनुसार, यह अपील मंजूर की जाती है । मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में खर्चे के बारे में कोई आदेश नहीं किया जाएगा ।

अपील मंजूर की गई ।

जस.

[2022] 2 उम. नि. प. 389

उत्तम

बनाम

महाराष्ट्र राज्य

[2012 की दांडिक अपील सं. 485]

2 जून, 2022

न्यायमूर्ति बी. आर. गवई और न्यायमूर्ति हिमा कोहली

साक्ष्य अधिनियम, 1872 (1872 का 1) – धारा 32 [सपठित भारतीय दंड संहिता, 1860 की धारा 302] – मृत्युकालिक कथन – अभियुक्त-अपीलार्थी द्वारा अभिकथित रूप से अपनी पत्नी पर मिट्टी का तेल छिड़क कर आग लगाया जाना – पत्नी-मृतका को पहुंची दाह क्षतियों के कारण उसकी मृत्यु होने से पूर्व दो शासकीय प्राधिकारियों (विशेष कार्यपालक मजिस्ट्रेट और अन्वेषक अधिकारी) द्वारा दो अलग-अलग लिखित मृत्युकालिक कथन अभिलिखित किया जाना – मृतका द्वारा अपने पिता और एक अन्य साक्षी को भी दो मौखिक मृत्युकालिक कथन किया जाना – मृत्युकालिक कथनों का अवलंब लेकर अभियुक्त-अपीलार्थी को हत्या के अपराध के लिए दोषसिद्ध किया जाना – अपील में उच्च न्यायालय द्वारा लिखित मृत्युकालिक कथनों को त्यक्त किया जाना किंतु मौखिक मृत्युकालिक कथनों का अवलंब लेकर अभियुक्त की दोषसिद्धि को कायम रखा जाना – जहां न्यायालय द्वारा एक से अधिक मृत्युकालिक कथन विद्यमान होना पाया जाता है, वहां उनमें से प्रत्येक की सावधानी और सतर्कता से परीक्षा की जानी आवश्यक है और न्यायालय को केवल अपना यह समाधान करने के पश्चात् कि कौन सा मृत्युकालिक कथन संदिग्ध परिस्थितियों से मुक्त है और स्वेच्छा से किया गया प्रतीत होता है, उसे स्वीकार किया जाना चाहिए और यदि किसी मृत्युकालिक कथन में कुछ खामी पाई जाती है, तो यह अभियुक्त को दोषसिद्ध करने के लिए एकमात्र आधार नहीं हो सकता है ।

साक्ष्य अधिनियम, 1872 – धारा 32 [सपठित भारतीय दंड संहिता,

1860 की धारा 302] – मृत्युकालिक कथन – अभियुक्त-अपीलार्थी द्वारा अभिकथित रूप से अपनी पत्नी पर मिट्टी का तेल छिड़क कर आग लगाया जाना – पत्नी-मृतका को पहुंची दाह क्षतियों के कारण उसकी मृत्यु होने से पूर्व दो शासकीय प्राधिकारियों (विशेष कार्यपालक मजिस्ट्रेट और अन्वेषक अधिकारी) द्वारा दो अलग-अलग लिखित मृत्युकालिक कथन अभिलिखित किया जाना – मृतका द्वारा अपने पिता और एक अन्य साक्षी को भी दो मौखिक मृत्युकालिक कथन किया जाना – मृत्युकालिक कथनों का अवलंब लेकर अभियुक्त-अपीलार्थी को हत्या के अपराध के लिए दोषसिद्ध किया जाना – अपील में उच्च न्यायालय द्वारा लिखित मृत्युकालिक कथनों को त्यक्त किया जाना किंतु मौखिक मृत्युकालिक कथनों का अवलंब लेकर अभियुक्त की दोषसिद्धि को कायम रखा जाना – संधार्यता – जहां शासकीय प्राधिकारियों द्वारा लिखित में अभिलिखित किए गए मृतका के दो भिन्न-भिन्न मृत्युकालिक कथनों को उनमें खामी पाए जाने के आधार पर त्यक्त कर दिया गया हो, वहां मृतका द्वारा हितबद्ध साक्षियों को किए गए ऐसे मौखिक मृत्युकालिक कथनों के आधार पर अभियुक्त को दोषसिद्ध किया जाना उचित नहीं होगा, जो मृतका के लिखित में अभिलिखित किए गए वृत्तांत के प्रतिकूल पाए गए हों और इसलिए अभियोजन पक्ष द्वारा विश्वसनीय संपुष्टिकारी साक्ष्य प्रस्तुत करने की अपनी आबद्धता का निर्वहन करने में असफल रहने पर अभियुक्त को संदेह का फायदा देते हुए दोषमुक्त करना उचित होगा ।

इस अपील के तथ्य इस प्रकार हैं कि मृतका पुष्पाबाई और अपीलार्थी का तारीख 19 मार्च, 1994 को विवाह हुआ था । इस विवाह से कोई संतान नहीं थी । अपीलार्थी टी. वी. मकैनिक था । यह अभिकथन किया गया कि अपीलार्थी का उनके मकान के निकट रह रही कुसुम गायकवाड़ नामक एक विधवा के साथ अयुक्त संबंध था । तारीख 26 मार्च, 1995 को अपीलार्थी और कुसुम गायकवाड़ सिनेमा देखने गए थे । जब वह सायंकाल में घर वापस लौट रहा था, तब उसकी पत्नी का उससे कुसुम गायकवाड़ के साथ सिनेमा देखने जाने के लिए आमना-सामना हुआ । अपीलार्थी का पुष्पाबाई के साथ झगड़ा हुआ और उसे कहा

कि कुसुम गायकवाड़ उसकी जारिणी है । उसने पुष्पाबाई की पिटाई भी की । अगले ही दिन अर्थात् तारीख 27 मार्च, 1995 को 11.00 बजे पूर्वाह्न और दोपहर के बीच अपीलार्थी ने पुन: पुष्पाबाई के साथ झगड़ा किया और उसने उसे कहा कि वह कुसुम गायकवाड़ का साथ नहीं छोड़ेगा । पुष्पाबाई द्वारा विवाह-विच्छेद की मांग करने पर अपीलार्थी क्रोधित हो गया और उस पर हमला किया । उसके पश्चात्, उसने अपनी पत्नी पर मिट्टी का तेल छिड़का और माचिस की एक तिल्ली जलाकर उसे आग लगा दी । पुष्पाबाई को उसके चेहरे, वक्षस्थल, उदर, दोनों हाथों और टांगों पर गंभीर दाह क्षतियां पहुंचीं । उसे उपचार के लिए अस्पताल ले जाया गया, जहां तारीख 31 मार्च, 1995 को क्षतियों के कारण उसकी मृत्यु हो गई । पूर्वोक्त घटना की इत्तिला मायो पुलिस बूथ, नागपुर द्वारा अन्वेषक अधिकारी उप निरीक्षक मधुकर गीते (अभि. सा. 14) को दी गई । अन्वेषक अधिकारी को यह सूचित किया गया कि पुष्पाबाई को उसकी साड़ी का बॉर्डर अर्थात् पल्लू स्टोव पर पड़ने के कारण आग लग गई थी, जहां वह नाश्ता तैयार कर रही थी । उपरोक्त इत्तिला प्राप्त होने पर अन्वेषक अधिकारी ने थाना डायरी में एक प्रविष्टि की और अस्पताल गया, जहां उसने दो पंचों की मौजूदगी में पुष्पाबाई का कथन अभिलिखित किया । यह मृतका का पहला मृत्युकालिक कथन था । लगभग एक घंटे के अंतराल में विशेष कार्यपालक मजिस्ट्रेट (अभि. सा. 9) द्वारा पुष्पाबाई का कथन अभिलिखित किया गया । यह दूसरा मृत्युकालिक कथन था । विचारण न्यायालय द्वारा अभियुक्त-अपीलार्थी के विरुद्ध भारतीय दंड संहिता की धारा 302 के अधीन आरोप विरचित किए गए । विचारण न्यायालय द्वारा मृतका के मृत्युकालिक कथनों का अवलंब लेकर अपीलार्थी को अपनी पत्नी पर मिट्टी का तेल छिड़क कर और उसे आग लगाकर उसकी हत्या करने के लिए दोषसिद्ध किया गया । अभियुक्त-अपीलार्थी ने पूर्वोक्त निर्णय से व्यथित होकर उच्च न्यायालय के समक्ष अपील फाइल की । यद्यपि उच्च न्यायालय द्वारा अपीलार्थी के उस अभिवाक् का, जिसमें दो लिखित मृत्युकालिक कथनों की सत्यता पर प्रश्न चिह्न लगाया गया था, कायम रखा गया था, तो भी मृतका द्वारा अपने पिता और एक अन्य साक्षी को किए गए

मौखिक मृत्यकालिक कथनों और रासायनिक विश्लेषक की रिपोर्ट पर विश्वास करते हुए विचारण न्यायालय के निर्णय को कायम रखा गया और अपीलार्थी द्वारा फाइल की गई अपील खारिज कर दी गई । अभियुक्त-अपीलार्थी द्वारा उच्च न्यायालय के निर्णय और आदेश से व्यथित होकर उच्चतम न्यायालय में अपील फाइल की गई । उच्चतम न्यायालय द्वारा अपील मंजूर करते हुए,

अभिनिर्धारित – मृत्युकालिक कथन वह अंतिम कथन होता है जो किसी व्यक्ति द्वारा अपनी आसन्न मृत्यु के कारण के बारे में या उन परिस्थितियों के बारे में जिनके परिणामस्वरूप वह स्थिति पैदा हुई थी, उस प्रक्रम पर किया गया है जब घोषणाकर्ता को इस तथ्य का भान हो कि वास्तव में उसके जीवित रहने की संभावना शून्य है । इस धारणा के आधार पर कि ऐसे संकटकालीन प्रक्रम पर व्यक्ति से यह प्रत्याशा की जाती है कि वह सत्य बोलेगा, न्यायालयों ने ऐसे कथन की सत्यता को अत्यधिक महत्व दिया है । भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 32 में यह कहा गया है कि जब किसी व्यक्ति द्वारा अपनी मृत्यु के कारण के बारे में, या उन किन्हीं परिस्थितियों के बारे में वह कथन किया गया है जिसके फलस्वरूप उसकी मृत्यु हुई, तब उन मामलों में जिनमें उस व्यक्ति की मृत्यु का कारण प्रश्नगत हो, तो मृतक व्यक्ति द्वारा साक्षी को किया गया ऐसा कथन, मौखिक या लिखित, एक सुसंगत तथ्य है और साक्ष्य में ग्राह्य है । यह उल्लेखनीय है कि उक्त उपबंध साक्ष्य अधिनियम की धारा 60 में अंतर्विष्ट इस साधारण नियम का अपवाद है कि 'अनुश्रुत साक्ष्य अग्राह्य है' और केवल तब जब ऐसा साक्ष्य प्रत्यक्ष हो और प्रतिपरीक्षा द्वारा विधिमान्य किया गया हो तो इसे विश्वसनीय समझा जाता है । ऐसे मामलों में जिनमें मृतक द्वारा किए गए कई सारे मृत्युकालिक कथन अंतर्वलित हैं, विचार के लिए जो प्रश्न उद्भूत होता है, वह यह है कि न्यायालय द्वारा उक्त मृत्युकालिक कथनों में से किस पर विश्वास किया जाना चाहिए और एक न्यायसंगत और विधिपूर्ण निष्कर्ष पर पहुंचने के लिए मार्गदर्शक कारक क्या होंगे । समस्या और अधिक जटिल तब बन जाती है जब मृतक द्वारा किए गए मृत्युकालिक कथन विरोधाभासी होना पाए जाते हैं । ऐसी स्थिति का

सामना होने पर न्यायालय से यह प्रत्याशा होगी कि वह साक्ष्य की यह पता लगाने के लिए सावधानीपूर्वक संवीक्षा करे कि अभियोजन पक्ष द्वारा प्रस्तुत किए गए अन्य तात्विक साक्ष्य से कौन से मृत्युकालिक कथन की संपुष्टि की जा सकती है । सुसंगत समय पर मृतक की दशा, अभिलेख पर लाए गए चिकित्सा साक्ष्य जिससे मृतक की शारीरिक और मानसिक आरोग्यता उपदर्शित होगी, मृतक को घनिष्ठ नातेदारों/परिवार के सदस्यों द्वारा प्रभावित करने/सिखाने-पढ़ाने की गुंजाइश और सभी अन्य परिवर्ती परिस्थितियों का भी समान महत्व है जो न्यायालय को अपने विवेकाधिकार का प्रयोग करने में सहायता करेंगी । (पैरा 11 और 15)

विचारण न्यायालय ने अपीलार्थी को दोषसिद्ध करने के लिए प्राथमिक रूप से मृतका के दो लिखित मृत्युकालिक कथनों, जिनमें से एक विशेष कार्यपालक मजिस्ट्रेट (अभि. सा. 9) और दूसरा अन्वेषक अधिकारी (अभि. सा. 14) द्वारा अभिलिखित किया गया था तथा मृतका द्वारा कथित रूप से अपने पिता (अभि. सा. 2) और बालाजी (अभि. सा. 12), वह बिचौलिया जिसने पक्षकारों का विवाह तय किया था, को किए गए मौखिक मृत्युकालिक कथनों का अवलंब लिया था । तथापि, उच्च न्यायालय ने विशेष कार्यपालक मजिस्ट्रेट (अभि. सा. 9) और अन्वेषक अधिकारी (अभि. सा. 14) द्वारा मृत्युकालिक कथनों को अभिलिखित करते समय अपनाई गई प्रक्रिया में कई खामियां पाए जाने पर उनका अवलंब लेना असुरक्षित समझा और उन्हें दरकिनार कर दिया । चूंकि उच्च न्यायालय द्वारा दोनों लिखित मृत्युकालिक कथनों को उनमें कमियां पाए जाने के कारण और उन्हें अविश्वसनीय ठहराते हुए त्यक्त करने के लिए निकाले गए निष्कर्षों को कोई चुनौती नहीं दी गई है, इसलिए यह न्यायालय उनकी विश्वसनीयता पर विचार करना नहीं चाहता है । यह कहना पर्याप्त होगा कि उच्च न्यायालय द्वारा उन्हें अविश्वसनीय पाए जाने के लिए कई कारण दिए गए थे । इसके बजाय, मृतका द्वारा अभि. सा. 2 और अभि. सा. 12 की मौजूदगी में कथित रूप से किए गए मौखिक मृत्युकालिक कथनों की परीक्षा करना उचित समझा गया है । अभि. सा. 2 और अभि. सा. 12 के परिसाक्ष्यों के परिशीलन से यह दर्शित होता है कि उन्होंने इस बारे में भिन्न-भिन्न वृत्तांत दिए हैं कि मृतका द्वारा उन्हें अभिकथित रूप से क्या बताया

गया था । उन दोनों ने यह कथन किया था कि अपीलार्थी की लगातार की जा रही दहेज की मांगों को पूर्ण करने में असफल रहने के कारण घटना घटी थी । अपीलार्थी के आस-पड़ोस में रहने वाली एक विधवा के साथ अयुक्त संबंध होने का कोई उल्लेख नहीं किया गया था जो मृतका और उसके पति के बीच लगातार झगड़े का कारण था और जिसके कारण घटना घटी थी । महत्वपूर्ण रूप से, दोनों साक्षियों ने यह कथन किया था कि उनके कथन पुलिस द्वारा अन्वेषण के दौरान अभिलिखित नहीं किए गए थे और उन्होंने पहली बार केवल तब अभिसाक्ष्य दिया था जब वे विचारण के दौरान कठघरे में आए थे । इस न्यायालय की यह राय है कि जब एक बार उच्च न्यायालय ने सेशन न्यायालय से असहमति जताई थी और विशेष कार्यपालक मजिस्ट्रेट (अभि. सा. 9) और अन्वेषक अधिकारी (अभि. सा. 14) द्वारा उक्त कथन अभिलिखित करने के लिए अपनाई गई प्रक्रिया में कई सारी स्पष्ट खामियों के कारण मृतका के दोनों लिखित मृत्युकालिक कथनों को त्यक्त कर दिया था, तब अपीलार्थी को अभि. सा. 2, मृतका के पिता और अभि. सा. 12, पारिवारिक मित्र के मौखिक परिसाक्ष्य के आधार पर दोषसिद्ध नहीं किया जा सकता था, जो दोनों ही हितबद्ध साक्षी थे और जिनका साक्ष्य अभि. सा. 9 और अभि. सा. 14 द्वारा अभिलिखित मृतका द्वारा दिए गए वृत्तांतों के प्रतिकूल था । यह अवश्य स्मरण रखना चाहिए कि सभी चारों मृत्युकालिक कथन, दो लिखित में और अन्य दो मौखिक, मृतका द्वारा उसी दिन अर्थात् 27 मार्च, 1995 को अलग-अलग समय पर तब किए गए कथनों पर आधारित थे, जब उसे 93 प्रतिशत दाह क्षतियां पहुंची हुई थीं और अपना कथन करने के लिए उसके मानसिक और शारीरिक रूप से ठीक होने के बारे में गंभीर संदेह हैं । अन्वेषक अधिकारी (अभि. सा. 14) ने पहला मृत्युकालिक कथन 3.20 बजे अपराह्न में अभिलिखित किया था, जिसके पश्चात् विशेष कार्यपालक मजिस्ट्रेट द्वारा दूसरा मृत्युकालिक कथन 4.30 बजे अपराह्न और 5.00 बजे अपराह्न के बीच अभिलिखित किया गया था । उसी दिन ही अभि. सा. 2 और अभि. सा. 12 भी अस्पताल में मृतका से मिले थे और यह दावा किया था कि मृतका ने उन्हें इस बारे में सूचित किया था कि कैसे उसे दाह क्षतियां पहुंची थीं और अपराधी के रूप में अपीलार्थी को नामित किया था । अभि. सा. 2 और अभि. सा. 12 दोनों ने यह अभिसाक्ष्य दिया था कि

मृतका ने अपने मौखिक मृत्युकालिक कथन में अपीलार्थी द्वारा उससे की गई दहेज की मांगों और इस तथ्य का उल्लेख किया था कि वह उसके चरित्र पर संदेह करता था, जिसके कारण अभिकथित घटना घटी थी । उनके अभिसाक्ष्यों में कहीं भी अभियोजन के वृत्तांत में दिए गए इस वृत्तांत का कोई संदर्भ नहीं है कि अपीलार्थी का उसके आस-पड़ोस में रहने वाली एक विधवा के साथ अयुक्त संबंध था, जो पति-पत्नी के बीच झगड़े का मुख्य कारण था और जिसके परिणामस्परूप घटना घटी थी । जिन कारणों से अभिकथित घटना घटी थी, उनसे कतई भिन्न दिए गए वृत्तांत से अभि. सा. 2 और अभि. सा. 12 के संपूर्ण परिसाक्ष्य पर संदेह उत्पन्न होता है, जिससे उनके परिसाक्ष्य का अवलंब लेना और अपीलार्थी को उसके विरुद्ध लगाए गए आरोप के लिए दोषसिद्ध करना असुरक्षित बन जाता है । अत: इस न्यायालय की यह राय है कि अभियोजन पक्ष अभि. सा. 2 और अभि. सा. 12 के परिसाक्ष्यों का समर्थन करने के लिए विश्वसनीय संपुष्टिकारी साक्ष्य प्रस्तुत करने की उस पर अधिरोपित आबद्धता का निवर्हन करने में असफल रहा था । ऊपर चर्चा किए गए साक्ष्य को ध्यान में रखते हुए और एक से अधिक मृत्युकालिक कथनों से संबंधित साक्ष्य के मूल्यांकन को शासित करने वाले सिद्धांतों के प्रति सचेत होने के कारण इस न्यायालय को उच्च न्यायालय द्वारा निकाले गए निष्कर्ष की पुष्टि करने में कठिनाई है । अपीलार्थी को अपनी पत्नी की हत्या करने के अपराध के लिए दोषी ठहराने के लिए अभि. सा. 2 और अभि. सा. 12 के साक्ष्य को बेहतर नहीं समझा जा सकता है । अत: वह संदेह का फायदा दिए जाने का हकदार है । (पैरा 27, 31, 34, 36, 37 और 38)

निर्दिष्ट निर्णय

		पैरा
[2022]	(2022) 14 एस. सी. सी. 741 : **उत्तर प्रदेश राज्य** बनाम **वीरपाल और एक अन्य** ;	9, 21, 25
[2019]	(2019) 6 एस. सी. सी. 145 : **पूनम बाई** बनाम **छत्तीसगढ़ राज्य** ;	7, 35

[2014] (2014) 4 एस. सी. सी. 270 :
भगवान तुकाराम डांगे बनाम **महाराष्ट्र राज्य** ; 9

[2012] (2012) 7 एस. सी. सी. 569 :
सुधाकर बनाम **मध्य प्रदेश राज्य** ; 13

[2010] (2010) 8 एस. सी. सी. 514 :
लखन बनाम **मध्य प्रदेश राज्य** ; 16

[2008] (2008) 11 एस. सी. सी. 232 :
अरुण भांदुदास पवार बनाम **महाराष्ट्र राज्य** ; 7, 35

[2008] (2008) 4 एस. सी. सी. 265 :
शेर सिंह और एक अन्य बनाम **पंजाब राज्य** ; 18

[2008] (2008) 5 एस. सी. सी. 468 :
अमोल सिंह बनाम **मध्य प्रदेश राज्य** ; 17

[2007] (2007) 15 एस. सी. सी. 465 :
नल्लापाटी सिवाय्या बनाम **उप मंडल अधिकारी, गुंटूर, आंध्र प्रदेश** ; 7

[2006] (2006) 10 एस. सी. सी. 681 :
त्रिमुख मरोति किरकन बनाम **महाराष्ट्र राज्य** ; 9

[2003] (2003) 2 एस. सी. सी. 661 :
रिज़ान और एक अन्य बनाम **छत्तीसगढ राज्य ;** 9

[2001] (2001) 6 एस. सी. सी. 407 :
अरविन्द सिंह बनाम **बिहार राज्य** ; 7, 23

[1993] (1993) 2 एस. सी. सी. 684 :
कुंदुला बाला सुब्रह्मण्यम और एक अन्य बनाम **आंध्र प्रदेश राज्य** ; 10

[1992] (1992) 2 एस. सी. सी. 474 :
पानीबेन (श्रीमती) बनाम **गुजरात राज्य** ; 14, 25

[1958] ए. आई. आर. 1958 एस. सी. 22 :
खुशाल राव बनाम **बंबई राज्य** । 24

अपीली (दांडिक) अधिकारिता : 2012 की दांडिक अपील सं. 485.

1997 की दांडिक अपील सं. 149 में बंबई उच्च न्यायालय, नागपुर न्यायपीठ, नागपुर के तारीख 26 जुलाई, 2010 के निर्णय और आदेश के विरुद्ध अपील ।

अपीलार्थी की ओर से सर्वश्री रोहन थानवानी, प्रतुल प्रताप सिंह और (सुश्री) वंदना सहगल

प्रत्यर्थी की ओर से सर्वश्री सचिन पाटिल, राहुल चिटनिश, आदित्य ए. पांडे, जियो जोसेफ और (सुश्री) श्वेतल शेपाल

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति हिमा कोहली ने दिया ।

न्या. कोहली – वर्तमान अपील बंबई उच्च न्यायालय, नागपुर न्यायपीठ की खंड न्यायपीठ द्वारा तारीख 26 जुलाई, 2010 को पारित किए गए निर्णय के विरुद्ध की गई है । उच्च न्यायालय ने अपीलार्थी द्वारा अष्टम अपर सेशन न्यायाधीश, नागपुर द्वारा उसे भारतीय दंड संहिता, 1860 की धारा 302 के अधीन अपराध के लिए दोषसिद्ध करते हुए और उसे आजीवन कारावास भुगतने और 1,000/- रुपए जुर्माने का संदाय करने तथा जुर्माने का संदाय करने में व्यतिक्रम करने पर तीन माह का साधारण कारावास भुगतने का दंडादेश देते हुए तारीख 29 अप्रैल, 1997 को पारित किए गए निर्णय और आदेश के विरुद्ध की गई अपील खारिज कर दी है ।

2. अभियोजन पक्ष द्वारा प्रस्तुत किया गया पक्षकथन यह है कि मृतका पुष्पाबाई और अपीलार्थी का तारीख 19 मार्च, 1994 को विवाह हुआ था । इस विवाह से कोई संतान नहीं थी । अपीलार्थी टी. वी. मकैनिक था । यह अभिकथन किया गया कि अपीलार्थी का उनके मकान के निकट रह रही कुसुम गायकवाड़ नामक एक विधवा के साथ अयुक्त संबंध था । तारीख 26 मार्च, 1995 को अपीलार्थी और कुसुम गायकवाड़ सिनेमा देखने गए थे । जब वह सायंकाल में घर वापस लौट रहा था,

तब उसकी पत्नी का उससे कुसुम गायकवाड़ के साथ सिनेमा देखने जाने के लिए आमना-सामना हुआ । अपीलार्थी का पुष्पाबाई के साथ झगड़ा हुआ और उसे कहा कि कुसुम गायकवाड़ उसकी जारिणी है । उसने पुष्पाबाई की पिटाई भी की । अगले ही दिन अर्थात् तारीख 27 मार्च, 1995 को 11.00 बजे पूर्वाह्न और दोपहर के बीच अपीलार्थी ने पुन: पुष्पाबाई के साथ झगड़ा किया और उसने उसे कहा कि वह कुसुम गायकवाड़ का साथ नहीं छोड़ेगा । पुष्पाबाई द्वारा विवाह-विच्छेद की मांग करने पर अपीलार्थी क्रोधित हो गया और उस पर हमला किया । उसके पश्चात्, उसने अपनी पत्नी पर मिट्टी का तेल छिड़का और माचिस की एक तिल्ली जलाकर उसे आग लगा दी । इस पर, अपीलार्थी का भाई उस पर पानी छिड़क कर आग बुझाने के लिए दौड़ा । पुष्पाबाई को उसके चेहरे, वक्षस्थल, उदर, दोनों हाथों और टांगों पर गंभीर दाह क्षतियां पहुंचीं । उसे उपचार के लिए मायो अस्पताल, नागपुर ले जाया गया, जहां तारीख 31 मार्च, 1995 को क्षतियों के कारण उसकी मृत्यु हो गई ।

3. पूर्वोक्त घटना की इत्तिला मायो पुलिस बूथ, नागपुर द्वारा अन्वेषक अधिकारी उप निरीक्षक मधुकर गीते (अभि. सा. 14) को दी गई । अन्वेषक अधिकारी को यह सूचित किया गया कि पुष्पाबाई को उसकी साड़ी का बॉर्डर अर्थात् पल्लू स्टोव पर पड़ने के कारण आग लग गई थी, जहां वह नाश्ता तैयार कर रही थी । उपरोक्त इत्तिला प्राप्त होने पर अन्वेषक अधिकारी ने थाना डायरी में एक प्रविष्टि की और अस्पताल गया, जहां उसने दो पंचों की मौजूदगी में 3.20 बजे अपराह्न में पुष्पाबाई का कथन (प्रदर्श-47) अभिलिखित किया । यह मृतका का पहला मृत्युकालिक कथन था । लगभग एक घंटे के अंतराल में, 4.30 और 5.00 बजे अपराह्न के बीच विशेष कार्यपालक मजिस्ट्रेट (अभि. सा. 9) द्वारा पुष्पाबाई का कथन (प्रदर्श-38) अभिलिखित किया गया । यह दूसरा मृत्युकालिक कथन था ।

4. विचारण न्यायालय द्वारा अपीलार्थी के विरुद्ध भारतीय दंड संहिता की धारा 302 के अधीन तारीख 3 फरवरी, 1997 के आदेश द्वारा आरोप विरचित किए गए । चूंकि अपीलार्थी ने दोषी न होने का

अभिवाक् किया, इसलिए मामले का विचारण किया गया । अभियोजन पक्ष ने अपनी ओर से रामकृष्ण महादेव उचले (अभि. सा. 2), मृतका का पिता, राजू लारोकर, विशेष कार्यपालक मजिस्ट्रेट (अभि. सा. 9), समीर विजय चौधरी, कनिष्ठ स्थानीय डॉक्टर (अभि. सा. 10), डा. नरेश चंद्र सेथिया, चिकित्सा अधिकारी (अभि. सा. 11), बालाजी मोहोड (अभि. सा. 12), वह बिचौलिया जिसने पक्षकारों के विवाह की व्यवस्था की थी, प्रभाकर भाउराव पाटिल, पुलिस उप निरीक्षक (अभि. सा. 13), उप निरीक्षक मधुकर गीते (अभि. सा. 14), जो अन्वेषक अधिकारी था और रूशी शियोंकर, सहायक पुलिस निरीक्षक (अभि. सा. 15) सहित 15 साक्षियों की परीक्षा की । पंद्रह साक्षियों में से सात साक्षी पक्षद्रोही हो गए थे । विचारण न्यायालय द्वारा तारीख 29 अप्रैल, 1997 के निर्णय द्वारा अपीलार्थी को अपनी पत्नी पर मिट्टी का तेल छिड़ककर और उसे आग लगाकर उसकी हत्या करने के लिए दोषसिद्ध किया गया । उसे जुर्माने सहित आजीवन कारावास का दंडादेश दिया गया । विचारण न्यायालय ने अपीलार्थी को अपराध का दोषी ठहराने के लिए अभि. सा. 9 और अभि. सा. 14 द्वारा लेखबद्ध करके अभिलिखित किए गए मृतका के दो मृत्युकालिक कथनों और अभि. सा. 2 और अभि. सा. 12 के साक्ष्य का अवलंब लिया, जिन्होंने यह अभिसाक्ष्य दिया था कि मृतका ने उन्हें बताया था कि कैसे घटना घटी थी ।

5. अपीलार्थी ने पूर्वोक्त निर्णय से व्यथित होकर उच्च न्यायालय के समक्ष अपील फाइल की । यद्यपि उच्च न्यायालय द्वारा अपीलार्थी के उस अभिवाक् का, जिसमें दो लिखित मृत्युकालिक कथनों की सत्यता पर प्रश्न चिह्न लगाया गया था, कायम रखा गया था, तो भी अभि. सा. 2 और अभि. सा. 12 के परिसाक्ष्य के साथ-साथ मृतका और अपीलार्थी के वस्त्रों, जिन पर मिट्टी का तेल पाया गया था, से संबंधित रासायनिक विश्लेषक की रिपोर्ट पर विश्वास करते हुए विचारण न्यायालय के निर्णय को कायम रखा गया और अपीलार्थी द्वारा फाइल की गई अपील खारिज कर दी गई । अपीलार्थी द्वारा उक्त आदेश को इस अपील में चुनौती दी गई है ।

6. अपीलार्थी की ओर से विद्वान् काउंसेल श्री रोहन थानवानी ने

आक्षेपित निर्णय को इस आधार पर चुनौती दी कि यद्यपि उच्च न्यायालय ने मृतका के दो लिखित मृत्युकालिक कथनों को त्यक्त कर दिया था, जिनमें से एक (प्रदर्श-47) अन्वेषक अधिकारी द्वारा अभिलिखित किया गया था और दूसरा (प्रदर्श-38) विशेष कार्यपालक मजिस्ट्रेट द्वारा अभिलिखित किया गया था, फिर भी उच्च न्यायालय मृतका द्वारा कथित रूप से अपने पिता, रामकृष्ण महादेव उचाले (अभि. सा. 2) और बिचौलिए, बालाजी मोहोड (अभि. सा. 12) को किए गए मौखिक मृत्युकालिक कथनों का गलत रूप से अवलंब लेकर सेशन न्यायालय के निर्णय को कायम रखने के लिए अग्रसर हुआ । विद्वान् काउंसेल ने यह दलील दी कि मृतका द्वारा अभि. सा. 2 और अभि. सा. 12 को किए गए कथनों के मुकाबले अभि. सा. 9 और अभि. सा. 14 को किए गए कथनों के बीच स्पष्ट तात्विक विरोधाभास थे क्योंकि मृतका ने अभि. सा. 9 के समक्ष यह दावा किया था कि अपीलार्थी और कुसुम गायकवाड़ (अभि. सा. 8) के बीच अयुक्त संबंध पति-पत्नी के बीच झगड़े का मुख्य कारण था, जबकि अभि. सा. 2 और अभि. सा. 12 का वृत्तांत यह था कि संपूर्ण घटना का श्रेय अपीलार्थी द्वारा मृतका से की गई दहेज की मांगों को दिया जा सकता है । यह भी दलील दी गई कि पहले और दूसरे मृत्युकालिक कथनों में यथा अभिलिखित मृतका का वृत्तांत उस वृत्तांत से पूर्णत: भिन्न था जो अभि. सा. 2 और अभि. सा. 12 द्वारा न्यायालय के समक्ष वर्णित किया गया था । वास्तव में, न तो अभि. सा. 2 और न ही अभि. सा. 12 ने दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 161 के अधीन पुलिस को कोई कथन नहीं किया था और दोनों कथित साक्षियों ने पहली बार केवल तब कथन किए थे जब वे विचारण के दौरान कठघरे में आए थे ।

7. अपीलार्थी की ओर से विद्वान् काउंसेल द्वारा यह दलील दी गई कि जब एक बार उच्च न्यायालय ने मृतका के लिखित मृत्युकालिक कथनों को इस आधार पर नामंजूर कर दिया था कि उक्त कथनों को अभिलिखित करने में कई स्पष्ट खामियां हैं, तो उच्च न्यायालय के लिए मृतका द्वारा अभिकथित रूप से अभि. सा. 2 और अभि. सा. 12 को किए गए मौखिक कथनों का अवलंब लेने के लिए कोई उचित कारण नहीं था, जो समान रूप से अविश्वसनीय थे और उनका भी वही परिणाम

होना चाहिए था जैसा कि मृतका के लिखित मृत्युकालिक कथनों का हुआ था । विद्वान् काउंसेल ने **नल्लापाटी सिवाय्या** बनाम **उप मंडल अधिकारी, गुंटूर, आंध्र प्रदेश**[1] वाले मामले को अपनी इस दलील पर बल देने के लिए उद्धृत किया कि जहां कई सारे मृत्युकालिक कथन हों और प्रत्येक एक-दूसरे से असंगत हो, तब उक्त सभी मृत्युकालिक कथनों को बिना किसी संकोच के त्यक्त कर दिया जाना चाहिए । **अरविन्द सिंह** बनाम **बिहार राज्य**[2], **अरुण भंदुदास पवार** बनाम **महाराष्ट्र राज्य**[3] और **पूनम बाई** बनाम **छत्तीसगढ़ राज्य**[4] वाले मामलों को उद्धृत करके डाक्टर की अनुपस्थिति में परिवार के किसी सदस्य को किए गए मौखिक मृत्युकालिक कथन की अविश्वसनीयता को प्रश्नगत करने की ईप्सा की गई ।

8. दूसरी ओर, प्रत्यर्थी-महाराष्ट्र राज्य की ओर से हाजिर होने वाले विद्वान् काउंसेल श्री सचिन पाटिल ने अपनी प्रायिक प्रबलता के साथ दूसरे पक्ष द्वारा दिए गए तर्कों को विवादग्रस्त किया और कहा कि दोनों लिखित मृत्युकालिक कथन, पहला अन्वेषक अधिकारी द्वारा 3.20 बजे अपराह्न में अभिलिखित किया गया और दूसरा उसी दिन विशेष कार्यपालक मजिस्ट्रेट (अभि. सा. 9) द्वारा 4.30 बजे अपराह्न में अभिलिखित किया गया, संगत थे और मृतका ने स्पष्ट रूप से कहा था कि वह अपीलार्थी ही था जिसने उसे आग लगाई थी । विद्वान् काउंसेल ने मृतका के कथन अभिलिखित किए जाने से पूर्व परिचर्या करने वाले डाक्टर (अभि. सा. 10) द्वारा उसके संबंध में जारी किए गए दो आरोग्य प्रमाणपत्रों की ओर भी संकेत किया और यह दलील दी कि उक्त प्रमाणपत्रों से यह दर्शित होता है कि वह सही मानसिक हालत में और अभिसाक्ष्य देने के लिए सक्षम थी । इसी प्रकार, मृतका द्वारा बाद में अपने पिता (अभि. सा. 2) और बिचौलिए (अभि. सा. 12) की मौजूदगी में किए गए मौखिक मृत्युकालिक कथनों को भी विपदग्रस्त के वृत्तांत से संगत और विश्वसनीय होना कहा गया । उस रीति के बारे में वृत्तांत

---

[1] (2007) 15 एस. सी. सी. 465.

[2] (2001) 6 एस. सी. सी. 407.

[3] (2008) 11 एस. सी. सी. 232.

[4] (2019) 6 एस. सी. सी. 145.

को भी संगत होना कहा गया, जिस रीति में मृतका को आग लगाई गई थी और यह दलील दी गई कि उक्त अभियोजन साक्षियों की प्रतिपरीक्षा में उपरोक्त पहलू पर अपीलार्थी के अनुकूल कोई बात निकल कर नहीं आई थी । राज्य के विद्वान् काउंसेल ने मृतका और अपीलार्थी के उन वस्त्रों के संबंध में, जो घटनास्थल से अभिगृहीत किए गए थे, रासायनिक विश्लेषक की रिपोर्ट को यह दलील देने के लिए निर्दिष्ट किया कि इससे अभियोजन पक्ष के इस वृत्तांत पर विश्वास होता है कि अपीलार्थी ने मृतका पर मिट्टी का तेल छिड़का था और उसे आग लगा दी थी ।

9. राज्य की ओर से विद्वान् काउंसेल ने **उत्तर प्रदेश राज्य** बनाम **वीरपाल और एक अन्य**[1], **रिज़ान और एक अन्य** बनाम **छत्तीसगढ राज्य**[2] और **भगवान तुकाराम डांगे** बनाम **महाराष्ट्र राज्य**[3] वाले मामलों को अपनी इस दलील के समर्थन में उद्धृत किया कि जहां परस्पर-विरोधी मृत्युकालिक कथन हों, वहां न्यायालय एक को स्वीकार कर सकता है और दूसरे को त्यक्त कर सकता है, जबकि उसका यह समाधान हो जाता है कि मृतका का मूलभूत कथन अविचल रहा था । **त्रिमुख मरोति किरकन** बनाम **महाराष्ट्र राज्य**[4] वाले मामले के विनिश्चय को यह बताने के लिए उद्धृत किया गया कि यह भार अभियुक्त पर रहता है कि वह स्पष्ट करे कि मृत्यु जनता की नजरों से दूर घर के अंदर कैसे हुई थी ।

10. हमने पक्षकारों की ओर से विद्वान् काउंसेलों द्वारा दी गई दलीलों पर गंभीरतापूर्वक विचार किया है और अभिलेख का सावधानीपूर्वक परिशीलन किया है । वर्तमान मामले में संपूर्ण विवाद्यक मृतका द्वारा किए गए मृत्युकालिक कथनों की ग्राह्यता और साक्ष्यिक महत्व पर निर्भर है, जिनमें से दो लिखित में थे और अभि. सा. 9 तथा अभि. सा. 14 द्वारा अभिलिखित किए गए थे और अन्य दो मौखिक थे और मृतका द्वारा अभि. सा. 2 और अभि. 12 को किए गए थे ।

11. मृत्युकालिक कथन वह अंतिम कथन होता है जो किसी व्यक्ति

---

[1] (2022) 14 एस. सी. सी. 741.

[2] (2003) 2 एस. सी. सी. 661.

[3] (2014) 4 एस. सी. सी. 270.

[4] (2006) 10 एस. सी. सी. 681.

द्वारा अपनी आसन्न मृत्यु के कारण के बारे में या उन परिस्थितियों के बारे में जिनके परिणामस्वरूप वह स्थिति पैदा हुई थी, उस प्रक्रम पर किया गया है जब घोषणाकर्ता को इस तथ्य का भान हो कि वास्तव में उसके जीवित रहने की संभावना शून्य है । इस धारणा के आधार पर कि ऐसे संकटकालीन प्रक्रम पर व्यक्ति से यह प्रत्याशा की जाती है कि वह सत्य बोलेगा, न्यायालयों ने ऐसे कथन की सत्यता को अत्यधिक महत्व दिया है । भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 (संक्षेप में साक्ष्य अधिनियम) की धारा 32 में यह कहा गया है कि जब किसी व्यक्ति द्वारा अपनी मृत्यु के कारण के बारे में, या उन किन्हीं परिस्थितियों के बारे में वह कथन किया गया है जिसके फलस्वरूप उसकी मृत्यु हुई, तब उन मामलों में जिनमें उस व्यक्ति की मृत्यु का कारण प्रश्नगत हो, तो मृतक व्यक्ति द्वारा साक्षी को किया गया ऐसा कथन, मौखिक या लिखित, एक सुसंगत तथ्य है और साक्ष्य में ग्राह्य है । यह उल्लेखनीय है कि उक्त उपबंध साक्ष्य अधिनियम की धारा 60 में अंतर्विष्ट इस साधारण नियम का अपवाद है कि 'अनुश्रुत साक्ष्य अग्राह्य है' और केवल तब जब ऐसा साक्ष्य प्रत्यक्ष हो और प्रतिपरीक्षा द्वारा विधिमान्य किया गया हो तो इसे विश्वसनीय समझा जाता है ।

12. **कुंदुला बाला सुब्रह्मण्यम और एक अन्य** बनाम **आंध्र प्रदेश राज्य**[1] वाले मामले में इस न्यायालय ने मृत्युकालिक कथन के महत्व को निम्नलिखित शब्दों में रेखांकित किया था :–

> "18. साक्ष्य अधिनियम की धारा 32(1) इस साधारण नियम का अपवाद है कि अनुश्रुत साक्ष्य ग्राह्य साक्ष्य नहीं है और जब तक साक्ष्य की प्रतिपरीक्षा में जांच नहीं हो जाती है, तब तक यह विश्वसनीय नहीं है । धारा 32 के अधीन, जब किसी व्यक्ति द्वारा अपनी मृत्यु के कारण के बारे में और उन किन्हीं परिस्थितियों के बारे में कथन किया गया है, जिनके फलस्वरूप उसकी मृत्यु हुई, तब उन मामलों में जिनमें उस व्यक्ति की मृत्यु का कारण प्रश्नगत हो, तो मृतक द्वारा साक्षी को किया गया मौखिक या लिखित ऐसा कोई कथन एक सुसंगत तथ्य है और साक्ष्य में ग्राह्य

[1] (1993) 2 एस. सी. सी. 684.

है । मृतक द्वारा किए गए कथन को मृत्युकालिक कथन कहा जाता है और उस प्रवर्ग में तब आता है बशर्ते इसे मृतक द्वारा उस समय किया गया हो जब वह सही मानसिक हालत में था । व्यक्ति द्वारा अपनी मृत्यु के कगार पर किए गए कथन की एक विशेष पवित्रता होती है क्योंकि इस गंभीर क्षण पर किसी व्यक्ति द्वारा कोई असत्य कथन करने की बहुत ही कम संभावना होती है । आसन्न मृत्यु का पूर्वाभास स्वयंमेव मृतक द्वारा उन कारणों या परिस्थितियों के संबंध में किए गए कथन की सत्यता की गारंटी है जिनमें उसकी मृत्यु हुई है । अत: मृत्युकालिक कथन की साक्ष्य के रूप में लगभग एक पुनीत प्रास्थिति होती है क्योंकि यह मृतक के मुख से आता है । जब एक बार मर गए व्यक्ति का कथन और उसको प्रमाणित करने वाले साक्षियों का साक्ष्य न्यायालयों की सावधानीपूर्वक संवीक्षा के परीक्षण से गुजरता है, तो यह एक अति महत्वपूर्ण और विश्वसनीय साक्ष्य बन जाता है और यदि न्यायालय का यह समाधान हो जाता है कि मृत्युकालिक कथन सत्य है और किसी अतिरंजना से मुक्त है तो ऐसा मृत्युकालिक कथन स्वयंमेव किसी संपुष्टि के बिना भी दोषसिद्धि अभिलिखित करने के लिए पर्याप्त हो सकता है ..... ।"

13. **सुधाकर** बनाम **मध्य प्रदेश राज्य**[1] वाले मामले में इस न्यायालय ने यह राय व्यक्त की थी कि जब एक बार कोई मृत्युकालिक कथन विश्वसनीय पाया जाता है, तो यह दोषसिद्धि का आधार बन सकता है और निम्नलिखित मताभिव्यक्तियां की थीं :–

"20. 'मृत्युकालिक कथन' किसी व्यक्ति द्वारा उस प्रक्रम पर किया गया अंतिम कथन है जब उसे अपनी मृत्यु की गंभीर आशंका है और उसके बचने की कोई संभावना नहीं है । ऐसे समय पर, यह प्रत्याशा की जाती है कि व्यक्ति सत्य और केवल सत्य बोलेगा । सामान्यत: ऐसी स्थितियों में न्यायालय ऐसे कथन में सत्यता अंतर्निहित होने की बात को महत्व देते हैं । जब एक बार ऐसा कथन स्वेच्छापूर्वक किया गया है, यह विश्वसनीय है और मृतक

[1] (2012) 7 एस. सी. सी. 569.

द्वारा सच्चाई को छिपाने या किसी व्यक्ति को मिथ्या रूप से फंसाने का प्रयास नहीं किया गया है, तब न्यायालय ऐसे मृत्युकालिक कथन पर सुरक्षित रूप से अवलंब ले सकते हैं और इसके आधार पर दोषसिद्धि की जा सकती है । इतना ही नहीं, जहां मृतक द्वारा मृत्युकालिक कथन के रूप में दिए गए वृत्तांत का अन्य अभियोजन साक्ष्य द्वारा समर्थन और संपुष्टि होती है, तो ऐसे मृत्युकालिक कथन पर संदेह करने का न्यायालयों के लिए कोई कारण नहीं है ।"

14. **पानीबेन (श्रीमती)** बनाम **गुजरात राज्य**[1] वाले मामले में मृत्युकालिक कथन को शासित करने वाले सिद्धांतों पर विधि की संपूर्ण रूपरेखा की परीक्षा करने पर इस न्यायालय ने यह निष्कर्ष निकाला था :–

"18. ….. (i) न तो विधि का और न ही प्रज्ञा का ऐसा कोई नियम है कि संपुष्टि के बिना मृत्युकालिक कथन के आधार पर कार्यवाही न की जा सकती हो । [मुन्नु राजा **बनाम** मध्य प्रदेश राज्य (1976) 3 एस. सी. सी. 104] ।

(ii) यदि न्यायालय का यह समाधान हो जाता है कि मृत्युकालिक कथन सत्य और स्वेच्छया है, तो इसके आधार पर संपुष्टि के बिना दोषसिद्धि की जा सकती है । [उत्तर प्रदेश राज्य **बनाम** राम सागर यादव (1985) 1 एस. सी. सी. 552] ।

(iii) इस न्यायालय को मृत्युकालिक कथन की सावधानीपूर्वक संवीक्षा करनी चाहिए और अवश्य यह सुनिश्चित करना चाहिए कि कथन सिखाने-पढ़ाने, प्रेरित करने या कल्पना का परिणाम तो नहीं है । मृतक के पास हमलावरों को देखने और शनाख्त करने का अवसर था और वह कथन करने के लिए ठीक हालत में था । [के. रामचंद्र रेड्डी **बनाम** लोक अभियोजक (1976) 3 एस. सी. सी. 618] ।

---

[1] (1992) 2 एस. सी. सी. 474.

(iv) जहां मृत्युकालिक कथन संदेहास्पद है, वहां संपुष्टिकारी साक्ष्य के बिना इसके आधार पर कार्यवाही नहीं की जानी चाहिए । [राशीद बेग **बनाम** मध्य प्रदेश राज्य (1974) 4 एस. सी. सी. 264] ।

(v) जहां मृतक बेहोश था और कोई मृत्युकालिक कथन नहीं कर सकता था, वहां इस विषय में साक्ष्य को नामंजूर कर दिया जाना चाहिए । [काके सिंह **बनाम** मध्य प्रदेश राज्य, 1981 सप्ली. एस. सी. सी. 25] ।

(vi) ऐसा मृत्युकालिक कथन जो खामी से ग्रसित है, दोषसिद्धि का आधार नहीं बन सकता है । [राम मनोरथ **बनाम** उत्तर प्रदेश राज्य (1981) 2 एस. सी. सी. 654] ।

(vii) केवल इस कारण कि मृत्युकालिक कथन में घटना के बारे में विवरण अंतर्विष्ट नहीं है, इसे नामंजूर नहीं किया जाना चाहिए । [महाराष्ट्र राज्य **बनाम** कृष्णामूर्ति लक्ष्मीपति नायडू, 1980 सप्ली. एस. सी. सी. 455] ।

(viii) समान रूप से, केवल इस कारण कि यह एक संक्षिप्त कथन है, इसे त्यक्त नहीं किया जाना चाहिए । इसके विपरीत, कथन का संक्षिप्त होना स्वयंमेव इसकी सत्यता की गारंटी देता है । [सूरजदेव ओझा **बनाम** बिहार राज्य, 1980 सप्ली. एस. सी. सी. 769] ।

(ix) सामान्यत: न्यायालय को यह समाधान करने के लिए कि क्या मृतक मृत्युकालिक कथन करने के लिए ठीक मानसिक हालत में था, चिकित्सा राय को देखना चाहिए । किंतु जहां प्रत्यक्षदर्शी साक्षी ने यह कहा है कि मृतक इस मृत्युकालिक कथन को करने के लिए ठीक और होशपूर्ण हालत में था, वहां चिकित्सीय राय अभिभावी नहीं हो सकती है । [नन्हाऊ राम **बनाम** मध्य प्रदेश राज्य 1988 सप्ली. एस. सी. सी. 152] ।

(x) जहां अभियोजन पक्ष का वृत्तांत उस वृत्तांत से भिन्न है, जो मृत्युकालिक कथन में दिया गया है, तो उक्त कथन पर

कार्यवाही नहीं की जा सकती है । [उत्तर प्रदेश राज्य **बनाम** मदन मोहन (1989) 3 एस. सी. सी. 390] ।"

15. ऐसे मामलों में जिनमें मृतक द्वारा किए गए कई सारे मृत्युकालिक कथन अंतर्वलित हैं, विचार के लिए जो प्रश्न उद्भूत होता है, वह यह है कि न्यायालय द्वारा उक्त मृत्युकालिक कथनों में से किस पर विश्वास किया जाना चाहिए और एक न्यायसंगत और विधिपूर्ण निष्कर्ष पर पहुंचने के लिए मार्गदर्शक कारक क्या होंगे । समस्या और अधिक जटिल तब बन जाती है जब मृतक द्वारा किए गए मृत्युकालिक कथन विरोधाभासी होना पाए जाते हैं । ऐसी स्थिति का सामना होने पर न्यायालय से यह प्रत्याशा होगी कि वह साक्ष्य की यह पता लगाने के लिए सावधानीपूर्वक संवीक्षा करे कि अभियोजन पक्ष द्वारा प्रस्तुत किए गए अन्य तात्विक साक्ष्य से कौन से मृत्युकालिक कथन की संपुष्टि की जा सकती है । सुसंगत समय पर मृतक की दशा, अभिलेख पर लाए गए चिकित्सा साक्ष्य जिससे मृतक की शारीरिक और मानसिक आरोग्यता उपदर्शित होगी, मृतक को घनिष्ठ नातेदारों/परिवार के सदस्यों द्वारा प्रभावित करने/सिखाने-पढ़ाने की गुंजाइश और सभी अन्य परिवर्ती परिस्थितियों का भी समान महत्व है जो न्यायालय को अपने विवेकाधिकार का प्रयोग करने में सहायता करेंगी ।

16. **लखन** बनाम **मध्य प्रदेश राज्य**[1] वाले मामले में, जहां मृतका को उस पर मिट्टी का तेल छिड़क कर जलाया गया था और अभियुक्त और उसके परिवार के सदस्यों द्वारा अस्पताल लाया गया था, न्यायालय ने यह पाया कि उसने दो भिन्न मृत्युकालिक कथन किए थे और यह अभिनिर्धारित किया :–

> "9. मृत्युकालिक कथन का सिद्धांत विधिक सूत्र नेमो मोरिट्यूरस प्रासुमिटुर मेंटायर में प्रतिष्ठापित है, जिसका अर्थ है कि 'कोई व्यक्ति अपने मुंह में झूठ के साथ अपने रचयिता से नहीं मिलेगा' । मृत्युकालिक कथन का सिद्धांत साक्ष्य अधिनियम, 1872 (जिसे इसमें इसके पश्चात् 'साक्ष्य अधिनियम' कहा गया है) की

[1] (2010) 8 एस. सी. सी. 514.

धारा 32 में साक्ष्य अधिनियम की धारा 60 में अंतर्विष्ट साधारण नियम के अपवाद के रूप में प्रतिष्ठापित है, जिसमें यह उपबंधित है कि मौखिक साक्ष्य समस्त अवस्थाओं में प्रत्यक्ष होगा अर्थात् वह ऐसे साक्षी का ही साक्ष्य होगा जो कहता है कि उसने उसे देखा । मृत्युकालिक कथन, वास्तव में, ऐसे व्यक्ति का कथन है जिसे साक्षी के रूप में बुलाया नहीं जा सकता और इसलिए उसकी प्रतिपरीक्षा नहीं की जा सकती । ऐसे कथन कतिपय दशाओं में स्वयंमेव सुसंगत तथ्य होते हैं ।

10. इस न्यायालय ने बारंबार विभिन्न स्थितियों में अभिलिखित मृत्युकालिक कथनों और ऐसी दशाओं में अभिलिखित मृत्युकालिक कथनों की सुसंगति/साक्ष्यिक महत्व पर विचार किया है जहां एक से अधिक मृत्युकालिक कथन अभिलिखित किया गया है । विधि यह है कि यदि न्यायालय का यह समाधान हो जाता है कि मृत्युकालिक कथन सत्य है और मृतक द्वारा स्वेच्छा से किया गया है, तो किसी और संपुष्टि के बिना एकमात्र रूप से इसके आधार पर दोषसिद्धि की जा सकती है । यह न तो विधि का और न ही प्रज्ञा का नियम है कि संपुष्टि के बिना किसी मृत्युकालिक कथन का अवलंब न लिया जा सकता हो । जब कोई मृत्युकालिक कथन संदेहास्पद है, तो संपुष्टिकारी साक्ष्य के बिना इसका अवलंब नहीं लिया जाना चाहिए । न्यायालय को मृत्युकालिक कथन की सावधानीपूर्वक संवीक्षा करनी चाहिए और यह सुनिश्चित करना चाहिए कि कथन सिखाने-पढ़ाने, प्रेरित करने या कल्पना का परिणाम तो नहीं है । मृतक कथन करने के लिए अवश्य ठीक मानसिक हालत में होना चाहिए और हमलावरों की अवश्य शनाख्त की हो । केवल इस कारण कि किसी मृत्युकालिक कथन में घटना का विस्तृत ब्यौरा अंतर्विष्ट नहीं है, इसे नामंजूर नहीं किया जा सकता और यदि मात्र एक संक्षिप्त कथन है, तो यह इस कारण से और अधिक विश्वसनीय है कि कथन की संक्षिप्तता स्वयंमेव इसकी सत्यता की गारंटी है । यदि मृत्युकालिक कथन में कुछ खामी है, तो अकेले इसके आधार पर दोषसिद्धि नहीं की जा सकती । जहां

अभियोजन का वृत्तांत मृत्युकालिक कथन में दिए गए वृत्तांत से भिन्न है, तो उक्त कथन के आधार पर कार्यवाही नहीं की जा सकती है । [खुशाल राव **बनाम** बंबई राज्य, ए. आई. आर. 1958 एस. सी. 22, राशीद बेग **बनाम** मध्य प्रदेश राज्य (1974) 4 एस. सी. सी. 264, के. रामचंद्र रेड्डी **बनाम** लोक अभियोजक (1976) 3 एस. सी. सी. 618, महाराष्ट्र राज्य **बनाम** कृष्णामूर्ति लक्ष्मीपति नायडू, 1980 सप्ली. एस. सी. सी. 455, उकाराम **बनाम** राजस्थान राज्य (2001) 5 एस. सी. सी. 254, बाबू लाल **बनाम** मध्य प्रदेश राज्य (2003) 12 एस. सी. सी. 490, मुथु कुट्टी **बनाम** राज्य (2005) 9 एस. सी. सी. 113, राजस्थान राज्य **बनाम** वाक्टेंग (2007) 14 एस. सी. 550 और शारदा **बनाम** राजस्थान राज्य (2010) 2 एस. सी. सी. 85 वाले मामले देखें] ।"

17. **अमोल सिंह** बनाम **मध्य प्रदेश राज्य**[1] वाले मामले में जब विसंगतियों से अंतर्विष्ट दो मृत्युकालिक कथन सामने आए तो न्यायालय द्वारा अपनाए जाने वाले दृष्टिकोण को निम्नलिखित प्रकार से दोहराया गया था :–

"13. एक से अधिक मृत्युकालिक कथन के रूप में साक्ष्य के मूल्यांकन से संबंधित विधि सुस्थिर है । तदनुसार, मृत्युकालिक कथन की बहुलता नहीं, अपितु इसकी विश्वसनीयता है जो अभियोजन के पक्षकथन को मजबूत बनाता है । यदि कोई मृत्युकालिक कथन स्वेच्छा से, विश्वसनीय और ठीक मानसिक हालत में किया गया पाया जाता है, तो इसका किसी संपुष्टि के बिना अवलंब लिया जा सकता है । कथन पूर्णतया संगत होना चाहिए । यदि मृतक के पास ऐसे मृत्युकालिक कथन करने के लिए कई अवसर थे, अर्थात् यदि एक से अधिक मृत्युकालिक कथन हैं, तो वे संगत होने चाहिएं । [कुंडुला बाला सुब्रह्मण्यम **बनाम** आंध्र प्रदेश राज्य (1993) 2 एस. सी. सी. 684 वाला मामला देखें] । तथापि, यदि एक मृत्युकालिक कथन और दूसरे मृत्युकालिक कथन

[1] (2008) 5 एस. सी. सी. 468.

के बीच कुछ विसंगतियां पाई जाती हैं, तो न्यायालय को विसंगतियों की प्रकृति की परीक्षा करनी चाहिए, अर्थात् क्या वे विसंगतियां तात्विक हैं या नहीं । विभिन्न मृत्युकालिक कथनों की अंतर्वस्तुओं की संवीक्षा करते समय ऐसी स्थिति में न्यायालय को इनकी परीक्षा विभिन्न परिवर्ती तथ्यों और परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए करनी चाहिए ।"

18. **शेर सिंह और एक अन्य** बनाम **पंजाब राज्य**[1] वाले मामले में इस न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया है :–

"16. किसी मृत्युकालिक कथन की स्वीकार्यता इसलिए और अधिक है क्योंकि ऐसा कथन मरणावस्था में किया जाता है । जब पक्षकार मृत्यु के कगार पर है, तो विरले ही ऐसे किसी व्यक्ति का झूठ बोलने का कोई हेतु होता है और यही कारण है कि किसी मृत्युकालिक कथन के मामले में शपथ और प्रतिपरीक्षा की अपेक्षाओं से अभिमुक्ति दी गई है । चूंकि अभियुक्त को प्रतिपरीक्षा करने की कोई शक्ति नहीं होती है, इसलिए न्यायालय इस बात पर जोर देंगे कि मृत्युकालिक कथन ऐसी प्रकृति का होना चाहिए जिससे न्यायालय का इसकी सत्यता और शुद्धता में पूर्ण विश्वास प्रेरित हो सके । न्यायालय को यह सुनिश्चित करना चाहिए कि कथन सिखाने-पढ़ाने या प्रेरित करने या कल्पना का परिणाम नहीं था । न्यायालय को अभिलेख पर प्रस्तुत किए गए साक्ष्य से यह अभिनिश्चित करना चाहिए कि मृतक ठीक मानसिक हालत में था और अभियुक्त को देखने और शनाख्त करने का पर्याप्त अवसर था । प्रसामान्यत:, न्यायालय इस निष्कर्ष पर पहुंचने के लिए चिकित्सा साक्ष्य का अवलंब लेते हैं कि क्या मृत्युकालिक कथन करने वाला व्यक्ति ठीक मानसिक हालत में था, किंतु जहां कथन अभिलिखित करने वाला व्यक्ति यह कहता है कि मृतक ठीक और होशो-हवास में था, तो चिकित्सीय राय अभिभावी नहीं होगी और न ही यह कहा जा सकता है कि चूंकि घोषणाकर्ता के मस्तिष्क की

[1] (2008) 4 एस. सी. सी. 265.

ठीक हालत होने के बारे में डाक्टर का कोई प्रमाणन नहीं है इसलिए मृत्युकालिक कथन स्वीकार्य नहीं है । आवश्यक यह है कि मृत्युकालिक कथन अभिलिखित करने वाले व्यक्ति का अवश्य यह समाधान हो जाना चाहिए कि मृतक ठीक मानसिक हालत में था । जहां मजिस्ट्रेट के परिसाक्ष्य द्वारा यह साबित किया जाता है कि घोषणाकर्ता घोषणा करने के लिए, डाक्टर की इस आशय की राय के बिना, ठीक हालत में था, तो इसके आधार पर कार्यवाही की जा सकती है बशर्ते न्यायालय द्वारा अंततोगत्वा ऐसे कथन को स्वेच्छा से किया गया और सत्य होना अभिनिर्धारित किया जाए । डाक्टर द्वारा प्रमाणपत्र देना आवश्यक रूप से एक सतर्कता का नियम है और इसलिए किसी कथन की स्वेच्छया और सत्य प्रकृति को अन्यथा सिद्ध किया जा सकता है ।"

19. इस प्रकार यह स्पष्ट है कि ऐसे मामलों में जहां न्यायालय यह पाता है कि एक से अधिक मृत्युकालिक कथन विद्यमान हैं, तो उनमें से प्रत्येक की सावधानी और सतर्कता से परीक्षा की जानी चाहिए और केवल अपना यह समाधान करने के पश्चात् कि मृत्युकालिक कथनों में से कौन सा कथन संदिग्ध परिस्थितियों से मुक्त प्रतीत होता है और स्वेच्छा से किया गया है, इसे स्वीकार किया जाना चाहिए । जैसा कि ऊपर उद्धृत निर्णयों में मत व्यक्त किया गया है, यह आवश्यक नहीं है कि प्रत्येक मामले में मृत्युकालिक कथन की संपुष्टि तात्विक साक्ष्य, प्रत्यक्षदर्शी या अन्यथा, से होनी चाहिए । यह प्रज्ञा का नियम अधिक है कि न्यायालय परिवर्ती तथ्यों और परिस्थितियों से और अभिलेख पर लाए गए अन्य साक्ष्य से मृत्युकालिक कथन के विधिमान्यकरण की ईप्सा करते हैं । इसी कारणवश ही डाक्टर द्वारा दिए गए प्रमाणपत्र कि घोषणाकर्ता कथन करने के लिए ठीक हालत में है, मृतक द्वारा किए गए कथन की सत्यता को सिद्ध करने के लिए सतर्कता के नियम के रूप में समझा जाता है ।

20. **कुंडुला बाला सुब्रहमण्यम** (उपर्युक्त) वाले मामले में इस न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया था कि यदि एक से अधिक मृत्युकालिक कथन हैं, तब न्यायालय को उनमें से प्रत्येक कथन की इसे

स्वीकार करने और अवलंब लेने से पूर्व यह पता लगाने के लिए अवश्य संवीक्षा करनी चाहिए कि क्या भिन्न-भिन्न मृत्युकालिक कथन तात्विक विशिष्टियों में परस्पर संगत हैं । अंततः, प्रत्येक मामले का विनिश्चय स्वयंमेव उसके तथ्यों के आधार पर किया जाना चाहिए । जब मृतक ने मृत्युकालिक कथन किया था, उस समय की परिवर्ती परिस्थितियों सहित न्यायालय के समक्ष लाए गए साक्ष्य का मूल्यांकन करने के लिए कोई कठोर नियम नहीं हो सकता है । न्यायालय का फोकस होना चाहिए – प्रक्रिया की स्वैच्छिकता को सुनिश्चित करना, यह समाधान करना कि सिखाना-पढ़ाना या प्रेरित करना नहीं था, इस बात के लिए आश्वस्त होना कि मृतक मृत्युकालिक कथन करने से पूर्व ठीक मानसिक हालत में था, यह अभिनिश्चित करना कि घोषणाकर्ता को अभियुक्त की शनाख्त करने के लिए पर्याप्त अवसर उपलब्ध था ।

21. **वीरपाल** (उपर्युक्त) वाले मामले में इस न्यायालय ने यह स्पष्ट किया है कि मृत्युकालिक कथन पर किसी अन्य संपुष्टि के बिना कार्यवाही की जा सकती है और निम्नलिखित मत व्यक्त किया :–

> "16. अब जहां तक इस पहलू का संबंध है कि क्या किसी संपुष्टिकारी साक्ष्य के अभाव में केवल मृत्युकालिक कथन का अवलंब लेकर दोषसिद्धि की जा सकती है, मन्नु राजा (1976) 3 एस. सी. सी. 104 वाले मामले में इस न्यायालय के विनिश्चय और पानीबेन **बनाम** गुजरात राज्य [(1992) 2 एस. सी. सी. 474] वाले मामले में के पश्चात्वर्ती विनिश्चय को निर्दिष्ट किया जाना आवश्यक है । पूर्वोक्त विनिश्चयों में, विनिर्दिष्ट रूप से यह मत व्यक्त और अभिनिर्धारित किया गया कि इस आशय का न तो कोई विधि का और न ही प्रज्ञा का नियम है कि मृत्युकालिक कथन पर किसी संपुष्टि के बिना कार्यवाही नहीं की जा सकती । यह मत व्यक्त और अभिनिर्धारित किया गया कि यदि न्यायालय का यह समाधान हो जाता है कि मृत्युकालिक कथन सत्य और स्वेच्छया है, तो संपुष्टि के बिना भी इसके आधार पर दोषसिद्धि की जा सकती है । उत्तर प्रदेश राज्य **बनाम** राम सागर यादव (1985) 1 एस. सी. सी. 552 और रामवती **बनाम** बिहार राज्य (1983) 1

एस. सी. सी. 211 वाले मामलों में भी इसी प्रकार का मत अभिव्यक्त किया गया है । अत: मात्र मृत्युकालिक कथन के आधार पर संपुष्टि के बिना दोषसिद्धि की जा सकती है ।"

22. तथापि, यदि कोई मृत्युकालिक कथन किसी खामी से ग्रसित है, तो यह अभियुक्त को दोषसिद्ध करने के लिए एकमात्र आधार नहीं हो सकता है । उन परिस्थितियों में, न्यायालय को पीछे मुड़ना चाहिए और इस बात पर विचार करना चाहिए कि क्या मामले में संचयी कारकों से उक्त मृत्युकालिक कथन का अवलंब लेना कठिन है । इस संदर्भ में, **नल्लापट्टी सिवय्या** (उपर्युक्त) वाले मामले को निर्दिष्ट करना उपयोगी होगा, जिसमें इस न्यायालय ने निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया है :–

"46. अभियोजन पक्ष का कर्तव्य है कि वह अभियुक्त के विरुद्ध आरोप को युक्तियुक्त संदेह के परे सिद्ध करे । संदेह का फायदा सदैव अभियुक्त के पक्ष में जाना चाहिए । यह सही है कि मृत्युकालिक कथन अवलंब लिए जाने के लिए एक सारभूत साक्ष्य है, बशर्ते यह साबित हो जाता है कि वह स्वेच्छया और सत्य था तथा विपदग्रस्त ठीक मानसिक हालत में था । न्यायालयिक आयुर्विज्ञान के प्रोफेसर के साक्ष्य से एक स्वेच्छया और सत्य कथन करने के लिए मृतक की दशा के संबंध में पर्याप्त संदेह पैदा होता है । इस कारण से डा. पी. नरसिम्हाराव, दुर्घटना चिकित्सा अधिकारी, जो कथित रूप से दोनों मृत्युकालिक कथन अभिलिखित करने के समय पर मौजूद था, की परीक्षा न कराने की बात का कुछ न कुछ महत्व हो जाता है । इस कारण नहीं कि विधि की यह अपेक्षा है कि उस डाक्टर की प्रत्येक मामले में परीक्षा की जानी चाहिए जिसने मृत्युकालिक कथन करने के लिए विपदग्रस्त की दशा के बारे में प्रमाणित किया था, अपितु अभियोजन पक्ष की यह आबद्धता है कि वह मामले के विशिष्ट तथ्यों में उपलब्ध संपुष्टिकारी साक्ष्य प्रस्तुत करे ।

* * *

52. मृत्युकालिक कथन से अवश्य विश्वास प्रेरित होना चाहिए

जिससे इसके आधार पर कार्यवाही करना सुरक्षित हो सके । क्या किसी मृत्युकालिक कथन के आधार पर कार्यवाही करना सुरक्षित है या नहीं, यह न केवल मृत्युकालिक कथन अभिलिखित करने वाले व्यक्ति – चाहे यह कोई मजिस्ट्रेट भी हो, के परिसाक्ष्य पर निर्भर करता है अपितु चिकित्सा साक्ष्य सहित अभिलेख पर उपलब्ध सभी सामग्री और परिस्थितियों पर भी निर्भर करता है । प्रत्येक मामले में एक उचित निष्कर्ष पर पहुंचने के लिए साक्ष्य और अभिलेख पर की सामग्री पर उचित रूप से विचार करना चाहिए । न्यायालय को अवश्य अपना यह समाधान करना चाहिए कि मृत्युकालिक कथन करने वाला व्यक्ति होश में था और कथन करने योग्य था, इन प्रयोजनों के लिए न केवल मृत्युकालिक कथन अभिलिखित करने वाले व्यक्तियों के साक्ष्य अपितु चिकित्सा साक्ष्य सहित अन्य साक्ष्य और परिस्थितियों के संचयी प्रभाव को भी अवश्य ध्यान में रखना चाहिए ।"

23. **अरविन्द सिंह** (उपर्युक्त) वाले मामले में इस न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि मृत्युकालिक कथन पर सावधानी और सतर्कता से विचार करना चाहिए और उसकी संपुष्टि, भले ही आवश्यक न हो, कथन के साक्ष्यिक महत्व को सुदृढ़ करने के लिए समीचीन है । यहां तक कि जहां स्वतंत्र साक्षी उपलब्ध न हों, जब ऐसे कथन को विश्वसनीय साक्ष्य के रूप में स्वीकार करना हो तो सभी पूर्वावधानियां बरती जानी चाहिएं । दूसरे शब्दों में, भले ही प्रत्यक्ष साक्ष्य उपलब्ध न हों, घटनाओं की श्रृंखला में किसी टूट के बिना पारिस्थितिक साक्ष्य मृत्युकालिक कथन के साक्ष्यिक महत्व में वृद्धि करेगा ।

24. जहां न्यायालय संपुष्टि के बिना किसी मृत्युकालिक कथन को स्वीकार कर सकते हैं, उन परिस्थितियों को शासित करने वाले सिद्धांतों पर **खुशाल राव** बनाम **बंबई राज्य**[1] वाले मामले में विस्तारपूर्वक विचार किया गया है और तुरंत संदर्भ के लिए उन्हें निम्न प्रकार से उद्धृत किया जाता है :–

---

[1] ए. आई. आर. 1958 एस. सी. 22.

"16. साक्ष्य अधिनियम के सुसंगत उपबंधों और भारत में के विभिन्न उच्च न्यायालयों तथा इस न्यायालय के विनिश्चित मामलों का पुनर्विलोकन करने पर हम पूर्वोक्त मद्रास उच्च न्यायालय की पूर्ण न्यायपीठ की राय से सहमत होते हुए इस निष्कर्ष पर पहुंचे हैं कि (1) विधि के आत्यंतिक नियम के रूप में यह अधिकथित नहीं किया जा सकता है कि कोई मृत्युकालिक कथन तब तक दोषसिद्धि का एकमात्र आधार नहीं बन सकता है जब तक कि इसकी संपुष्टि नहीं हो जाती है ; (2) प्रत्येक मामले का अवधारण स्वयं उसके तथ्यों के आधार पर उन परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए किया जाना चाहिए जिनमें मृत्युकालिक कथन किया गया था ; (3) एक साधारण प्रतिपादना के रूप में यह अधिकथित नहीं किया जा सकता है कि मृत्युकालिक कथन अन्य साक्ष्य की बजाए एक कमजोर प्रकार का साक्ष्य है ; (4) मृत्युकालिक कथन का महत्व किसी अन्य साक्ष्य के समान होता है और इसका मूल्यांकन परिवर्ती परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए और साक्ष्य पर विचार-मनन करने वाले सिद्धांतों के प्रतिनिर्देश करके किया जाना चाहिए ; (5) ऐसा मृत्युकालिक कथन जो किसी सक्षम मजिस्ट्रेट द्वारा उचित रीति में, अर्थात् प्रश्नों और उत्तरों के रूप में और यथासाध्य घोषणा करने वाले के शब्दों में अभिलिखित किया गया है, तो वह उस मृत्युकालिक कथन की बजाए अधिक ऊंचे पायदान पर होता है जो मौखिक परिसाक्ष्य पर निर्भर हो, जिसमें मानव की यादाश्त और मानव चरित्र संबंधी सभी खामियां हो सकती हैं ; और (6) किसी मृत्युकालिक कथन की विश्वसनीयता का परीक्षण करने के लिए न्यायालय को इन परिस्थितियों को ध्यान में रखना चाहिए, जैसे क्या मर गए व्यक्ति के पास अवलोकन करने का अवसर था, उदाहरण के लिए, यदि अपराध रात्रि में किया गया था तो क्या वहां पर्याप्त प्रकाश था ; क्या जिन तथ्यों का उल्लेख किया गया है उन्हें स्मरण रखने का उस व्यक्ति का सामर्थ्य उसके नियंत्रण के परे परिस्थितियों द्वारा उस समय क्षीण तो नहीं हो गया था, जब वह कथन कर रहा था ; यदि उसके पास मृत्युकालिक कथन को शासकीय रूप से अभिलिखित करने के

अतिरिक्त ऐसा कथन करने के कई अवसर थे तो क्या कथन पूर्णतया संगत रहा था ; और यह कि कथन शीघ्रतम अवसर पर किया गया था और हितबद्ध पक्षकारों द्वारा सिखाने-पढ़ाने का परिणाम नहीं था ।"

25. मजिस्ट्रेट द्वारा अभिलिखित किए गए मृत्युकालिक कथन की विश्वसनीयता का प्रश्न भी कई मामलों में विचार के लिए उद्भूत हुआ और यह अभिनिर्धारित किया गया कि मजिस्ट्रेट एक अहितबद्ध साक्षी और एक सम्मानित अधिकारी होने के कारण तथा यह संदेह करने के लिए कोई परिस्थिति या सामग्री न होने के कारण कि उसका अभियुक्त के विरुद्ध कोई विद्वेष था या मृत्युकालिक कथन गढ़ने के लिए किसी प्रकार से हितबद्ध था, तो मजिस्ट्रेट द्वारा अभिलिखित किए गए ऐसे मृत्युकालिक कथन पर संदेह नहीं किया जाना चाहिए । संपुष्टिकारी साक्ष्य के अभाव में मृत्युकालिक कथन के आधार पर अभियुक्त को दोषसिद्ध करने के लिए कई मामलों में चर्चा का विषय रहा है । (संदर्भ : **मुन्नु राजा** (उपर्युक्त), **पानीबेन (श्रीमती)** (उपर्युक्त), **राम सागर यादव** (उपर्युक्त), **रामवती देवी** (उपर्युक्त) और **वीरपाल** (उपर्युक्त) वाले मामले ।

26. प्रस्तुत मामले पर वापस आते हैं । इस तथ्य के बारे में कोई विवाद नहीं है कि मृतका को अपने मकान पर तारीख 27 मार्च, 1995 को गंभीर दाह क्षतियां पहुंची थीं । डा. नरेशचंद्र सेथिया (अभि. सा. 11), जिसने मरणोत्तर परीक्षा की थी, ने यह कथन किया था कि उसे दोनों भुजाओं और टांगों, छाती, उदर, पीठ, सिर, गर्दन और चेहरे पर 93 प्रतिशत की सीमा तक क्षतियां पहुंची थीं । उसने यह भी अभिसाक्ष्य दिया था कि उसकी मृत्यु का अधिसंभाव्य कारण उक्त दाह क्षतियां थीं ।

27. विचारण न्यायालय ने अपीलार्थी को दोषसिद्ध करने के लिए प्राथमिक रूप से मृतका के दो लिखित मृत्युकालिक कथनों, जिनमें से एक विशेष कार्यपालक मजिस्ट्रेट (अभि. सा. 9) और दूसरा अन्वेषक अधिकारी (अभि. सा. 14) द्वारा अभिलिखित किया गया था तथा मृतका द्वारा कथित रूप से अपने पिता (अभि. सा. 2) और बालाजी (अभि. सा. 12), वह बिचौलिया जिसने पक्षकारों का विवाह तय किया था, को किए

गए मौखिक मृत्युकालिक कथनों का अवलंब लिया था । तथापि, उच्च न्यायालय ने विशेष कार्यपालक मजिस्ट्रेट (अभि. सा. 9) और अन्वेषक अधिकारी (अभि. सा. 14) द्वारा मृत्युकालिक कथनों को अभिलिखित करते समय अपनाई गई प्रक्रिया में कई खामियां पाए जाने पर उनका अवलंब लेना असुरक्षित समझा और उन्हें दरकिनार कर दिया ।

28. अन्वेषक अधिकारी, उप निरीक्षक मधुकर गीते (अभि. सा. 14) द्वारा अभिलिखित किए गए पहले मृत्युकालिक कथन पर आते हैं । उच्च न्यायालय ने उसका अवलंब लेना निम्नलिखित कारणों से दुष्कर पाया था –

(क) अभि. सा. 14 ने यह कथन किया था कि उसे पुलिस थाने से जो अध्यपेक्षा पत्र अन्य बातों के साथ-साथ यह उल्लेख करते हुए प्राप्त हुआ था कि मृतका को दुर्भाग्यपूर्ण दिन अपने घर पर लगभग 12.30 बजे अपराह्न में स्टोव पर नाश्ता तैयार करते समय जलते हुए स्टोव पर उसकी साड़ी का बॉर्डर (पल्लू) गिरने के कारण आग लग गई थी, उसमें उस अस्पताल के नाम का उल्लेख नहीं था जहां मृतका को भर्ती किया गया था । महत्वपूर्ण रूप से, उक्त अध्यपेक्षा पत्र के आधार पर ही अभि. सा. 14 मृतका से मिलने के लिए अस्पताल गया था और उसका कथन अभिलिखित किया था ;

(ख) उस स्रोत के संबंध में अस्पष्टता थी जिससे अभि. सा. 14 को पूर्वोक्त जानकारी प्राप्त हुई थी और विचारण के दौरान उक्त अस्पष्टता को स्पष्ट करने का कोई प्रयास नहीं किया गया था ;

(ग) अभि. सा. 14 ने परिचर्या करने वाले डाक्टर से कोई प्रमाणपत्र अभिप्राप्त नहीं किया था जिससे मृतका का कथन अभिलिखित करने से पूर्व उसकी शारीरिक और मानसिक दशा को सिद्ध किया जा सके ;

(घ) जब मृतका का कथन अभिलिखित किया गया था, डाक्टर मौजूद तक नहीं था ;

(ङ) अभि. सा. 14 द्वारा मृत्युकालिक कथन एकांत में अभिलिखित नहीं किया गया था । कथन अभिलिखित करने के समय पर मृतका के नातेदारों की मौजूदगी के कारण मृतका को प्रेरित करने/सिखाने-पढ़ाने की अधिसंभाव्यता से इनकार नहीं किया जा सकता है ।

29. निम्नलिखित वे कारण थे जिनसे उच्च न्यायालय विशेष कार्यपालक मजिस्ट्रेट (अभि. सा. 9) द्वारा अभिलिखित किए गए दूसरे लिखित मृत्युकालिक कथन की उपेक्षा करने के लिए प्रभावित हुआ था –

(क) मृतका का कथन अभिलिखित करने से पूर्व परिचर्या करने वाले डाक्टर ने अभि. सा. 9 की मौजूदगी में उसका परीक्षण नहीं किया था ;

(ख) अभि. सा. 9 द्वारा मृतका का कथन डाक्टर की गैर-मौजूदगी में अभिलिखित किया गया था ;

(ग) डाक्टर ने अध्यपेक्षा पत्र पर अभि. सा. 9 की मौजूदगी में कोई पृष्ठांकन नहीं किया था ;

(घ) अभि. सा. 9 ने मृतका का कथन स्वयं अभिलिखित नहीं किया था । इसके बजाए, उसने यह काम पुलिस कांस्टेबल को सौंप दिया था जिसने मृतका का कथन लेखबद्ध किया था ;

(ङ) कथन को लेखबद्ध करने के पश्चात् उस पर मृतका के हस्ताक्षर अभिप्राप्त करने से पूर्व उसे पढ़कर नहीं सुनाया गया था ;

(च) मृतका का कथन प्रश्न-उत्तर रूप में अभिलिखित नहीं किया गया था ।

30. उच्च न्यायालय द्वारा मृतका के दोनों लिखित मृत्युकालिक कथनों को पूर्णत: त्यक्त करने के लिए उपरोक्त खामियां पर्याप्त समझी गई थीं ।

31. चूंकि उच्च न्यायालय द्वारा दोनों लिखित मृत्युकालिक कथनों को उनमें कमियां पाए जाने के कारण और उन्हें अविश्वसनीय ठहराते

हुए त्यक्त करने के लिए निकाले गए निष्कर्षों को कोई चुनौती नहीं दी गई है, इसलिए हम उनकी विश्वसनीयता पर विचार करना नहीं चाहते हैं । यह कहना पर्याप्त होगा कि उच्च न्यायालय द्वारा उन्हें अविश्वसनीय पाए जाने के लिए कई कारण थे । इसके बजाए, मृतका द्वारा अभि. सा. 2 और अभि. सा. 12 की मौजूदगी में कथित रूप से किए गए मौखिक मृत्युकालिक कथनों की परीक्षा करना उचित समझा गया है ।

32. मृतका के पिता, रामकृष्ण महादेव उचाले (अभि. सा. 2) ने यह अभिसाक्ष्य दिया था कि उसे अपनी पुत्री के जलने के संबंध में एक संदेश प्राप्त हुआ था और वह मायो अस्पताल गया था, जहां वह भर्ती थी । उसने देखा कि मृतका को दाह क्षतियां पहुंची थीं और गंभीर हालत में थी । उसने उससे पूछताछ की कि कैसे घटना घटी थी, जिस पर उसने यह कहा कि दुर्भाग्यपूर्ण दिन जब वह गेहूं साफ कर रही थी, तब अपीलार्थी मकान पर आया, उसकी पिटाई की, उसके शरीर पर मिट्टी का तेल छिड़का और उसके हाथों को बांधकर उसे आग लगा दी । अभि. सा. 2 ने यह अभिसाक्ष्य दिया था कि वर्ष 1993 में अपीलार्थी के साथ उसके विवाह के पश्चात् उसकी पुत्री यह शिकायत करती रहती थी कि अपीलार्थी धन की मांग करने के कारण उसके साथ दुर्व्यवहार करता रहता है और उसके चरित्र पर संदेह करता है । उसने यह कथन किया था कि उसने इसके संबंध में पारदी गांव पुलिस थाने में एक रिपोर्ट दर्ज की थी । अपनी प्रतिपरीक्षा के दौरान अभि. सा. 2 ने इस बात से इनकार किया था कि पुलिस द्वारा उसका कथन अन्वेषण के दौरान अभिलिखित किया था । यद्यपि सहायक लोक अभियोजक को उपरोक्त पहलू पर अभि. सा. 2 की पुन: परीक्षा करने के लिए अनुज्ञात किया गया था, किंतु उक्त पुन: परीक्षा से सिवाय इसके कोई तात्विक बात निकलकर नहीं आई थी कि उसने यह कथन किया था कि उसकी पुत्री के जलने के संबंध में लाकड़गंज पुलिस द्वारा जांच की गई थी । महत्वपूर्ण रूप से, अन्वेषक अधिकारी उप निरीक्षक मधुकर गीते (अभि. सा. 14) की विस्तृत प्रतिपरीक्षा के दौरान उसने स्पष्ट रूप से यह कथन किया था कि उसने अभि. सा. 2 का कथन अभिलिखित किया था, किंतु अभि. सा.

14 की प्रतिपरीक्षा के दौरान अपीलार्थी द्वारा धन के लिए मृतका पर हमला करने या उसके चरित्र पर संदेह करने इत्यादि के संबंध में अभि. सा. 2 द्वारा किए गए किसी दावे से उसका सामना नहीं कराया गया था । वास्तव में, अपनी बारी में अभि. सा. 14 ने इस तथ्य से इनकार किया था कि उसने अभि. सा. 2 का कथन अभिलिखित नहीं किया था ।

33. मृतका द्वारा दूसरा मौखिक मृत्युकालिक कथन बालाजी (अभि. सा. 12) को किया गया था जो वह बिचौलिया था जो अपीलार्थी और मृतका के विवाह का अनुष्ठापन कराने में माध्यम था । यद्यपि उसने यह अभिसाक्ष्य दिया था कि अपीलार्थी ने विवाह के पश्चात् मृतका से नकदी और एक सोने की जंजीर सहित कई मांगे की थीं और उसकी यह कहकर पिटाई करता रहता था कि यदि वह अपने माता-पिता से धन नहीं लाई, तो वह उसकी पिटाई करता रहेगा । अपनी प्रतिपरीक्षा के दौरान इस साक्षी ने यह स्वीकार किया था कि उसने यह बात पुलिस को नहीं बताई थी । अभि. सा. 12 ने यह भी कथन किया था कि वह अभि. सा. 2 के साथ अपीलार्थी की गैर-मौजूदगी में मृतका के पास उसके मकान पर गया था और उस समय उसने यह शिकायत की थी कि अपीलार्थी उसकी पिटाई करता रहता है और अनुरोध किया था कि उसे उसके माता-पिता के घर वापस ले जाया जाए । उसके पश्चात्, अभि. सा. 12 और अभि. सा. 2 ने अपीलार्थी के विरुद्ध लाकड़गंज पुलिस थाने में एक रिपोर्ट दर्ज की थी । उसने आगे यह भी कथन किया था कि मृतका को पंद्रह दिनों के लिए उसके माता-पिता के घर वापस लाया गया था । अभि. सा. 12 ने यह दावा किया था कि उसके (मृतका) अपने दांपत्य गृह में लौटने के पंद्रह दिनों के पश्चात् उसे एक पर्ची यह उल्लेख करते हुए प्राप्त हुई थी कि मृतका को आग लग गई है और मायो अस्पताल में भर्ती है । जब वह अस्पताल गया, तो मृतका ने उसे बताया कि जब वह गेहूं साफ कर रही थी, तब अपीलार्थी घर आया, एक रिबन के साथ उसके हाथों को बांधा और उसे अंदर ले गया । उसके पश्चात्, अपीलार्थी ने मृतका के शरीर पर मिट्टी का तेल छिड़का और माचिस की एक तिल्ली जलाकर उसे आग लगा दी ।

34. अभि. सा. 2 और अभि. सा. 12 के परिसाक्ष्यों के परिशीलन

से यह दर्शित होता है कि उन्होंने इस बारे में भिन्न-भिन्न वृत्तांत दिए हैं कि मृतका द्वारा उन्हें अभिकथित रूप से क्या बताया गया था । उन दोनों ने यह कथन किया था कि अपीलार्थी की लगातार की जा रही दहेज की मांगों को पूर्ण करने में असफल रहने के कारण घटना घटी थी । अपीलार्थी के आस-पड़ोस में रहने वाली एक विधवा के साथ अयुक्त संबंध होने का कोई उल्लेख नहीं किया गया था जो मृतका और उसके पति के बीच लगातार झगड़े का कारण था और जिसके कारण घटना घटी थी । महत्वपूर्ण रूप से, दोनों साक्षियों ने यह कथन किया था कि उनके कथन पुलिस द्वारा अन्वेषण के दौरान अभिलिखित नहीं किए गए थे और उन्होंने पहली बार केवल तब अभिसाक्ष्य दिया था जब वे विचारण के दौरान कठघरे में आए थे ।

35. अपीलार्थी की ओर से विद्वान् काउंसेल द्वारा उद्धृत **अरुण भानुदास पवार** (उपर्युक्त) वाले मामले में इस न्यायालय ने हितबद्ध साक्षी, जो विपदग्रस्त की माता थी, के परिसाक्ष्य को किसी स्वतंत्र साक्षी से, उस चिकित्सा अधिकारी सहित जो विपदग्रस्त की परिचर्या का रहा था, यह साबित करने के लिए किसी संपुष्टि के अभाव में कि विपदग्रस्त को उस समय होश आ गया था जब उसकी माता अस्पताल में उससे मिली थी और अभियुक्त को दो अन्य सह-अभियुक्तों के साथ हमलावरों के रूप में नामित किया था, स्वीकार करने से इनकार कर दिया था । एक और बात, जिससे न्यायालय माता के परिसाक्ष्य को नामंजूर करने के लिए प्रभावित हुआ था, वह यह थी कि उसने ऐसा पुलिस द्वारा दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 161 के अधीन अभिलिखित किए गए अपने कथन में नहीं कहा था और पहली बार न्यायालय के समक्ष ही उसने ऐसा कथन किया था । इस न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित करते हुए कि मृतक द्वारा किए गए मौखिक मृत्युकालिक कथन पर सावधानी और सतर्कता से विचार किया जाना चाहिए, चूंकि कथन करने वाले व्यक्ति की कोई प्रतिपरीक्षा नहीं की जा सकती है, मृतक द्वारा अपनी माता, जो एक हितबद्ध साक्षी थी, को अभिकथित रूप से किए गए उक्त मौखिक मृत्युकालिक कथन को स्वीकार करने के लिए उच्च न्यायालय और विचारण न्यायालय को इसलिए गलत पाया कि जब यह दर्शित करने के

लिए कुछ नहीं था कि मृतक अपनी माता को मौखिक कथन करने के लिए ठीक हालत में था या नहीं । **पूनम बाई** (उपर्युक्त) वाले मामले में इस न्यायालय द्वारा इसी प्रकार का दृष्टिकोण अपनाया गया था और यह अभिनिर्धारित किया गया था :–

> "16. जहां तक मौखिक मृत्युकालिक कथन का संबंध है, इस तथ्य के अतिरिक्त कि मृत्युकालिक कथन से संबंधित साक्ष्य स्वयंमेव एक कमजोर प्रकार का साक्ष्य होता है, अभिलेख पर साक्ष्य बहुत ही ढुलमुल है । अभियोजन के पक्षकथन के अनुसार, मृतक ने ललिता साहू (अभि. सा. 2), पीलाराम साहू (अभि. सा. 3), पार्वती बाई (अभि. सा. 4) और अन्य व्यक्तियों के समक्ष मौखिक मृत्युकालिक कथन किया था । यद्यपि अभि. सा. 2, 3 और 4 ने यह अभिसाक्ष्य दिया है कि मृतक ने अपीलार्थी को आलिप्त करते हुए उनके समक्ष मौखिक कथन किया था, तो भी यह वृत्तांत स्पष्ट रूप से केवल एक सोचा-समझा वृत्तांत है क्योंकि इसे पहली बार विचारण न्यायालय के समक्ष किया गया था । पुलिस द्वारा दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 161 के अधीन अभिलिखित किए गए उनके कथनों में इन साक्षियों ने मृतक के अभिकथित मौखिक मृत्युकालिक कथन के संबंध में कोई कथन नहीं किया था । इन बातों का विचारण न्यायालय द्वारा अपने विस्तृत निर्णय में उल्लेख किया गया है । इस प्रकार, अभि. सा. 2, 3 और 4 के मौखिक मृत्युकालिक कथन के संबंध में साक्ष्य स्पष्ट रूप से एक सुधार किया गया वृत्तांत है और यह बात प्रतिरक्षा पक्ष द्वारा विधि के अनुसार साबित की गई है ।"

36. हमारी यह राय है कि जब एक बार उच्च न्यायालय ने सेशन न्यायालय से असहमति जताई थी और विशेष कार्यपालक मजिस्ट्रेट (अभि. सा. 9) और अन्वेषक अधिकारी (अभि. सा. 14) द्वारा उक्त कथन अभिलिखित करने के लिए अपनाई गई प्रक्रिया में कई सारी स्पष्ट खामियों के कारण मृतका के दोनों लिखित मृत्युकालिक कथनों को त्यक्त कर दिया था, तब अपीलार्थी को अभि. सा. 2, मृतका के पिता

और अभि. सा. 12, पारिवारिक मित्र के मौखिक परिसाक्ष्य के आधार पर दोषसिद्ध नहीं किया जा सकता था, जो दोनों ही हितबद्ध साक्षी थे और जिनका साक्ष्य अभि. सा. 9 और अभि. सा. 14 द्वारा अभिलिखित मृतका द्वारा दिए गए वृत्तांतों के प्रतिकूल था । यह अवश्य स्मरण रखना चाहिए कि सभी चारों मृत्युकालिक कथन, दो लिखित में और अन्य दो मौखिक, मृतका द्वारा उसी दिन अर्थात् 27 मार्च, 1995 को अलग-अलग समय पर तब किए गए कथनों पर आधारित थे, जब उसे 93 प्रतिशत दाह क्षतियां पहुंची हुई थीं और अपना कथन करने के लिए उसके मानसिक और शारीरिक रूप से ठीक होने के बारे में गंभीर संदेह हैं । अन्वेषक अधिकारी (अभि. सा. 14) ने पहला मृत्युकालिक कथन 3.20 बजे अपराह्न में अभिलिखित किया था, जिसके पश्चात् विशेष कार्यपालक मजिस्ट्रेट द्वारा दूसरा मृत्युकालिक कथन 4.30 बजे अपराह्न और 5.00 बजे अपराह्न के बीच अभिलिखित किया गया था । उसी दिन ही अभि. सा. 2 और अभि. सा. 12 भी अस्पताल में मृतका से मिले थे और यह दावा किया था कि मृतका ने उन्हें इस बारे में सूचित किया था कि कैसे उसे दाह क्षतियां पहुंची थीं और अपराधी के रूप में अपीलार्थी को नामित किया था ।

37. अभि. सा. 2 और अभि. सा. 12 दोनों ने यह अभिसाक्ष्य दिया था कि मृतका ने अपने मौखिक मृत्युकालिक कथन में अपीलार्थी द्वारा उससे की गई दहेज की मांगों और इस तथ्य का उल्लेख किया था कि वह उसके चरित्र पर संदेह करता था, जिसके कारण अभिकथित घटना घटी थी । जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, उनके अभिसाक्ष्यों में कहीं भी अभियोजन के वृत्तांत में दिए गए इस वृत्तांत का कोई संदर्भ नहीं है कि अपीलार्थी का उसके आस-पड़ोस में रहने वाली एक विधवा के साथ अयुक्त संबंध था, जो पति-पत्नी के बीच झगड़े का मुख्य कारण था और जिसके परिणामस्परूप घटना घटी थी । जिन कारणों से अभिकथित घटना घटी थी, उनसे कतई भिन्न दिए गए वृत्तांत से अभि. सा. 2 और अभि. सा. 12 के संपूर्ण परिसाक्ष्य पर संदेह उत्पन्न होता है, जिससे उनके परिसाक्ष्य का अवलंब लेना और अपीलार्थी को उसके विरुद्ध

लगाए गए आरोप के लिए दोषसिद्ध करना असुरक्षित बन जाता है । अत: हमारी यह राय है कि अभियोजन पक्ष अभि. सा. 2 और अभि. सा. 12 के परिसाक्ष्यों का समर्थन करने के लिए विश्वसनीय संपुष्टिकारी साक्ष्य प्रस्तुत करने की उस पर अधिरोपित आबद्धता का निर्वहन करने में असफल रहा था ।

38. ऊपर चर्चा किए गए साक्ष्य को ध्यान में रखते हुए और एक से अधिक मृत्युकालिक कथनों से संबंधित साक्ष्य के मूल्यांकन को शासित करने वाले सिद्धांतों के प्रति सचेत होने के कारण हमें उच्च न्यायालय द्वारा निकाले गए निष्कर्ष की पुष्टि करने में कठिनाई है । अपीलार्थी को अपनी पत्नी की हत्या करने के अपराध के लिए दोषी ठहराने के लिए अभि. सा. 2 और अभि. सा. 12 के साक्ष्य को बेहतर नहीं समझा जा सकता है । अत: वह संदेह का फायदा दिए जाने का हकदार है ।

39. पूर्वोक्त चर्चा के परिणामस्वरूप, आक्षेपित निर्णय को अभिखंडित और अपास्त किया जाता है । परिणामत:, अपीलार्थी को उसके विरुद्ध विरचित आरोप से दोषमुक्त किया जाता है और यदि उसकी किसी अन्य मामले में आवश्यकता नहीं है, तो उसे तुरंत रिहा किए जाने का निदेश दिया जाता है ।

अपील मंजूर की गई ।

जस.

[2022] 2 उम. नि. प. 425

महेन्द्र सिंह और अन्य

बनाम

मध्य प्रदेश राज्य

[2021 की दांडिक अपील सं. 764-765]

3 जून, 2022

न्यायमूर्ति बी. आर. गवई और न्यायमूर्ति हिमा कोहली

दंड संहिता, 1860 (1860 का 45) – धारा 148 और 302/149 – विधिविरुद्ध जमाव और हत्या – अभियुक्तों द्वारा अभिकथित रूप से मृतक पर आयुधों से प्रहार करके उसकी हत्या किया जाना – शिकायतकर्ता-घटना के एकमात्र प्रत्यक्षदर्शी साक्षी के परिसाक्ष्य के आधार पर दोषसिद्धि – अपील में उच्च न्यायालय द्वारा शिकायतकर्ता-प्रत्यक्षदर्शी साक्षी के साक्ष्य को 'न तो पूर्णत: विश्वसनीय और न ही पूर्णत: अविश्वसनीय' पाया जाना किंतु मरणोत्तर परीक्षा रिपोर्ट से शिकायतकर्ता के साक्ष्य की संपुष्टि करते हुए दोषसिद्धि की पुष्टि किया जाना – संधार्यता – जहां अभियोजन साक्षियों के अभिसाक्ष्य के साथ-साथ प्रतिरक्षा पक्ष के साक्षियों के साक्ष्य से भी यह दर्शित हो रहा हो कि घटना के शिकायतकर्ता को घटनास्थल पर मृतक के मृत पड़ा होने के बारे में अन्य साक्षियों द्वारा सूचित किया था, वहां उसे प्रत्यक्षदर्शी साक्षी नहीं कहा जा सकता है और वह एक 'पूर्णत: अविश्वसनीय साक्षी' के प्रवर्ग में आने के कारण उसके एकमात्र परिसाक्ष्य के आधार पर अभियुक्तों की दोषसिद्धि को कायम नहीं रखा जा सकता है और अभियोजन पक्ष द्वारा अपने पक्षकथन को युक्तियुक्त संदेह के परे साबित करने में असफल रहने पर अभियुक्त-अपीलार्थियों को संदेह के फायदे का हकदार होने के कारण दोषमुक्त करना उचित होगा ।

इस अपील के तथ्यों के अनुसार, शिकायतकर्ता (अभि. सा. 6) द्वारा पुलिस थाने में एक मौखिक रिपोर्ट दी गई थी, जिसके आधार पर एक प्रथम इत्तिला रिपोर्ट रजिस्ट्रीकृत की गई थी । शिकायतकर्ता द्वारा प्रथम इत्तिला रिपोर्ट में यह कहा गया कि तारीख 12 जून, 1994 को

जब वह बासोदा से वापस आ रहा था, तब वह लगभग 6.00 बजे अपराह्न में अपने भाई भगत सिंह (मृतक) से मिला था और आखे सिंह (अभि. सा. 4) से भी मिला था उसने यह भी कहा कि वे नई सड़क से चाक राणापुर जाने वाली बस में सवार हुए । चाक राणापुर पहुंचने के पश्चात् वे अपने गांव बुधोर की ओर चले । लगभग 7.00 बजे अपराह्न में जब वे गांव रतनपुर पहुंचे, तो वह आगे-आगे चल रहा था, उसके पीछे आखे सिंह (अभि. सा. 4) चल रहा था और उसके पीछे भगत सिंह चल रहा था, तो उसने अपने भाई भगत सिंह के चिल्लाने की आवाज सुनी और जब वह मुड़ा तो उसने अभियुक्तों को उस पर बल्लम और लाठियों से प्रहार करते हुए देखा । जब अभियुक्तों ने शिकायतकर्ता (अभि. सा. 6) और अभि. सा. 4 पर हमला करने के लिए पीछा किया, तो वे अपनी जान बचाने के लिए भागने लगे और गांव बुधोर पहुंचे तथा दीवान सिंह, पूर्ण सिंह, मोकम सिंह इत्यादि को घटना का वर्णन किया । वे सभी घटनास्थल पर वापस आए और भगत सिंह को मृत पाया । अन्वेषण की समाप्ति के पश्चात्, प्रथम श्रेणी न्यायिक मजिस्ट्रेट, गंज बासोदा के न्यायालय में 11 अभियुक्तों के विरुद्ध आरोप पत्र फाइल किया गया, जिसने मामले को विद्वान् सेशन न्यायाधीश के न्यायालय, गंज बासोदा, जिला विदिशा, मध्य प्रदेश को सुपुर्द कर दिया । सभी 11 अभियुक्तों के विरुद्ध भारतीय दंड संहिता की धारा 148 और धारा 149 के साथ पठित धारा 302 के अधीन दंडनीय अपराधों के लिए आरोप विरचित किए गए । विचारण की समाप्ति पर, विचारण न्यायालय ने अभियुक्त सं. 1, 2, 5, 6, और 10 को दोषमुक्त कर दिया । तथापि, शेष अभियुक्तों को भारतीय दंड संहिता की धारा 148 और धारा 149 के साथ पठित धारा 302 के अधीन दंडनीय अपराधों के लिए दोषसिद्ध और दंडादिष्ट किया गया । विचारण न्यायालय द्वारा पारित किए गए निर्णय से व्यथित होकर सभी दोषसिद्ध अभियुक्तों द्वारा मध्य प्रदेश उच्च न्यायालय के समक्ष एक अपील फाइल की गई । उच्च न्यायालय द्वारा उक्त अपील खारिज कर दी गई । उच्च न्यायालय के निर्णय से व्यथित होकर दोषसिद्ध अभियुक्तों द्वारा उच्चतम न्यायालय में अपीलें फाइल की गईं । उच्चतम न्यायालय द्वारा अपीलों को मंजूर करते हुए,

अभिनिर्धारित – महेन्द्र सिंह (अभि. सा. 3) और आखे सिंह (अभि. सा. 4) के परिसाक्ष्य से, मोबत सिंह (प्रति. सा. 3) और कोक सिंह रघुवंशी (प्रति. सा. 4) के परिसाक्ष्य को निर्दिष्ट किए बिना भी, स्पष्ट रूप से यह देखा जा सकता है कि वह मोबत सिंह (प्रति. सा. 3) था जिसने रास्ते में भगत सिंह का शव पड़ा होने के बारे में अमोल सिंह (अभि. सा. 6) को सूचित किया था । महेन्द्र सिंह (अभि. सा. 3) और आखे सिंह (अभि. सा. 4) के साक्ष्य की मोबत सिंह (प्रति. सा. 3) और कोक सिंह रघुवंशी (प्रति. सा. 4) के साक्ष्य से पूरी तरह से संपुष्टि होती है । कोक सिंह रघुवंशी (प्रति. सा. 4) ने अपने साक्ष्य में यह कथन किया है कि जब वह अपनी मोटरसाइकिल पर बासोदा से बुधोर जा रहा था, तब प्रेम सिंह नामक व्यक्ति ने उसे रोका और उसे बताया कि भगत सिंह रास्ते में मृत पड़ा हुआ है । वह उसके पश्चात् गांव बुधोर गया और मोबत सिंह (प्रति. सा. 3) को यह सूचना दी । मोबत सिंह (प्रति. सा. 3) ने अपने साक्ष्य में यह कथन किया है कि उसे रास्ते में भगत सिंह के मृत पड़ा होने के बारे में कोक सिंह रघुवंशी (प्रति. सा. 4) द्वारा सूचित किया गया था । वह उसके पश्चात् भगत सिंह के मकान पर गया और इसके बारे में पराग सिंह, अमोल सिंह (अभि. सा. 6), मोकम सिंह, पूर्ण सिंह और आखे सिंह को सूचित किया । यह एक स्थिर विधि है कि प्रतिरक्षा साक्षी (साक्षियों) के साथ वैसा ही बर्ताव किया जाना चाहिए जैसा कि अभियोजन साक्षी (साक्षियों) के साथ किया जाए । इन साक्षियों के साक्ष्य से यह पूरी तरह स्पष्ट है कि अमोल सिंह (अभि. सा. 6) घटना को नहीं देख सकता था । अत: इस न्यायालय का यह निष्कर्ष है कि अमोल सिंह (अभि. सा. 6) का साक्ष्य "पूर्णत: अविश्वसनीय" साक्षी के प्रवर्ग के अंतर्गत आएगा । इसलिए उसके एकमात्र परिसाक्ष्य के आधार पर कोई दोषसिद्धि नहीं की जा सकती है । इस न्यायालय का यह निष्कर्ष है कि उच्च न्यायालय द्वारा चिकित्सा साक्ष्य से संपुष्टि की ईप्सा करना न्यायोचित नहीं था । चिकित्सा साक्ष्य से केवल यह सिद्ध किया जा सकता है कि मृत्यु मानववध थी । तथापि, इसका प्रयोग अमोल सिंह (अभि. सा. 6) के इस वृत्तांत की संपुष्टि के लिए नहीं किया जा सकता था कि उसने घटना को देखा था । मामले को इस दृष्टि से देखते हुए, इस न्यायालय का यह निष्कर्ष है कि अभियोजन पक्ष मामले को

युक्तियुक्त संदेह के परे साबित करने में असफल रहा है और इसलिए अभियुक्त संदेह का फायदा दिए जाने के हकदार हैं । (पैरा 17, 18, 19, 20, 21, 22 और 24)

निर्दिष्ट निर्णय

		पैरा
[2018]	(2018) 7 एस. सी. सी. 623 : **आंध्र प्रदेश राज्य** बनाम **पुल्लागुम्मी कासी रेड्डी कृष्णा रेड्डा उर्फ रामा कृष्णा रेड्डी और अन्य** ;	10
[2018]	(2018) 17 एस. सी. सी. 475 : **रूपिन्द्र सिंह संधु** बनाम **पंजाब राज्य और अन्य** ;	10
[2003]	(2003) 7 एस. सी. सी. 749 : **शकीला अब्दुल गफार खान (श्रीमती)** बनाम **वसंत रघुनाथ धोबले और एक अन्य** ;	10
[1957]	[1957] एस. सी. आर. 981 : **वाडीवेलु थेवर** बनाम **मद्रास राज्य** ।	8, 12

अपीली (दांडिक) अधिकारिता : 2021 की दांडिक अपील सं. 764 (इसके साथ 2021 की दांडिक अपील सं. 765).

2000 की दांडिक अपील सं. 317 में मध्य प्रदेश उच्च न्यायालय, ग्वालियर न्यायपीठ के तारीख 6 अगस्त, 2019 के निर्णय और आदेश के विरुद्ध अपील ।

अपीलार्थियों की ओर से सर्वश्री एस. नागामुथु, ज्येष्ठ अधिवक्ता, राज किशोर चौधरी, शकील अहमद, रिजवान अहमद, शिवम यादव और जतिन आनंद द्विवेदी

प्रत्यर्थी की ओर से सुश्री गीता चौधरी, उप महाधिवक्ता, श्री गोपाल झा, श्री अमित शर्मा और सुश्री हिमांशी शाक्या

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति बी. आर. गवई ने दिया ।

न्या. गवई – इन दोनों अपीलों अर्थात् महेन्द्र सिंह (अभियुक्त सं. 3), प्रीतम सिंह (अभियुक्त सं. 4) और शंभु सिंह (अभियुक्त सं. 9) द्वारा फाइल की गई 2021 की दांडिक अपील सं. 764 और लखन सिंह (अभियुक्त सं. 11) द्वारा फाइल की गई 2021 की दांडिक अपील सं. 765 में मध्य प्रदेश उच्च न्यायालय, ग्वालियर न्यायपीठ की खंड न्यायपीठ द्वारा वर्तमान अपीलार्थियों द्वारा फाइल की गई 2000 की दांडिक अपील सं. 317 को खारिज करते हुए और तद्द्वारा भारतीय दंड संहिता की धारा 148 तथा धारा 149 के साथ पठित धारा 302 के अधीन उनकी दोषसिद्धि को कायम रखते हुए और भारतीय दंड संहिता की धारा 148 के अधीन एक वर्ष का कठोर कारावास अधिरोपित करते हुए और भारतीय दंड संहिता की धारा 149 के साथ पठित 302 के अधीन आजीवन कारावास और 5,000/- रुपए के जुर्माना तथा जुर्माने के संदाय में व्यतिक्रम करने पर दो वर्ष के कठोर कारावास का दंडादेश अधिरोपित करते हुए तारीख 6 अगस्त, 2019 को सुनाए गए निर्णय को चुनौती दी गई है ।

2. वर्तमान अपीलों के तथ्य संक्षेप में निम्न प्रकार से हैं :

3. प्रस्तुत मामले में अन्वेषण अमोल सिंह (अभि. सा. 6) की मौखिक रिपोर्ट पर आरंभ किया गया था, जिसके आधार पर एक प्रथम इत्तिला रिपोर्ट, प्रदर्श पी-7, रजिस्ट्रीकृत की गई थी । अमोल सिंह (अभि. सा. 6) द्वारा प्रथम इत्तिला रिपोर्ट में यह कहा गया कि तारीख 12 जून, 1994 को जब वह बासोदा से वापस आ रहा था, तब वह लगभग 6.00 बजे अपराह्न में अपने भाई भगत सिंह (मृतक) से मिला था और आखे सिंह (अभि. सा. 4) से भी मिला था । उसने यह भी कहा कि वे नई सड़क से चाक राणापुर जाने वाली बस में सवार हुए । चाक राणापुर पहुंचने के पश्चात् वे अपने गांव बुधोर की ओर चले । लगभग 7.00 बजे अपराह्न में जब वे गांव रतनपुर पहुंचे, तो वह आगे-आगे चल रहा था, उसके पीछे-पीछे आखे सिंह (अभि. सा. 4) और आखे सिंह के पीछे-पीछे भगत सिंह चल रहा था, तब उसने अपने भाई भगत सिंह के

चिल्लाने की आवाज सुनी और जब वह मुड़ा तो उसने शंभू राजपूत को एक बल्लम से भगत सिंह पर प्रहार करते हुए देखा ; अभियुक्त संतोष, लखन, महेन्द्र और प्रीतम ने भी बल्लम से भगत सिंह पर हमला किया और शरीर के आगे के भाग पर क्षति कारित की ; अभियुक्त पद्म सिंह ने भगत सिंह पर एक रॉड से प्रहार किया ; अभियुक्त दशरथ सिंह ने भगत सिंह पर एक लाठी से उसके सिर पर हमला किया और तीन अन्य व्यक्तियों ने भगत सिंह पर लाठियों से प्रहार किया । उसने आगे यह भी कहा कि जब अभियुक्तों ने उस पर (शिकायतकर्ता-अमोल सिंह, अभि. सा. 6) और आखे सिंह (अभि. सा. 4) पर हमला करने के लिए पीछा किया, तो वे अपनी जान बचाने के लिए भागने लगे और गांव बुधोर पहुंचे तथा दीवान सिंह, पूर्ण सिंह, मोकम सिंह इत्यादि को घटना का वर्णन किया । उसने आगे यह भी कहा कि वे सभी घटनास्थल पर वापस आए और भगत सिंह को मृत पाया । उन्होंने वीर सिंह के ट्रैक्टर को किराए पर लिया और शव को पुलिस थाने लाए । उसका यह पक्षकथन था कि अभियुक्त व्यक्तियों ने मृतक पर पुरानी दुश्मनी को लेकर हमला किया था ।

4. अन्वेषण की समाप्ति के पश्चात्, प्रथम श्रेणी न्यायिक मजिस्ट्रेट, गंज बासोदा के न्यायालय में 11 अभियुक्तों के विरुद्ध आरोप पत्र फाइल किया गया, जिसने मामले को विद्वान् सेशन न्यायाधीश के न्यायालय, गंज बासोदा, जिला विदिशा, मध्य प्रदेश (जिसे इसमें इसके पश्चात् "विचारण न्यायालय" कहा गया है) को सुपुर्द कर दिया । सभी 11 अभियुक्तों के विरुद्ध भारतीय दंड संहिता, 1860 (जिसे इसमें इसके पश्चात् "भारतीय दंड संहिता" कहा गया है) की धारा 148 और धारा 149 के साथ पठित धारा 302 के अधीन दंडनीय अपराधों के लिए आरोप विरचित किए गए ।

5. विचारण की समाप्ति पर, विचारण न्यायालय ने भरत सिंह (अभियुक्त सं. 1), विश्वनाथ सिंह (अभियुक्त सं. 2), दशरथ सिंह (अभियुक्त सं. 5), पद्म सिंह (अभियुक्त सं. 6), बाना लाल **उर्फ** बाना सिंह (अभियुक्त सं. 8) और पप्पु **उर्फ** कुबेर सिंह (अभियुक्त सं. 10) को

तारीख 18 अप्रैल, 2000 के निर्णय द्वारा दोषमुक्त कर दिया । तथापि, विचारण न्यायालय ने तारीख 18 अप्रैल, 2000 के उसी निर्णय द्वारा महेन्द्र सिंह (अभियुक्त सं. 3), प्रीतम सिंह (अभियुक्त सं. 4), संतोष (अभियुक्त सं. 7), शंभू सिंह (अभियुक्त सं. 9) और लखन सिंह (अभियुक्त सं. 11 को भारतीय दंड संहिता की धारा 148 और धारा 149 के साथ पठित धारा 302 के अधीन दंडनीय अपराधों के लिए दोषसिद्ध किया और प्रत्येक को भारतीय दंड संहिता की धारा 148 के अधीन दंडनीय अपराध के लिए एक वर्ष के कठोर कारावास और भारतीय दंड संहिता की धारा 149 के साथ पठित धारा 302 के अधीन दंडनीय अपराध के लिए आजीवन कारावास और 5,000/- रुपए के जुर्माने का दंडादेश दिया । उन्हें जुर्माने के संदाय में व्यतिक्रम करने पर दो वर्ष का कठोर कारावास भुगतने का भी दंडादेश दिया गया ।

6. विचारण न्यायालय द्वारा तारीख 18 अप्रैल, 2000 को पारित किए गए निर्णय से व्यथित होकर सभी दोषसिद्ध और दंडादिष्ट अभियुक्तों ने मध्य प्रदेश उच्च न्यायालय के समक्ष एक अपील फाइल की । मध्य प्रदेश उच्च न्यायालय, ग्वालियर न्यायपीठ ने तारीख 6 अगस्त, 2019 के आक्षेपित निर्णय द्वारा अपील खारिज कर दी । इसलिए वर्तमान अपीलें फाइल की गई हैं ।

7. हमने अपीलार्थियों की ओर से हाजिर होने वाले विद्वान् ज्येष्ठ काउंसेल श्री एस. नागामुथु और प्रत्यर्थी-मध्य प्रदेश राज्य की ओर से हाजिर होने वाली विद्वान् उप महाधिवक्ता सुश्री अंकिता चौधरी को सुना ।

8. श्री एस. नागामुथु ने यह दलील दी कि अपीलार्थियों की संपूर्ण दोषसिद्धि अमोल सिंह (अभि. सा. 6) के एकमात्र परिसाक्ष्य पर आधारित है । विद्वान् ज्येष्ठ काउंसेल ने यह दलील दी कि महेन्द्र सिंह (अभि. सा. 3) और आखे सिंह (अभि. सा. 4) के साक्ष्य के साथ-साथ मोबत सिंह (प्रति. सा. 3) और कोक सिंह रघुवंशी (प्रति. सा. 4) के साक्ष्य से यह प्रकट होता है कि अमोल सिंह (अभि. सा. 6) ने घटना को नहीं देखा था । उन्होंने यह दलील दी कि अमोल सिंह (अभि. सा. 6) मृतक भगत सिंह का सगा भाई है और इसलिए उसके परिसाक्ष्य की संवीक्षा

अत्यधिक सावधानी, सतर्कतापूर्वक और चौकन्ना रहकर की जानी चाहिए । विद्वान् ज्येष्ठ काउंसेल ने **वाडीवेलु थेवर** बनाम **मद्रास राज्य**[1] वाले मामले में इस न्यायालय के निर्णय का अवलंब लिया । यह दलील दी गई कि उक्त साक्षी का परिसाक्ष्य "पूर्णत: अविश्वसनीय साक्षी" के प्रवर्ग के अंतर्गत आता है और इसलिए ऐसे साक्षी के परिसाक्ष्य के आधार पर दोषसिद्धि संधार्य नहीं हो सकती है । श्री नागामुथु ने यह भी दलील दी कि विद्वान् विचारण न्यायालय ने उसी साक्ष्य/परिसाक्ष्य के आधार पर अन्य पांच अभियुक्तों को दोषसिद्ध और दंडादिष्ट करते हुए छह अभियुक्तों को दोषमुक्त कर दिया था ।

9. श्री नागामुथु ने आगे यह दलील दी कि इस बारे में भी संदेह है कि क्या वर्तमान मामले में प्रथम इत्तिला रिपोर्ट एक सच्ची प्रथम इत्तिला रिपोर्ट है या नहीं । यह भी दलील दी गई कि विलंबित प्रथम इत्तिला रिपोर्ट से अभियोजन के पक्षकथन की विश्वसनीयता के बारे में संदेह उत्पन्न होता है ।

10. इसके विपरीत, विद्वान् उप महाधिवक्ता सुश्री अंकित चौधरी ने यह दलील दी कि विद्वान् विचारण न्यायालय तथा उच्च न्यायालय ने अमोल सिंह (अभि. सा. 6) के परिसाक्ष्य का ठीक ही अवलंब लिया है । यह दलील दी गई कि केवल इस कारण कि इस साक्षी के साक्ष्य में छुटपुट विरोधाभास/विसंगति प्रकट हुई थी, ऐसे साक्षी के परिसाक्ष्य की सत्यता पर अविश्वास करने का आधार नहीं हो सकता है । यह दलील दी गई कि "एक बात में मिथ्या तो सब में मिथ्या" (फाल्सस इन उनो फाल्सस इन ओमनीबस) का सूत्र भारत में स्वीकार नहीं किया जाता है । अत: उन्होंने यह दलील दी कि इस साक्षी के परिसाक्ष्य से सच्चाई का पता लगाने के लिए भूसे को गेहुं से अलग किया जाना चाहिए । उन्होंने अपनी दलीलों को पुष्ट करने के लिए **शकीला अब्दुल गफार खान (श्रीमती)** बनाम **वसंत रघुनाथ धोबले और एक अन्य**[2]**, आंध्र प्रदेश राज्य** बनाम **पुल्लागुम्मी कासी रेड्डी कृष्णा रेड्डा उर्फ रामा कृष्णा रेड्डी और**

---

[1] [1957] एस. सी. आर. 981.

[2] (2003) 7 एस. सी. सी. 749.

अन्य[1] और **रूपिन्द्र सिंह संधु** बनाम **पंजाब राज्य और अन्य**[2] वाले मामलों में इस न्यायालय के निर्णयों का अवलंब लिया ।

11. अभिलेख पर प्रस्तुत सामग्री से यह प्रकट होता है कि वर्तमान अपीलार्थियों की दोषसिद्धि मूलभूत रूप से अमोल सिंह (अभि. सा. 6) के परिसाक्ष्य पर आधारित है । मरणोत्तर परीक्षा रिपोर्ट की प्रकृति के चिकित्सा साक्ष्य से संपुष्टि की गई है ।

12. **वाडीवेलु थेवर** (उपर्युक्त) वाले मामले में इस न्यायालय के प्रख्यात निर्णय की निम्नलिखित मताभिव्यक्तियों को निर्दिष्ट करना उपयुक्त होगा :–

> "..... अत: हमारी राय में, यह एक सुदृढ़ और भली-भांति स्थिर विधि का नियम है कि न्यायालय का सरोकार किसी तथ्य को साबित या नासाबित करने के लिए आवश्यक साक्ष्य की गुणवत्ता से है न कि मात्रा से । साधारणतया, इस संदर्भ में मौखिक साक्ष्य को तीन प्रवर्गों में वर्गीकृत किया जा सकता है, अर्थात् :
>
> (1) पूर्णत: विश्वसनीय ।
>
> (2) पूर्णत: अविश्वसनीय ।
>
> (3) न तो पूर्णत: विश्वसनीय और न ही पूर्णत: अविश्वसनीय ।
>
> सबूत के प्रथम प्रवर्ग में, न्यायालय को दोनों में से किसी प्रकार के अपने निष्कर्ष पर पहुंचने में कोई कठिनाई नहीं होनी चाहिए – वह किसी एकमात्र साक्षी के परिसाक्ष्य के आधार पर दोषसिद्ध या दोषमुक्त कर सकता है, यदि यह साक्षी भर्त्सना या हितबद्धता, अक्षमता या कूटरचित साक्ष्य के संदेह से ऊपर पाया जाता है । दूसरे प्रवर्ग में, न्यायालय को अपने निष्कर्ष पर पहुंचने में समान रूप से कोई कठिनाई नहीं है । तीसरे प्रवर्ग के मामलों में ही न्यायालय को सतर्क रहना चाहिए और विश्वसनीय परिसाक्ष्य,

---

[1] (2018) 7 एस. सी. सी. 623.

[2] (2018) 17 एस. सी. सी. 475.

प्रत्यक्ष या पारिस्थितिक, द्वारा तात्विक विशिष्टियों में संपुष्टि के लिए प्रत्याशा की जानी चाहिए ।"

13. इस प्रकार यह देखा जा सकता है कि इस न्यायालय ने यह पाया कि साक्षी तीन प्रकार के होते हैं अर्थात् (क) पूर्णत: विश्वसनीय ; (ख) पूर्णत: अविश्वसनीय और (ग) न तो पूर्णत: विश्वसनीय और न ही पूर्णत: अविश्वसनीय । जब साक्षी "पूर्णत: विश्वसनीय" है, तो न्यायालय को कोई कठिनाई नहीं होनी चाहिए क्योंकि दोषसिद्धि या दोषमुक्ति ऐसे एकमात्र साक्षी के परिसाक्ष्य पर आधारित हो सकती है । समान रूप से, यदि न्यायालय यह पाता है कि साक्षी "पूर्णत: अविश्वसनीय" है, तो वहां कोई कठिनाई नहीं होगी क्योंकि न तो दोषसिद्धि और न ही दोषमुक्ति ऐसे साक्षी के परिसाक्ष्य पर आधारित हो सकती है । साक्षियों का केवल तीसरा प्रवर्ग ही है कि न्यायालय को सतर्क रहना चाहिए और विश्वसनीय परिसाक्ष्य, प्रत्यक्ष या पारिस्थितिक, द्वारा तात्विक विशिष्टियों में संपुष्टि की प्रत्याशा की जानी चाहिए ।

14. उच्च न्यायालय ने अमोल सिंह (अभि. सा. 6) के परिसाक्ष्य को तीसरे प्रवर्ग का होना पाया और डा. एस. एस. भार्गव (अभि. सा. 2) द्वारा की गई मरणोत्तर परीक्षा रिपोर्ट से संपुष्टि करते हुए दोषसिद्धि को कायम रखा । अत: हमें इस बारे में विचार करना होगा कि अमोल सिंह (अभि. सा. 6) का साक्ष्य/परिसाक्ष्य किस प्रवर्ग के अंतर्गत आएगा ।

15. अमोल सिंह (अभि. सा. 6) ने विस्तारपूर्वक घटना का ब्योरा दिया है । उसने यह कथन किया है कि घटना के दिन भगत सिंह और संतोष खावास नतेरण गए थे और वह बासोदा गया था । लगभग 4.45 बजे अपराह्न में वह अपने गांव के लिए चला । भगत सिंह गांव में जाने के लिए अपनी बस में बैठ गया । वे रतनपुर चाक बस स्टॉप पर उतरे और उसके पश्चात् बुधोर जा रहे थे । जब अपने गांव की ओर चल रहे थे तो लगभग 6.00 बजे अपराह्न में उसे भगत सिंह की जोर-जोर से यह चिल्लाने की आवाज सुनी कि मुझे मार दिया (मार डाला) । उसके पश्चात् उसने सभी अभियुक्तों को मृतक पर हमला करते हुए देखा । इस साक्षी ने यह कथन किया है कि जब अभियुक्त व्यक्ति उसके पीछे भागे, तो वह वहां से भाग गया और बुधोर में अपने घर पहुंचा । उसके

पश्चात्, उसने अपने भाइयों अर्थात् पराग सिंह, पूर्ण सिंह और मोकम सिंह को घटना का वर्णन किया । वे सभी घटनास्थल पर गए, जहां उन्होंने भगत सिंह को मृत पाया । उसके पश्चात्, पूर्ण सिंह ट्रैक्टर-ट्राली लाया और भगत सिंह को नेतरण पुलिस थाने लेकर गया । उसके पश्चात् उसने प्रथम इत्तिला दर्ज की । उसने यह भी कथन किया है कि पुरानी दुश्मनी अपराध कारित करने का हेतु थी ।

16. महेन्द्र सिंह (अभि. सा. 3) के परिसाक्ष्य को निर्दिष्ट करना सुसंगत होगा । उसने अपने साक्ष्य में यह कथन किया है कि वह अपने मकान में अपने चबूतरे (चौक) पर बैठा हुआ था । मोबत सिंह (प्रति. सा. 3) ने अमोल सिंह (अभि. सा. 6) को बताया कि भगत सिंह नगर चाक पर मृत पड़ा हुआ है । इसके पश्चात्, मोकम सिंह, अमोल सिंह (अभि. सा. 6), अरेज सिंह, पर्वत सिंह, हिम्मत सिंह, रतन, फुल्लु, गुल्लु, लालू भगत सिंह को देखने के लिए चाक पर गए और उनके साथ वह भी भगत सिंह को देखने के लिए गया था । गेंडा के मकान के सामने नगर चाक पर उन्होंने भगत सिंह को मृत अवस्था में पाया । उसके पश्चात्, अमोल सिंह (अभि. सा. 6) और मोकम सिंह भगत सिंह को नतेरण लेकर गए । इस साक्षी ने अपनी प्रतिपरीक्षा में यह स्वीकार किया कि मोबत सिंह (प्रति. सा. 3) ने उसकी मौजूदगी में अमोल सिंह (अभि. सा. 6) को बताया था कि भगत सिंह रास्ते में मृत पड़ा हुआ है । उसके पश्चात् अमोल सिंह (अभि. सा. 6) घबरा गया और रोने लगा । आखे सिंह (अभि. सा. 4) ने अपने परिसाक्ष्य में ऐसा ही कथन किया है ।

17. इस प्रकार, महेन्द्र सिंह (अभि. सा. 3) और आखे सिंह (अभि. सा. 4) के परिसाक्ष्य से, मोबत सिंह (प्रति. सा. 3) और कोक सिंह रघुवंशी (प्रति. सा. 4) के परिसाक्ष्य को निर्दिष्ट किए बिना भी, स्पष्ट रूप से यह देखा जा सकता है कि वह मोबत सिंह (प्रति. सा. 3) था जिसने रास्ते में भगत सिंह का शव पड़ा होने के बारे में अमोल सिंह (अभि. सा. 6) को सूचित किया था ।

18. महेन्द्र सिंह (अभि. सा. 3) और आखे सिंह (अभि. सा. 4) के साक्ष्य की मोबत सिंह (प्रति. सा. 3) और कोक सिंह रघुवंशी (प्रति. सा.

4) के साक्ष्य से पूरी तरह से संपुष्टि होती है । कोक सिंह रघुवंशी (प्रति. सा. 4) ने अपने साक्ष्य में यह कथन किया है कि जब वह अपनी मोटरसाइकिल पर बासोदा से बुधोर जा रहा था, तब प्रेम सिंह नामक व्यक्ति ने उसे रोका और उसे बताया कि भगत सिंह रास्ते में मृत पड़ा हुआ है । वह उसके पश्चात् गांव बुधोर गया और मोबत सिंह (प्रति. सा. 3) को यह सूचना दी ।

19. मोबत सिंह (प्रति. सा. 3) ने अपने साक्ष्य में यह कथन किया है कि उसे रास्ते में भगत सिंह के मृत पड़ा होने के बारे में कोक सिंह रघुवंशी (प्रति. सा. 4) द्वारा सूचित किया गया था । वह उसके पश्चात् भगत सिंह के मकान पर गया और इसके बारे में पराग सिंह, अमोल सिंह (अभि. सा. 6), मोकम सिंह, पूर्ण सिंह और आखे सिंह को सूचित किया ।

20. यह एक स्थिर विधि है कि प्रतिरक्षा साक्षी (साक्षियों) के साथ वैसा ही बर्ताव किया जाना चाहिए जैसा कि अभियोजन साक्षी (साक्षियों) के साथ किया जाए ।

21. इन साक्षियों के साक्ष्य से यह पूरी तरह स्पष्ट है कि अमोल सिंह (अभि. सा. 6) घटना को नहीं देख सकता था ।

22. अत: हमारा यह निष्कर्ष है कि अमोल सिंह (अभि. सा. 6) का साक्ष्य "पूर्णत: अविश्वसनीय" साक्षी के प्रवर्ग के अंतर्गत आएगा । इसलिए उसके एकमात्र परिसाक्ष्य के आधार पर कोई दोषसिद्धि नहीं की जा सकती है । हमारा यह निष्कर्ष है कि उच्च न्यायालय द्वारा चिकित्सा साक्ष्य से संपुष्टि की ईप्सा करना न्यायोचित नहीं था । चिकित्सा साक्ष्य से केवल यह सिद्ध किया जा सकता है कि मृत्यु मानववध थी । तथापि, इसका प्रयोग अमोल सिंह (अभि. सा. 6) के इस वृत्तांत की संपुष्टि के लिए नहीं किया जा सकता था कि उसने घटना को देखा था ।

23. जहां तक प्रत्यर्थी-राज्य की ओर से विद्वान् उप महाधिवक्ता की इस दलील का संबंध है कि अभियोजन पक्ष ने हेतुक को साबित किया है, यह स्थिर विधि है कि केवल इस कारण कि हेतु सिद्ध किया

गया है, दोषसिद्धि को कायम नहीं किया जा सकता है ।

24. मामले को इस दृष्टि से देखते हुए, हमारा यह निष्कर्ष है कि अभियोजन पक्ष मामले को युक्तियुक्त संदेह के परे साबित करने में असफल रहा है और इसलिए अभियुक्त संदेह का फायदा दिए जाने के हकदार हैं ।

25. परिणामतः, हम निम्नलिखित आदेश पारित करते हैं :

(i) ये अपीलें मंजूर की जाती हैं ।

(ii) मध्य प्रदेश उच्च न्यायालय की खंड न्यायपीठ द्वारा 2000 की दांडिक अपील सं. 317 में तारीख 6 अगस्त, 2000 को दिए गए आक्षेपित निर्णय तथा विद्वान् अपर सेशन न्यायाधीश, गंज बासोदा, जिला विदिशा, मध्य प्रदेश द्वारा 1996 के सेशन विचारण सं. 248 में तारीख 18 अप्रैल, 2000 को पारित किए गए निर्णय और आदेश अभिखंडित और अपास्त किए जाते हैं ।

(iii) अपीलार्थियों को उन पर आरोपित आरोपों से दोषमुक्त किया जाता है । यदि उनकी किसी अन्य मामले में आवश्यकता न हो, तो उन्हें तुरंत रिहा किए जाने का निदेश दिया जाता है ।

26. जमानत के लिए आवेदन सहित लंबित आवेदनों का उपरोक्त निबंधनों के अनुसार निपटारा हो जाएगा ।

अपीलें मंजूर की गईं ।

जस.

[2022] 2 उम. नि. प. 438

भारत भूषण गुप्ता

बनाम

प्रताप नारायण वर्मा और एक अन्य

[2022 की सिविल अपील सं. 4570]

16 जून, 2022

न्यायमूर्ति दिनेश महेश्वरी और न्यायमूर्ति विक्रम नाथ

न्यायालय फीस अधिनियम, 1870 (1870 का 7) – धारा 7(iv)(घ) – न्यायालय फीस – मूल्यांकन – वादी द्वारा वादांतर्गत संपत्ति से प्रतिवादियों की बेदखली और नुकसानी की वसूली के लिए आज्ञापक और प्रतिषेधात्मक व्यादेश के लिए वाद फाइल किया जाना – वादी द्वारा दावाकृत प्रत्येक अनुतोष के आधार पर न्यायालय फीस का संदाय किया जाना – वादांतर्गत संपत्ति के बाजार मूल्य के अनुसार न्यायालय फीस का संदाय न करने के आधार पर प्रतिवादियों द्वारा वाद नामंजूर करने के लिए आवेदन फाइल किया जाना – विचारण न्यायालय द्वारा आवेदन नामंजूर किया जाना – अपील में उच्च न्यायालय द्वारा वादांतर्गत संपत्ति का वादी द्वारा स्वीकृत बाजार मूल्य के अनुसार वाद का मूल्यांकन करने और समुचित अधिकारिता वाले न्यायालय में वाद फाइल किए जाने के लिए लौटाया जाना – संधार्यता – वाद का मूल्यांकन सदैव दावाकृत अनुतोष की प्रकृति पर निर्भर करता है और केवल इस कारण कि मुकदमे की विषयवस्तु स्थावर संपत्ति है, उस संपत्ति के बाजार मूल्य के आधार पर वाद का मूल्यांकन करने और तद्नुसार न्यायालय फीस का संदाय करने तथा न्यायालय की धन-संबंधी अधिकारिता का अवधारण करने के लिए निश्चायक नहीं कहा जा सकता है ।

इस मामले के तथ्य संक्षेप में इस प्रकार हैं कि वादी-अपीलार्थी ने आज्ञापक और प्रतिषेधात्मक व्यादेश तथा नुकसानी की वसूली के लिए सिविल न्यायाधीश, जिला दक्षिण-पश्चिम, द्वारका, नई दिल्ली के न्यायालय ने यह प्रकथन करते हुए वाद फाइल किया कि वह 250 वर्ग

गज माप के भूखंड सं. आर जैड-28, इंदिरा पार्क एक्सटेंशन, निकट हनुमान मंदिर, उत्तम नगर, नई दिल्ली का स्वामी है क्योंकि उसने इसे वर्ष 1981 में क्रय किया था । उसने यह भी प्रकथन किया कि वर्ष 1983-84 में उक्त भूखंड पर टिन शैड के तीन कमरे बनाए गए थे ; चूंकि भूखंड अनुपयोजित पड़ा हुआ था, इसलिए वादी के बड़े भाई प्रतिवादी सं. 1 (इस अपील में प्रत्यर्थी सं. 2) ने भवन ठेकेदार के रूप में अपने कार्य के संबंध में भंडारण के प्रयोजन के लिए भूखंड का उपयोग करने का अनुरोध किया । तद्नुसार, प्रतिवादी सं. 1 को उक्त भूखंड पर इच्छाधीन आनुग्रहिक अनुज्ञप्तिधारी (लाइसेंसी) के रूप में प्रविष्ट कराया गया । वर्ष 1989-90 में प्रतिवादी सं. 1 उसके पास आया और उससे पुन: अनुरोध किया कि प्रतिवादी सं. 2 (इस अपील में प्रत्यर्थी सं. 1) को, जो कथित रूप से प्रतिवादी सं. 1 के साथ मुंशी के रूप में कार्य कर रहा था, टिन शैड के दो कमरों में उस समय तक रहने की अनुज्ञा दी जाए जब तक वादी को स्वयं उनकी आवश्यकता नहीं पड़ती । तद्नुसार, प्रतिवादी सं. 2 को प्रश्नगत भूखंड के दो कमरों में यह समझ कर रहने के लिए अनुज्ञात किया गया कि वह इन्हें खाली कर देगा जब भी उसे ऐसा करने के लिए कहा जाएगा और उसे भी इच्छाधीन आनुग्रहिक अनुज्ञप्तिधारी (लाइसेंसी) के रूप में प्रविष्ट कराया गया था । बाद में जब उसने निर्माण करने की योजना बनाई और प्रतिवादियों को भूखंड से अपने सामान के साथ हटने के लिए कहा, तो उन्होंने ऐसा नहीं किया । उसने प्रतिवादियों की अनुज्ञप्तियों को समाप्त करते हुए और उन्हें भूखंड से स्वयं को हटाने के लिए कहते हुए विधिक सूचना तामील की । सूचना की तामीली के पश्चात् जब प्रश्नगत भूखंड पर गया, तो प्रतिवादियों को प्रश्नगत भूखंड पर निर्माण करने और द्वितीय पक्षकार के अधिकार सृजित करने की योजना बनाते हुए पाया जिससे कि वादी के विधिक अधिकारों को विफल किया जा सके । प्रतिवादियों द्वारा की जाने वाली बेइमानी को भांपकर वादी ने प्रतिवादियों के विरुद्ध आज्ञापक और प्रतिषेधात्मक व्यादेश के लिए और नुकसानी की वसूली के लिए भी प्रश्नगत वाद फाइल किया । वादी की प्रतिपरीक्षा के दौरान उससे वाद फाइल करने के समय पर वाद संपत्ति के बाजार मूल्य के संबंध में प्रश्न पूछा गया था, जो उसने लगभग 1.8 करोड़ रुपए बताया । पूर्वोक्त

उत्तर के पश्चात्, प्रतिवादी सं. 2 ने सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 7 नियम 11 के अधीन यह निवेदन करते हुए आवेदन प्रस्तुत किया कि संपत्ति के 1.8 करोड़ रुपए स्वीकृत मूल्य के अनुसार वाद विचारण न्यायालय की अधिकारिता में नहीं है और इसलिए वादपत्र को नामंजूर किया जाना चाहिए । इस आवेदन का वादी द्वारा सम्यक् रूप से विरोध किया गया और विचारण न्यायालय द्वारा यह अवेक्षा करने के पश्चात् इसे नामंजूर कर दिया गया कि वाद का मूल्यांकन वादपत्र में दावाकृत अनुतोषों के अनुसार किया गया है । पूर्वोक्त आदेश को प्रतिवादी सं. 2 द्वारा उच्च न्यायालय में चुनौती दी गई । उच्च न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि वादी ने स्वयं इस आशय का कथन किया था कि वाद फाइल करने के समय पर वाद संपत्ति का बाजार मूल्य लगभग 1.8 करोड़ रुपए था और इसलिए यह स्पष्ट है कि प्रत्येक अनुतोष के व्यादेश के लिए न्यायालय फीस और अधिकारिता के प्रयोजनार्थ वाद का 250/- रुपए मूल्य लगाना मनमाना है और वादी को वाद पत्र समुचित अधिकारिता के न्यायालय के समक्ष फाइल किए जाने के लिए लौटाए जाने का निदेश दिया । वादी द्वारा उच्च न्यायालय के निर्णय से व्यथित होकर उच्चतम न्यायालय में अपील फाइल की गई । उच्चतम न्यायालय द्वारा अपील मंजूर करते हुए,

अभिनिर्धारित – यह अति सामान्य बात है कि वादपत्र में दावा किए गए अनुतोष की प्रकृति ही वाद के मूल्यांकन के प्रश्न के लिए निश्चायक होती है । आवश्यक परिणाम के रूप में, बाजार मूल्य वाद मूल्यांकन के लिए केवल इस कारण निश्चायक नहीं बन जाता है कि स्थावर संपत्ति मुकदमे की विषयवस्तु है । मुकदमे में अंतर्वलित स्थावर संपत्ति के बाजार मूल्य की सुसंगतता दावा किए गए अनुतोष की प्रकृति पर निर्भर करते हुए हो सकती है किंतु अंततोगत्वा किसी विशिष्ट वाद का मूल्यांकन प्राथमिक रूप से दावा किए गए अनुतोष/अनुतोषों के प्रतिनिर्देश करके विनिश्चित किया जाना चाहिए । उच्च न्यायालय ने यहां तक कि प्रस्तुत मामले की संपूर्ण परिस्थितियों पर भी विचार नहीं किया था, जहां वादी ने आज्ञापक और प्रतिषेधात्मक व्यादेश के अनुतोषों का 250/- रुपए की नाममात्र दर पर मूल्यांकन किया था किंतु साथ ही साथ नुकसानी के

दावे के प्रतिनिर्देश करके वाद का एक लाख रुपए मूल्यांकन किया था और तद्नुसार न्यायालय फीस का संदाय किया था । अभिलेख को देखने से यह स्पष्ट है कि विधि के इस असंदिग्ध सिद्धांत के बावजूद कि आज्ञापक और प्रतिषेधात्मक व्यादेश के लिए ऐसे वाद का मूल्यांकन संपत्ति के बाजार मूल्य पर किया जाना अपेक्षित नहीं है, उच्च न्यायालय ने वर्तमान वाद के मूल्यांकन को "मनमाना" अभिनिर्धारित करने के लिए केवल संपत्ति के बाजार मूल्य का अवलंब लिया था । उच्च न्यायालय का ऐसा निष्कर्ष न तो विधि के अनुरूप है और न ही वर्तमान वाद की रचना और प्रकृति के अनुरूप है । (पैरा 9.1 और 10)

निर्दिष्ट निर्णय

		पैरा
[2013]	(2013) 139 डीआरजे 303 : **मुल्क राज खुल्लर** बनाम **अनिल कपूर और अन्य** ;	4.1, 4.2, 5.2, 9.4
[2012]	(2012) 5 एस. सी. सी. 370 : **मारिया मारगरिडा सेक्युइरा फर्नांडीस और अन्य** बनाम **इरास्मो जाक डि सेक्युइरा (मृत) विधिक प्रतिनिधियों की मार्फत** ;	5.1, 9.2, 9.5, 10
[2008]	(2008) 152 डीएलटी 363 : **पदमावती महाजन** बनाम **योगेन्द्र महाजन और अन्य** ;	9.5
[2005]	2005 का सीएम (एम) सं. 663, तारीख 18 जुलाई, 2016 को विनिश्चित : **मलिक मोहम्मद तनवीर** बनाम **उजमा मलिक और एक अन्य** ;	5.2
[2005]	(2005) 7 एस. सी. सी. 667 **जोसफ सेवरेंस और अन्य** बनाम **बेन्नी मेथ्यू और अन्य** ;	9.4

[1989] [1989] 2 उम. नि. प. 659 = (1988) 3 एस. सी. सी. 423 : **कमर्शियल एविएशन एंड ट्रैवल कंपनी और अन्य** बनाम **विमला पन्नालाल** ; 6.2, 11

[1985] [1985] 2 उम. नि. प. 773 = ए. आई. आर. 1985 एस. सी. 857 : **संत लाल जैन** बनाम **अवतार सिंह** ; 4.1, 5.1, 9.3, 9.4

[1978] ए. आई. आर. 1978 दिल्ली 114 : **महंत पुरुषोत्तम दास और अन्य** बनाम **हर नारायण और अन्य** ; 6.2, 12

[1964] ए. आई. आर. 1964 जे एंड के 99 : **मिल्का सिंह** बनाम **डायना** । 9.3

अपीली (सिविल) अधिकारिता : 2022 की सिविल अपील सं. 4570.

2018 के सीएम (एम) सं. 961 में दिल्ली उच्च न्यायालय द्वारा तारीख 18 मार्च, 2019 को पारित किए गए निर्णय के विरुद्ध अपील ।

अपीलार्थी की ओर से सर्वश्री डा. अरुण मोहन, ज्येष्ठ अधिवक्ता, (सुश्री) रुचिरा गुप्ता, (सुश्री) ऋचा पाराशर और दिव्यम अग्रवाल

प्रत्यर्थियों की ओर से श्री निशांत वर्मा

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति दिनेश महेश्वरी ने दिया ।

न्या. महेश्वरी – इजाजत दी गई ।

2. यह अपील आज्ञापक और प्रतिषेधात्मक व्यादेश के साथ-साथ वाद संपत्ति के उपयोग और अधिभोग के लिए नुकसानी की वसूली के लिए उस वाद से उद्भूत हुई है, जो वादी-अपीलार्थी द्वारा प्रतिवादी-प्रत्यर्थियों (पक्षकारों को इसमें इसके पश्चात् वाद में उनकी प्रास्थिति के अनुसार 'वादी' या 'प्रतिवादी सं. 1' या 'प्रतिवादी सं. 2' के रूप में भी निर्दिष्ट किया गया है) के विरुद्ध फाइल किया गया था, जिसमें विरोधी

प्रतिवादी (इस अपील में प्रत्यर्थी सं. 1) द्वारा वादी के साक्ष्य के दौरान विचारण न्यायालय की धन-संबंधी अधिकारिता के अभाव में वादपत्र को नामंजूर करने के लिए सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 के आदेश 7, नियम 11 के अधीन फाइल किए गए आवेदन पर विचारण न्यायालय द्वारा विचार किया गया था और तारीख 11 जुलाई, 2018 को नामंजूर कर दिया गया था किंतु उच्च न्यायालय ने अपने आक्षेपित निर्णय और आदेश में वादी द्वारा अपनी प्रतिपरीक्षा में वाद संपत्ति के मूल्य के विषय में किए गए कथन के प्रतिनिर्देश करके मामले में एक भिन्न दृष्टिकोण अपनाया और वादपत्र को समुचित अधिकारिता वाले न्यायालय में फाइल करने के लिए इसे लौटाने का आदेश दिया ।

2.1 प्रारंभ में यह मत व्यक्त किया जा सकता है कि इस मामले में अपील के लिए विशेष इजाजत की ईप्सा करते हुए याचिका की तारीख 26 अप्रैल, 2019 को परीक्षा करने के पश्चात् इस न्यायालय ने नोटिस जारी करते हुए उच्च न्यायालय के आक्षेपित आदेश के प्रवर्तन पर रोक लगा दी थी । दलीलों के दौरान यह बताया गया कि इस न्यायालय के रोकादेश के पश्चात् विषयांतर्गत वाद का विचारण अग्रसर हुआ और अंततोगत्वा तारीख 31 अगस्त, 2021 को वाद डिक्री किया गया और विरोधी प्रतिवादी (इस अपील में प्रत्यर्थी सं. 1) द्वारा फाइल की गई अपील लंबित है ।

3. प्रस्तुत परिस्थितियों में, हम मामले के सभी तथ्यात्मक पहलुओं का विस्तारपूर्वक उल्लेख करना प्रस्तावित नहीं करते हैं क्योंकि मामला कथित रूप से अपील में लंबित है और सभी सुसंगत पहलुओं को प्रथम अपील न्यायालय द्वारा परीक्षा किए जाने के लिए खुला छोड़ा जाना चाहिए । अत: इस अपील में चर्चा वाद के मूल्यांकन के संबंध में उच्च न्यायालय द्वारा पारित किए गए आदेश की केवल शुद्धता और विधिमान्यता तक सीमित है और इसके परे नहीं । इस प्रकार, वर्तमान प्रयोजन के लिए सुसंगत सीमा तक तथ्यात्मक पहलुओं का केवल संक्षिप्त उल्लेख करना पर्याप्त होगा ।

3.1 वादी-अपीलार्थी ने आज्ञापक और प्रतिषेधात्मक व्यादेश तथा नुकसानी की वसूली के लिए ज्येष्ठ सिविल न्यायाधीश, दक्षिण-पश्चिम

जिला द्वारका, नई दिल्ली के न्यायालय में 2016 का विषयांतर्गत वाद सं. 427419 फाइल किया था । वाद की प्रकृति वाद के शीर्षक में निर्दिष्ट है जो निम्न प्रकार से है :–

> "इंदिरा पार्क एक्सटेंशन, निकट हनुमान मंदिर, उत्तम नगर, नई दिल्ली-110059 में अवस्थित 252 वर्ग गज माप के भूखंड सं. आर जैड-28 के एक कमरे और खाली जगह (नक्शा योजना में 'क' और 'ख' के रूप में दर्शित) से प्रतिवादी सं. 1 को अपने सभी सामान के साथ हटने तथा प्रतिवादी सं. 2 को दो कमरों (नक्शा योजना में 'ग' और 'घ' के रूप में दर्शित) से अपने सभी सामान सहित हटने का निदेश देते हुए आज्ञापक व्यादेश के लिए और उन दोनों को उसमें किसी तृतीय पक्षकार के अधिकार सृजित करने या उस पर कोई निर्माण करने से निर्बंधित करने के लिए स्थायी प्रतिषेधात्मक व्यादेश के लिए और ब्याज तथा लागत सहित नुकसानी का संदाय करने के लिए वाद ।"

3.2 वादी ने यह प्रकथन किया था कि वह 250 वर्ग गज माप के भूखंड सं. आर जैड-28, इंदिरा पार्क एक्सटेंशन, निकट हनुमान मंदिर, उत्तम नगर, नई दिल्ली का स्वामी है क्योंकि उसने इसे वर्ष 1981 में क्रय किया था । वादी ने यह भी प्रकथन किया था कि उसने वर्ष 1983-84 में उक्त भूखंड पर टिन शैड के तीन कमरे बनाए थे ; चूंकि भूखंड अनुपयोजित पड़ा हुआ था इसलिए वादी के बड़े भाई प्रतिवादी सं. 1 (इस अपील में प्रत्यर्थी सं. 2) ने भवन ठेकेदार के रूप में अपने कार्य के संबंध में भंडारण के प्रयोजन के लिए भूखंड का उपयोग करने का अनुरोध किया । तद्नुसार, प्रतिवादी सं. 1 को उक्त भूखंड पर इच्छाधीन आनुग्रहिक अनुज्ञप्तिधारी (लाइसेंसी) के रूप में प्रविष्ट कराया गया । वादी ने आगे यह भी प्रकथन किया कि वर्ष 1989-90 में प्रतिवादी सं. 1 उसके पास आया और उससे पुन: अनुरोध किया कि प्रतिवादी सं. 2 (इस अपील में प्रत्यर्थी सं. 1) को, जो कथित रूप से प्रतिवादी सं. 1 के साथ मुंशी के रूप में कार्य कर रहा था, टिन शैड के दो कमरों में उस समय तक रहने की अनुज्ञा दी जाए जब तक वादी को स्वयं उनकी आवश्यकता नहीं पड़ती । वादी ने यह भी अभिकथन किया कि तद्नुसार प्रतिवादी सं. 2

को प्रश्नगत भूखंड पर के दो कमरों में यह समझ कर रहने के लिए अनुज्ञात किया गया था कि वह इन्हें खाली कर देगा जब भी उसे ऐसा करने के लिए कहा जाएगा और उसे भी इच्छाधीन आनुग्रहिक अनुज्ञप्तिधारी (लाइसेंसी) के रूप में प्रविष्ट कराया गया था ।

3.3 वादी ने यह अभिकथन किया कि बाद में जब उसने निर्माण करने की योजना बनाई और प्रतिवादियों को भूखंड से अपने सामान के साथ हटने के लिए कहा, तो उन्होंने ऐसा नहीं किया । वादी ने आगे यह भी अभिकथन किया कि प्रतिवादी सं. 2 ने प्रश्नगत भूखंड के सामने स्वयं अपना दो मंजिला मकान बनाया था और अर्जित किया था तथा फिर भी वह प्रश्नगत भूखंड से अपने सामान के साथ नहीं हटा । यह भी प्रकथन किया गया था कि प्रतिवादी सं. 1 ने वर्ष 2005 से ठेकेदार के रूप में कार्य करना बंद कर दिया था तथा और आगे भूखंड की आवश्यकता नहीं थी किंतु बार-बार आश्वासन देने के बावजूद उसने भी अपनी भवन सामग्री सहित स्वयं को नहीं हटाया ।

3.4 ऊपर कथित पृष्ठभूमि के प्रतिनिर्देश करते हुए, वादी ने यह प्रकथन किया कि उसने प्रतिवादियों की अनुज्ञप्तियों को समाप्त करते हुए और उन्हें भूखंड से स्वयं को हटाने के लिए कहते हुए तारीख 9 अगस्त, 2016 को विधिक सूचना तामील की थी और उसमें सूचना की अवधि की समाप्ति के पश्चात् प्रश्नगत भूखंड के अप्राधिकृत उपयोग और अधिभोग के लिए नुकसानी का दावा करने के अपने अधिकार का भी उल्लेख किया था । वादी ने अपनी यह शिकायत बताई थी कि सूचना की तामीली के पश्चात् जब वह तारीख 25 सितंबर, 2016 को प्रश्नगत भूखंड पर गया, तो प्रतिवादियों को प्रश्नगत भूखंड पर निर्माण करने और द्वितीय पक्षकार के अधिकार सृजित करने की योजना बनाते हुए पाया जिससे कि वादी के विधिक अधिकारों को विफल किया जा सके । प्रतिवादियों द्वारा की जाने वाली बेइमानी को भांपकर वादी ने प्रतिवादियों के विरुद्ध आज्ञापक और प्रतिषेधात्मक व्यादेश के लिए और नुकसानी की वसूली के लिए भी प्रश्नगत वाद फाइल किया । वाद हेतुक, विचारण न्यायालय की अधिकारिता और वाद मूल्यांकन तथा न्यायालय फीस, जैसा कि वादपत्र के पैरा 10 से 12 में अंतर्विष्ट है, से संबंधित

वादपत्र में किए गए सुसंगत प्रकथन निम्न प्रकार से हैं :–

"10. यह कि सूचना की प्राप्ति की तारीख से 15 दिनों की अवधि की समाप्ति पर वादी का प्रतिवादियों के विरुद्ध तारीख 27 अगस्त, 2016 को और ऊपर उल्लिखित अनुसार तारीख 25 सितंबर, 2016 को भी वाद हेतुक प्रोद्भूत हुआ था ।

11. यह कि इस माननीय न्यायालय को वर्तमान वाद का विचारण करने की क्षेत्रीय तथा धन-संबंधी अधिकारिता है ।

12. यह कि न्यायालय फीस और अधिकारिता के प्रयोजन के लिए व्यादेश हेतु प्रत्येक अनुतोष के लिए मूल्य 250/- रुपए और नुकसानी के लिए एक लाख रुपए नियत किया जाता है और 3443.80 रुपए मूल्य की न्यायालय फीस संलग्न है ।"

3.5 वादी ने निम्नलिखित निबंधनों के अनुसार अनुतोषों का दावा किया था :–

"आपके समक्ष अति विनम्रतापूर्वक निम्नलिखित के लिए डिक्री पारित करने की प्रार्थना की जाती है –

i. प्रतिवादी सं. 1 को इंदिरा पार्क एक्सटेंशन, निकट हनुमान मंदिर, उत्तम नगर, नई दिल्ली-110059 में अवस्थित 252 वर्ग गज के भूखंड सं. आर जैड-28 के एक कमरे और खाली जगह (नक्शा योजना में 'क' और 'ख' के रूप में दर्शित) से अपने सभी सामान के साथ हटने का निदेश देते हुए आज्ञापक व्यादेश ;

ii. प्रतिवादी सं. 2 को इंदिरा पार्क एक्सटेंशन, निकट हनुमान मंदिर, उत्तम नगर, नई दिल्ली-110059 में अवस्थित 252 वर्ग गज के भूखंड सं. आर जैड-28 के दो कमरों (नक्शा योजना में 'ग' और 'घ' के रूप में दर्शित) से अपने सभी सामान सहित हटने का निदेश देते हुए आज्ञापक व्यादेश ;

iii. प्रतिवादी सं. 1 और 2 को इसमें किसी तृतीय पक्षकार के अधिकार सृजित करने या उस पर कोई निर्माण करने से

निर्बंधित करने के लिए स्थायी प्रतिषेधात्मक व्यादेश ;

iv. तारीख 28 अगस्त, 2016 से 27 सितंबर, 2016 तक की अवधि के लिए एक लाख रुपए की नुकसानी की वसूली ; और

v. तारीख 28 सितंबर, 2016 से प्रतिवादियों द्वारा वास्तव में परिसर को खाली किए जाने तक प्रति माह एक लाख रुपए की दर से अतिरिक्त नुकसानी की ब्याज तथा मुकदमेबाजी की लागत सहित वसूली ।"

3.6 प्रतिवादी सं. 2 (इस अपील में प्रत्यर्थी सं. 1) ने वाद का, अन्य बातों के साथ-साथ, इन अभिकथनों के साथ विरोध किया कि वादी का वाद संपत्ति में कोई अधिकार नहीं है और वाद मिथ्या और गढ़े गए दस्तावेजों पर आधारित है और यह भी कि वादी द्वारा वाद अपने भाई, प्रतिवादी सं. 1 की मौनानुकूलता में वाद संपत्ति को मात्र हड़पने के लिए फाइल किया गया है । प्रतिवादी सं. 2 ने यह भी अभिकथन किया कि उसका प्रश्नगत भूखंड पर प्रतिकूल और निर्विवाद कब्जा है ।

3.7 प्रतिवादी सं. 2 ने यह भी अभिकथन किया कि वाद फाइल करने के लिए कोई वाद हेतुक नहीं है, और मूल्यांकन के संबंध में प्रतिवादी सं. 2 ने निम्नलिखित आशय के प्रकथन किए :–

"5. यह कि उस वाद संपत्ति का वाद मूल्य 2.5 करोड़ रुपए से अधिक है, जिसके लिए वादी कब्जे का दावा कर रहा है, इसलिए इस माननीय न्यायालय को वर्तमान वाद का विचारण, ग्रहण और न्यायनिर्णयन करने की कोई धन-संबंधी अधिकारिता नहीं है ।"

3.8 इस मामले में जब पक्षकार विचारण के लिए गए तो तारीख 28 नवंबर, 2017 को निम्नलिखित विवाद्यक विरचित किए गए थे (ये विवाद्यक तारीख 31 अगस्त, 2000 के निर्णय की प्रति से उद्धृत किए गए हैं, जो अतिरिक्त दस्तावेज फाइल करने की अनुज्ञा के लिए आवेदन के साथ अभिलेख पर प्रस्तुत किए गए थे) :–

"I. क्या वाद वर्तमान प्ररूप में संधार्य है ? ओपीडी

II. क्या वादी प्रतिवादी सं. 1 के विरुद्ध आज्ञापक व्यादेश की

डिक्री का हकदार है, जैसी कि प्रार्थना खंड (i) में प्रार्थना की गई है ? ओपीपी

III. क्या वादी प्रतिवादी सं. 2 के विरुद्ध आज्ञापक व्यादेश की डिक्री के लिए हकदार है, जैसी कि प्रार्थना खंड (ii) में प्रार्थना की गई है ? ओपीपी

IV. क्या वादी प्रतिवादी सं. 1 के विरुद्ध स्थायी व्यादेश की डिक्री के लिए हकदार है, जैसी कि प्रार्थना खंड (iii) में प्रार्थना की गई है ? ओपीपी

V. क्या वादी मुकदमेबाजी की लागत सहित नुकसानी की वसूली की डिक्री के लिए हकदार है, जैसी कि प्रार्थना खंड (iv) और (v) में प्रार्थना की गई है ? ओपीपी

VI. अनुतोष ।"

3.8.1 हम, इसी बीच, यह भी उल्लेख कर सकते हैं कि वाद में बाद के प्रक्रम पर प्रतिवादी सं. 2 ने अतिरिक्त विवाद्यक विरचित करने के लिए आदेश की ईप्सा करते हुए सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 14, नियम 5 के अधीन एक आवेदन भी दिया था । विचारण न्यायालय द्वारा इस आवेदन को तारीख 31 अगस्त, 2021 के एक अलग आदेश द्वारा खारिज कर दिया गया था ।

3.9 वर्तमान अपील को फाइल करने से संबंधित कार्यवाहियों पर वापस आते हैं । यह पाया गया है कि तारीख 20 मार्च, 2018 को वादी की प्रतिपरीक्षा के दौरान उससे वाद फाइल करने के समय पर वाद संपत्ति के बाजार मूल्य के संबंध में प्रश्न पूछा गया था, जो उसने लगभग 1.8 करोड़ रुपए बताया था । उक्त प्रश्न और इसका उत्तर नीचे इस प्रकार है :–

"प्रश्न - वाद फाइल करने के समय पर वाद संपत्ति का बाजार मूल्य क्या था ?

उत्तर - वाद फाइल करने के समय पर वाद संपत्ति का अनुमानित मूल्य लगभग 1.8 करोड़ रुपए था ।"

3.10 पूर्वोक्त उत्तर के पश्चात्, प्रतिवादी सं. 2 ने सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 7, नियम 11 के अधीन यह निवेदन करते हुए एक आवेदन प्रस्तुत किया कि संपत्ति के 1.8 करोड़ रुपए स्वीकृत मूल्य के अनुसार वाद विचारण न्यायालय की अधिकारिता में नहीं है और इसलिए वादपत्र को नामंजूर किया जाना चाहिए । इस आवेदन का वादी द्वारा सम्यक् रूप से विरोध किया गया और विचारण न्यायालय द्वारा यह अवेक्षा करने के पश्चात् इसे नामंजूर कर दिया गया कि वाद का मूल्यांकन वादपत्र में दावाकृत अनुतोषों के अनुसार किया गया है । विचारण न्यायालय ने निम्नलिखित मत व्यक्त किया था और निष्कर्ष निकाला था :–

> "4. सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 7, नियम 11 के अधीन आवेदन का विनिश्चय करने के प्रयोजनार्थ केवल वादपत्र पर विचार किया जाना चाहिए और प्रतिवादी के अभिवचनों या पक्षकारों द्वारा प्रस्तुत किए गए साक्ष्य पर विचार नहीं किया जा सकता । इसके अतिरिक्त, वादी द्वारा फाइल किए गए वादपत्र पर विचार करने पर इस न्यायालय का यह मत है कि इससे एक वाद हेतुक प्रकट होता है । इसके अतिरिक्त, वादपत्र का वाद में दावाकृत अनुतोषों के अनुसार उचित रूप से मूल्यांकन किया गया है । अत: सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 7, नियम 11 के अधीन प्रतिवादी सं. 2 का आवेदन कायम रखने योग्य नहीं पाया गया है और इसे 2,000/- रुपए की लागत के साथ खारिज किया जाता है, जिसे डीएलएसए के पास जमा किया जाएगा ।"

4. पूर्वोक्त आदेश को प्रतिवादी सं. 2 द्वारा उच्च न्यायालय में चुनौती दी गई । संबंधित पक्षकारों द्वारा विस्तृत दलीलें दी गईं, जिन पर उच्च न्यायालय द्वारा तारीख 18 मार्च, 2019 के अपने विस्तृत आक्षेपित आदेश में, उद्धृत विनिश्चयों से लिए गए विस्तृत उद्धरणों सहित विचार किया गया था ।

4.1 उच्च न्यायालय ने तारीख 3 अक्तूबर, 2013 को विनिश्चित 2011 के सीएस (ओएस) सं. 1855 में **मुल्क राज खुल्लर** बनाम **अनिल**

कपूर और अन्य[1] वाले मामले सहित अपने पूर्ववर्ती विनिश्चयों तथा **संत लाल जैन** बनाम **अवतार सिंह**[2] वाले मामले में इस न्यायालय के विनिश्चय पर भी विचार किया था । उच्च न्यायालय ने, अन्य बातों के साथ-साथ, यह मत व्यक्त किया कि **संत लाल जैन** (उपर्युक्त) वाले मामले में के विनिश्चय के निबंधनों के अनुसार, आज्ञापक व्यादेश के लिए वाद अभिकथित अनुज्ञप्तियों की समाप्ति के बहुत अधिक विलंब के पश्चात् फाइल नहीं किया गया था । उच्च न्यायालय ने यह भी मत व्यक्त किया कि यद्यपि विरोधी प्रतिवादी ने लाइसेंस के तथ्य से इनकार किया था किंतु ऐसे सभी पहलुओं को केवल विचारण में अवधारित किया जा सकता था ।

4.2 उच्च न्यायालय ने आगे यह भी मत व्यक्त किया कि वर्तमान मामले के तथ्य **मुल्क राज खुल्लर** (उपर्युक्त) वाले मामले के तथ्यों के सम-विषयक हैं और परिणामस्वरूप आज्ञापक व्यादेश के लिए वाद समुचित रूप से संस्थित किया गया था, जहां वादी को न्यायालय फीस और अधिकारिता के प्रयोजनार्थ वाद का मूल्यांकन करने का विवेकाधिकार था । इस सीमा तक, उच्च न्यायालय ने विरोधी प्रतिवादी की दलीलों को स्वीकार करने में अपनी अनिच्छा व्यक्त की किंतु इसके पश्चात् **मुल्क राज खुल्लर** (उपर्युक्त) वाले मामले में की इन मताभिव्यक्तियों का उल्लेख किया कि उसमें इस आशय का कोई तर्क नहीं दिया गया था कि आज्ञापक व्यादेश के लिए वाद का मूल्यांकन एक बेतुकी रीति में किया गया था । उद्धृत विनिश्चय से ऐसे एक पैरा को उद्धृत करने के पश्चात् उच्च न्यायालय ने वादी द्वारा वाद संपत्ति का वाद फाइल करने के समय पर लगभग 1.8 करोड़ रुपए बाजार मूल्य होने के बारे में किए गए कथन को निर्दिष्ट किया और इस कारण से उच्च न्यायालय एकाएक इस निष्कर्ष पर पहुंचा कि न्यायालय फीस और अधिकारिता के प्रयोजनार्थ प्रत्येक अनुतोष के लिए व्यादेश हेतु वाद का मूल्यांकन 250/- रुपए करना पूरी तरह से मनमाना था ।

---

[1] (2013) 139 डीआरजे 303.

[2] [1985] 2 उम. नि. प. 773 = ए. आई. आर. 1985 एस. सी. 857.

4.3 पूर्वोल्लिखित चर्चा और तर्काधार के साथ उच्च न्यायालय ने वादपत्र को वापस करने का आदेश दिया, जिससे इसे मूल्यांकन के अनुसार समुचित न्यायालय में फाइल किया जा सके । उच्च न्यायालय के तर्काधार और निष्कर्ष के संबंध में आक्षेपित आदेश से निम्नलिखित सुसंगत उद्धरणों को उपयोगी रूप से उद्धृत किया जा सकता है :–

> "17. तथापि, इस बात की अनदेखी नहीं की जा सकती है कि प्रत्यर्थी सं. 1 की ओर से मुल्क राज खुल्लर **बनाम** अनिल कपूर और अन्य (उपर्युक्त) वाले मामले में इस न्यायालय के निर्णय का जो अवलंब लिया गया है, यद्यपि तथ्यों के अनुसार वह वास्तव में प्रस्तुत मामले के तथ्यों के सम-विषयक है, इसके परिणामस्वरूप फिलहाल वाद को एक आज्ञापक व्यादेश के लिए फाइल किया गया वाद और इस प्रकार समुचित रूप से संस्थित और इस मामले में प्रत्यर्थी सं. 1 को न्यायालय फीस और अधिकारिता के प्रयोजनार्थ वाद का मूल्यांकन करने के लिए एक विवेकाधिकार प्रदान करना अभिनिर्धारित किया जाना होगा, तो भी इस बात की अनदेखी नहीं की जा सकती है कि मुल्क राज खुल्लर **बनाम** अनिल कपूर और अन्य (उपर्युक्त) वाले अवलंब लिए गए मामले के उक्त निर्णय में स्वयं इसके पैरा 30 में इस आशय का मत व्यक्त किया गया है –
>
> > 'यह उल्लेख करते हुए कोई दलील नहीं दी गई है कि वादी ने आज्ञापक व्यादेश के लिए वाद का मूल्यांकन किसी बेतुकी रीति में नहीं किया था । मैं यह अभिनिर्धारित करता हूं कि वादी ने न्यायालय फीस और अधिकारिता के प्रयोजनार्थ वाद का उचित रूप से मूल्यांकन किया था ।'
>
> 18. प्रस्तुत मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में, वादी का परिसाक्ष्य अभिलिखित किया गया है और वादी ने स्वयं इस आशय का कथन किया था कि वाद फाइल करने के समय पर वाद संपत्ति का बाजार मूल्य लगभग 1.8 करोड़ रुपए था । इस प्रकार, यह स्पष्ट है कि प्रत्येक अनुतोष के व्यादेश के लिए न्यायालय फीस और अधिकारिता के प्रयोजनार्थ वाद का मूल्य 250/- रुपए लगाना पूरी तरह से मनमाना है ।

19. स्वयं वादी के परिसाक्ष्य के अनुसार संपत्ति का इस प्रकार, 1.8 करोड़ रुपए मूल्यांकन को देखते हुए विद्वान् विचारण न्यायालय द्वारा उक्त वाद के वादी को वादपत्र समुचित अधिकारिता के न्यायालय के समक्ष फाइल किए जाने के लिए लौटाए जाने का निदेश दिया जाता है ।

20. वह विद्वान् विचारण न्यायालय, जो मामले पर विचार करेगा और विद्वान् विचारण न्यायालय द्वारा वादपत्र के लौटाने की तारीख से 30 दिनों के भीतर उचित मूल्यांकन के पश्चात् वादपत्र संस्थित किया जाता है, उस प्रक्रम से कार्यवाहियों को इसमें अभिलिखित किए गए सभी साक्ष्य के साथ इसे मामले में ग्रहण किए जाने के लिए अग्रसर करेगा, जहां विद्वान् विचारण न्यायालय के समक्ष अंतिम बार कार्यवाहियां नियत की गई थीं ।

21. तद्नुसार, इस याचिका का निपटारा किया जाता है ।"

5. उच्च न्यायालय द्वारा इस प्रकार पारित किए गए आदेश को चुनौती देने की ईप्सा करते हुए अपीलार्थी की ओर से विद्वान् ज्येष्ठ काउंसेल ने विरोधी प्रतिवादी-प्रत्यर्थी के पक्षकथन का खंडन करते हुए मामले के गुणागुण के संबंध में विस्तृत दलीलें दीं । गुणागुण से संबंधित इन दलीलों पर यहां कोई टिप्पणी करना अपेक्षित नहीं है क्योंकि, जैसाकि पहले उल्लेख किया गया है, विचारण न्यायालय के निर्णय और डिक्री के विरुद्ध अपील लंबित है और गुणागुण के सभी सुसंगत पहलुओं की प्रथम अपील न्यायालय द्वारा परीक्षा करने के लिए छोड़ा जाना आवश्यक है ।

5.1 अपीलार्थी की ओर से विद्वान् काउंसेल ने व्यादेश के अनुतोषों की ईप्सा करते हुए, विशिष्ट रूप से एक अनुज्ञप्तिधारी के मामले में, वाद की संधार्यता के संबंध में भी विस्तृत दलीलें दीं । विद्वान् काउंसेल ने यह दलील दी कि कब्जे के लिए हक संबंधी वाद और किसी अनुज्ञप्तिधारी के विरुद्ध अनुज्ञप्ति के अवसान के पश्चात् परिसर से स्वयं को और अपने सामान को हटाने के लिए आज्ञापक व्यादेश के लिए वाद के बीच फर्क है । विद्वान् काउंसेल ने विशिष्ट रूप से **मारिया**

मारगरिडा सेक्युइरा फर्नांडीस और अन्य बनाम **इरास्मो जाक डि सेक्युइरा (मृत) विधिक प्रतिनिधियों की मार्फत**[1] और **संत लाल जैन** (उपर्युक्त) वाले मामलों में के विनिश्चयों को विनिर्दिष्ट किया । इस विषय में भी यह पाया गया है कि आक्षेपित आदेश में उच्च न्यायालय ने वादी-अपीलार्थी के विरुद्ध वाद की संधार्यता के प्रश्न का विनिश्चय नहीं किया है ।

5.2 मूल्यांकन के संबंध में, अपीलार्थी की ओर से विद्वान् काउंसेल ने न्यायालय फीस अधिनियम, 1870 (जिसे इसमें इसके पश्चात् 'न्यायालय फीस अधिनियम' भी कहा गया है) की धारा 7(iv)(घ) को निर्दिष्ट किया और यह दलील दी कि प्रतिवादियों को अनुज्ञप्ति की समाप्ति के पश्चात् सामान हटाने और परिसर को खाली करने के लिए निदेश देने के लिए आज्ञापक व्यादेश का अनुतोष संधार्य है और तद्नुसार व्यादेश के अनुतोषों के प्रयोजनार्थ वर्तमान वाद का मूल्यांकन न्यायालय फीस अधिनियम की धारा 7(iv)(घ) के निबंधनों के अनुसार किया गया है और इसकी धारा 7(v) के अधीन मूल्यांकन किया जाना अपेक्षित नहीं है । विद्वान् काउंसेल के अनुसार, इस स्थिति में वर्तमान वाद कम मूल्यांकित किया गया नहीं समझा जा सकता है और व्यादेश के लिए ऐसे किसी वाद का मूल्यांकन प्रश्नगत संपत्ति के बाजार मूल्य के अनुसार करना विधि में अपेक्षित नहीं है । **संत लाल जैन** (उपर्युक्त) वाले मामले में इस न्यायालय के विनिश्चय के अतिरिक्त, विद्वान् काउंसेल ने दिल्ली उच्च न्यायालय के विभिन्न विनिश्चयों को निर्दिष्ट किया जिनमें **मुल्क राज खुल्लर** (उपर्युक्त) और **मलिक मोहम्मद तनवीर** बनाम **उजमा मलिक और एक अन्य**[2] वाले मामलों में के विनिश्चय भी हैं ।

6. इसके विपरीत, प्रतिवादी-प्रत्यर्थी सं. 1 की ओर से विद्वान् काउंसेल ने मामले के गुणागुण के संबंध में इन प्रकथनों के प्रतिनिर्देश करके कई दलीलें देने का भी प्रयत्न किया कि विरोधी प्रतिवादी का पिछले 30 वर्षों से वाद संपत्ति पर निर्विवाद कब्जा है । जैसा कि मत

---

[1] (2012) 5 एस. सी. सी. 370.

[2] 2005 का सीएम (एम) सं. 663, तारीख 18 जुलाई, 2016 को विनिश्चित ।

व्यक्त किया गया है, मामले के गुणागुण से संबंधित इन पहलुओं को किसी टिप्पणी के बिना डिक्री के विरुद्ध लंबित अपील पर कार्यवाही करने वाले न्यायालय द्वारा उन पर समुचित रूप से विचार करने के लिए छोड़ा जा रहा है ।

6.1 वाद के मूल्यांकन के संबंध में विद्वान् काउंसेल ने यह दलील दी कि आक्षेपित आदेश में भारत के संविधान के अनुच्छेद 136 के अधीन हस्तक्षेप करने की आवश्यकता नहीं है और इसका कारण यह है कि वाद संपत्ति का बाजार मूल्य स्वीकृत रूप से 1.8 करोड़ रुपए से अधिक था और ज्येष्ठ सिविल न्यायाधीश, द्वारका, नई दिल्ली की धन-संबंधी अधिकारिता केवल तीन लाख रुपए थी और इसलिए उक्त न्यायालय द्वारा वाद का विचारण नहीं किया जा सकता था ।

6.2 विद्वान् काउंसेल के अनुसार, वाद का उचित रूप से मूल्यांकन नहीं किए जाने के कारण वादपत्र को उचित मूल्यांकन करने के पश्चात् समुचित न्यायालय में प्रस्तुत करने के लिए लौटाए जाने का आदेश ठीक ही दिया गया है । विद्वान् काउंसेल ने **कमर्शियल एविएशन एंड ट्रैवल कंपनी और अन्य** बनाम **विमला पन्नालाल**[1] वाले मामले में इस न्यायालय के विनिश्चय को यह दलील देने के लिए निर्दिष्ट किया कि यहां तक कि न्यायालय फीस अधिनियम की धारा 7(iv)(घ) के निबंधनों के अनुसार भी कोई मनमाना मूल्यांकन नहीं किया जा सकता है । यह भी दलील दी गई कि वादपत्र का अर्थान्वयन करने के लिए उसके सार की परीक्षा की जानी चाहिए, जैसा कि **महंत पुरुषोत्तम दास और अन्य** बनाम **हर नारायण और अन्य**[2] वाले मामले में दिल्ली उच्च न्यायालय की पूर्ण न्यायपीठ द्वारा मत व्यक्त किया गया है ।

6.3 प्रत्यर्थी सं. 1 की ओर से विद्वान् काउंसेल ने यह दलील दी कि प्रस्तुत मामले में वादी वस्तुत: आज्ञापक व्यादेश की आड़ में वाद संपत्ति के कब्जे की ईप्सा कर रहा है ; यह कि प्रत्यर्थी सं. 1 का 12 वर्षों से अधिक समय से वाद संपत्ति पर निर्विवाद कब्जा है ; और

---

[1] [1989] 2 उम. नि. प. 659 = (1988) 3 एस. सी. सी. 423.

[2] ए. आई. आर. 1978 दिल्ली 114.

अपीलार्थी के स्वामित्व तथा अनुज्ञप्ति देने वाले और अनुज्ञप्तिधारी के संबंध को विरोधी प्रतिवादी द्वारा कभी स्वीकार नहीं किया गया है । अत: विद्वान् काउंसेल के अनुसार, आज्ञापक व्यादेश के लिए वर्तमान वाद संधार्य नहीं है और अपीलार्थी आज्ञापक व्यादेश की आड़ में कब्जे के प्रत्युद्धरण की ईप्सा कर रहा है जबकि ऐसा अनुतोष विचारण न्यायालय की अधिकारिता के परे है । यह भी दलील दी गई कि प्रत्यर्थी सं. 1 द्वारा आक्षेप करने के बावजूद विचारण न्यायालय ने अधिकारिता के प्रश्न पर विवाद्यक विरचित नहीं किया था और यहां तक कि अतिरिक्त विवाद्यक विरचित करने की प्रार्थना को भी गलत रूप से नामंजूर कर दिया था ।

7. परस्पर विरोधी दलीलों पर गहराई से विचार करने के पश्चात् और लागू होने वाली विधि के संबंध में अभिलेख पर प्रस्तुत की गई सामग्री की परीक्षा करने के पश्चात् हमारा स्पष्ट रूप से यह मत है कि तारीख 18 मार्च, 2019 का आक्षेपित आदेश, जो वादी द्वारा वाद संपत्ति के मूल्य पर अपनी प्रतिरक्षा में किए गए कथन के प्रतिनिर्देश करके उच्च न्यायालय द्वारा पारित किया गया है, विधि के अनुरूप नहीं है और संधार्य नहीं रखा जा सकता है ।

8. परस्पर विरोधी दलीलों पर विचार करते हुए, न्यायालय फीस अधिनियम की धारा 7(iv)(घ) में यथा अंतर्विष्ट उपबंधों का उल्लेख करना सुसंगत होगा, जो निम्न प्रकार से हैं :–

> "7. **कतिपय वादों में संदेय फीसों की संगणना –** इसमें इसके पश्चात् वर्णित वादों में इस अधिनियम के अधीन संदेय फीस की संगणना नीचे लिखे अनुसार की जाएगी :–
>
> .....
>
> (iv) व्यादेश के वादों में – (घ) व्यादेश अभिप्राप्त करने के वादों में,
>
> .....
>
> वादपत्र या अपील के ज्ञापन में ईप्सित अनुतोष के मूल्यांकन की रकम के अनुसार ;

इन सभी वादों में वादी ईप्सित अनुतोष के मूल्यांकन की रकम का कथन करेगा ;"

9. वर्तमान वाद की प्रकृति, जैसा कि इसमें ऊपर उल्लेख किया गया है, अभिलेख को देखने से ही स्पष्ट हो जाती है कि वादी-अपीलार्थी ने प्रतिवादियों के विरुद्ध आज्ञापक व्यादेश के अनुतोषों के लिए प्रश्नगत भूखंड से स्वयं को और अपने सामान को हटाने के लिए यह अभिकथन करते हुए ईप्सा की है कि प्रतिवादी केवल अनुज्ञप्तिधारी के रूप में अधिभोग में थे और संबंधित अनुज्ञप्तियों की समाप्ति के पश्चात् वे स्वयं को हटाने के लिए आबद्धकर थे । वादी ने इस शाश्वत प्रतिषेधात्मक व्यादेश के अनुतोष के लिए भी प्रार्थना की है कि प्रतिवादी वाद संपत्ति में कोई तृतीय पक्षकार के अधिकार सृजित न करें या उस पर कोई निर्माण न करें । वादी ने न्यायालय फीस और अधिकारिता के प्रयोजनार्थ व्यादेश के प्रत्येक अनुतोष के लिए 250/- रुपए की दर से वाद का मूल्यांकन किया है और नुकसानी के लिए एक लाख रुपए का मूल्यांकन किया है और तद्नुसार न्यायालय फीस का संदाय किया है ।

9.1 यह अति सामान्य बात है कि वादपत्र में दावा किए गए अनुतोष की प्रकृति ही वाद के मूल्यांकन के प्रश्न के लिए निश्चायक होती है । आवश्यक परिणाम के रूप में, बाजार मूल्य वाद मूल्यांकन के लिए केवल इस कारण निश्चायक नहीं बन जाता है कि स्थावर संपत्ति मुकदमे की विषयवस्तु है । मुकदमे में अंतर्वलित स्थावर संपत्ति के बाजार मूल्य की सुसंगतता दावा किए गए अनुतोष की प्रकृति पर निर्भर करते हुए हो सकती है किंतु अंततोगत्वा किसी विशिष्ट वाद का मूल्यांकन प्राथमिक रूप से दावा किए गए अनुतोष/अनुतोषों के प्रतिनिर्देश करके विनिश्चित किया जाना चाहिए ।

9.2 जहां तक वर्तमान वाद का संबंध है, वादी ने प्रतिवादियों को लाइसेंसी होने का अभिकथन किया है और उन्हें स्वयं और अपने सामान को हटाने के लिए आबद्धकर करते हुए आज्ञापक व्यादेश की ईप्सा की है । यह पता लगाने के लिए अधिक चर्चा की आवश्यकता नहीं है कि ऐसे अभिवचनों के साथ आज्ञापक व्यादेश के अनुतोष का दावा करना विधिक कार्यवाही के लिए अपरिचित नहीं है । तुरंत संदर्भ के लिए, हम

मारिया मारगरिडा सेक्युइरा फर्नांडीस (उपर्युक्त) वाले मामले के विनिश्चय से निम्नलिखित सुसंगत पैरा को निर्दिष्ट कर सकते हैं :–

> "65. हक-धारक द्वारा कब्जे के प्रत्युद्धरण के लिए वाद फाइल किया जा सकता है या यह भूतपूर्व पट्टेदार की बेदखली के लिए वाद हो सकता है या किसी व्यक्ति से स्वयं को हटाने की अपेक्षा करते हुए आज्ञापक व्यादेश के लिए हो सकता है या यह कब्जे के प्रत्युद्धरण के लिए विनिर्दिष्ट अनुतोष अधिनियम की धारा 6 के अधीन वाद हो सकता है ।"

9.3 **संत लाल जैन** (उपर्युक्त) वाले मामले में भी इस न्यायालय ने **मिल्का सिंह** बनाम **डायना**[1] वाले मामले में जम्मू और कश्मीर उच्च न्यायालय के एक विनिश्चय को अनुमोदन के साथ निर्दिष्ट किया था और निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया था :–

> "..... मिल्का सिंह **बनाम** डायना और एक अन्य (ए. आई. आर. 1964 जे एंड के 99) वाले मामले में यह मत व्यक्त किया गया है कि यह सिद्धांत कि 'एक बार का अनुज्ञप्तिधारी सदैव अनुज्ञप्तिधारी रहता है, सभी प्रकार की अनुज्ञप्तियों को लागू होगा और यह नहीं कहा जा सकता कि जिस क्षण अनुज्ञप्ति समाप्त की जाती है, अनुज्ञप्तिधारी का कब्जा अतिचारी का कब्जा हो जाता है । उस मामले में हम में से एक (न्या. मुर्तजा फजल अली, जैसे कि वे उस समय थे) ने खंड न्यायपीठ की ओर से निम्नलिखित मत व्यक्त किया था–
>
> > 'अनुज्ञप्ति की समाप्ति के पश्चात् अनुज्ञप्तिधारी उसका कब्जा स्वामी को अभ्यर्पित करने की स्पष्ट बाध्यता के अधीन है और यदि वह ऐसा करने में असफल रहता है, तो हमें ऐसा कोई कारण दिखाई नहीं देता कि अनुज्ञप्तिधारी को विनिर्दिष्ट अनुतोष अधिनियम की धारा 55 के अधीन आज्ञापक व्यादेश के तौर पर इस बाध्यता का निर्वहन करने के लिए बाध्य क्यों नहीं किया जा सकता । इसके अतिरिक्त

[1] ए. आई. आर. 1964 जे एंड के 99.

हम इस बात का भी उल्लेख कर सकते हैं कि इंग्लैंड की विधि के अधीन भी अनुज्ञप्तिधारी को बेदखल करने संबंधी व्यादेश के लिए लाए गए वाद को सदैव अभिनिर्धारित किया गया है कि वह चलने योग्य है...।'

'..... जहां अनुज्ञापक, अनुज्ञप्ति समाप्त हो जाने के पश्चात् युक्तियुक्त समय के भीतर व्यादेश प्राप्त करने के लिए न्यायालय में आता है, वहां वह व्यादेश प्राप्त करने का हकदार है । दूसरी ओर, यदि अनुज्ञापक बहुत अधिक विलंब करता है, तो न्यायालय व्यादेश मंजूर करने विषयक अपने विवेकाधिकार का प्रयोग करने से इस आधार पर इनकार कर सकता है कि अनुज्ञापक तत्पर नहीं रहा है और उस दशा में अनुज्ञापक को कब्जे के लिए वाद लाना होगा जो न्यायालय फीस अधिनियम की धारा 7(5) के अधीन होगा ।'

7. वर्तमान मामले में हमारे समक्ष यह नहीं दर्शाया गया है कि अपीलार्थी आज्ञापक व्यादेश के लिए वाद के साथ न्यायालय के समक्ष पर्याप्त विलंब के पश्चात् आया था, जो उसे वैवेकिक अनुतोष के लिए निर्हरित कर देगा । यदि कोई विलंब हुआ था तो हमारा यह विचार है कि इस प्रकार के मामले में वादों की बारंबारता से बचने के लिए प्रयत्न किया जाना चाहिए और अनुज्ञापक को सभी सहवर्ती विलंब, परेशानी और व्यय सहित दूसरी बार वाद फाइल करने के लिए बाध्य नहीं किया जाना चाहिए । वस्तुत:, वाद कब्जे के लिए है, यद्यपि वह आज्ञापक व्यादेश प्राप्त करने के लिए लाए गए वाद के रूप में व्यक्त किया गया है, क्योंकि वादी को यदि वह सफल होता है, जो दिया जाना है, वह उस संपत्ति का कब्जा है जिसका वह हकदार होना पाया जाए । इसलिए हमारी यह राय है कि अपीलार्थी को केवल इस कारण अनुतोष से वंचित नहीं रखा जाना चाहिए, क्योंकि उसने वादपत्र को आज्ञापक व्यादेश प्राप्त करने के लिए लाए गए वाद के रूप में व्यक्त किया है ।'"

9.4 वास्तव में, **मुल्क राज खुल्लर** (उपर्युक्त) वाले मामले में, जिसे उच्च न्यायालय द्वारा अपने आक्षेपित निर्णय में निर्दिष्ट किया गया है,

संत लाल जैन (उपर्युक्त) वाले मामले में पूर्वोक्त विनिश्चय के साथ-साथ **जोसफ सेवरेंस और अन्य** बनाम **बेन्नी मेथ्यू और अन्य**[1] वाले मामले में एक अन्य विनिश्चय का भी उल्लेख किया गया था और उच्च न्यायालय ने निम्नलिखित निष्कर्ष निकाला था :–

> "16. जो विधिक स्थिति निकलती है, वह यह है कि जहां किसी ऐसे अनुज्ञप्तिधारी (लाइसेंसी) के विरुद्ध तत्परता से वाद फाइल किया जाता है जिसकी अनुज्ञप्ति (लाइसेंस) को समाप्त कर दिया गया है, वहां आज्ञापक व्यादेश के लिए वाद संधार्य है .....।"

9.5 आज्ञापक व्यादेश के लिए वाद की संधार्यता के संबंध में विधि की स्थिर स्थिति के लिए और इस सुसंगत तथ्य के लिए भी पूर्वोक्त चर्चा को और अधिक विस्तृत करना आवश्यक नहीं है कि आक्षेपित आदेश में भी उच्च न्यायालय ने, जहां तक आज्ञापक व्यादेश की ईप्सा करते हुए वाद की संधार्यता के प्रश्न का संबंध है, कोई प्रतिकूल मत व्यक्त नहीं किया है । बल्कि उच्च न्यायालय ने विभिन्न विनिश्चयों के प्रति विस्तारपूर्वक निर्देश करके मामले के इस पहलू को यह मत व्यक्त करते हुए संदेह से परे रखा है कि प्रस्तुत मामले के तथ्य और **मुल्क राज खुल्लर** (उपर्युक्त) वाले मामले के तथ्य सम-विषयक थे । इस सीमा तक, उच्च न्यायालय की विचारणा लागू विधिक सिद्धांतों के अनुरूप थी । तथापि, तुरंत अगले कदम पर उच्च न्यायालय ने, सादर, **मुल्क राज खुल्लर** (उपर्युक्त) वाले मामले में के एक अकेले पैरा को, जहां न्यायालय ने बेतुके मूल्यांकन के बारे में किसी दलील के अभाव को उपदर्शित किया था, निर्दिष्ट करके और सार से अलग होकर गंभीर गलती की थी । **मुल्क राज खुल्लर** (उपर्युक्त) वाले मामले में के विनिश्चय के पेरा 30 में की गई मताभिव्यक्ति **पदमावती महाजन** बनाम **योगेन्द्र महाजन और अन्य**[2] वाले मामले में दिल्ली उच्च न्यायालय के एक अन्य विनिश्चय में की गई मताभिव्यक्तियों के संदर्भ में की गई थी, जिसमें न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया था कि व्यादेश के लिए वाद का मूल्यांकन वादी द्वारा अपने विवेकानुसार इस शर्त के अध्यधीन

---

[1] (2005) 7 एस. सी. सी. 667.

[2] (2008) 152 डीएलटी 363.

रहते हुए किया जा सकता है कि ऐसा विवेकाधिकार बेतुका नहीं होना चाहिए । उच्च न्यायालय द्वारा आक्षेपित आदेश में इस साधारण अभिव्यक्ति "बेतुका" के प्रयोग को किसी विनिर्देश के बिना उठाया गया और फिर प्रश्नगत भूखंड के बाजार मूल्य को, जो वादी द्वारा अपनी प्रतिपरीक्षा में बताया गया था, मूल्यांकन करने में मनमानेपन के उपदर्शन के रूप में लिया गया । सादर, उच्च न्यायालय ने **मुल्क राज खुल्लर** (उपर्युक्त) वाले मामले में के उसी पैरा में ही दोहराए गए विधि के सुसंगत कथन को छोड़ दिया था, जिसमें स्पष्ट शब्दों में यह कहा गया था कि ऐसे वाद का 'संपत्ति के बाजार मूल्य पर मूल्यांकन किया जाना अपेक्षित नहीं है ।'

10. उच्च न्यायालय ने यहां तक कि प्रस्तुत मामले की संपूर्ण परिस्थितियों पर भी विचार नहीं किया था, जहां वादी ने आज्ञापक और प्रतिषेधात्मक व्यादेश के अनुतोषों का 250/- रुपए की नाममात्र दर पर मूल्यांकन किया था किंतु साथ ही साथ नुकसानी के दावे के प्रतिनिर्देश करके वाद का एक लाख रुपए मूल्यांकन किया था और तद्नुसार न्यायालय फीस का संदाय किया था । अभिलेख के देखने से यह स्पष्ट है कि विधि के इस असंदिग्ध सिद्धांत के बावजूद कि आज्ञापक और प्रतिषेधात्मक व्यादेश के लिए ऐसे वाद का मूल्यांकन संपत्ति के बाजार मूल्य पर किया जाना अपेक्षित नहीं है, उच्च न्यायालय ने वर्तमान वाद के मूल्यांकन को "मनमाना" अभिनिर्धारित करने के लिए केवल संपत्ति के बाजार मूल्य का अवलंब लिया था । उच्च न्यायालय का ऐसा निष्कर्ष न तो विधि के अनुरूप है और न ही वर्तमान वाद की रचना और प्रकृति के अनुरूप है ।

11. **कमर्शियल एविएशन** (उपर्युक्त) वाले मामले का विनिश्चय प्रत्यर्थी सं. 1 के हेतुक को किसी प्रकार की किसी रीति में अग्रसर नहीं करता है । उक्त विनिश्चय लेखा दिए जाने के लिए वाद से संबंधित है, जो न्यायालय फीस अधिनियम की धारा 7 के खंड (iv) द्वारा अनुज्ञात वादों की एक किस्म है । इस संदर्भ में भी, इस न्यायालय ने, अन्य बातों के साथ-साथ, यह मत व्यक्त किया था कि वादी का ऐसे वादपत्र में उसके हिस्से की रकम के बारे में निर्धारण किसी सटीक सामग्री के

अभाव में एक अनुमान था और मूल्यांकन के वस्तुनिष्ठ मानदंड का गठन नहीं करता है । इस न्यायालय ने न्यायालय फीस अधिनियम की धारा 7(iv) के अंतर्गत आने वाले वादों के मूल्यांकन को शासित करने वाले सिद्धांतों को निम्नलिखित शब्दों में स्पष्ट किया था :–

> "7. न्यायालय फीस अधिनियम की धारा 7(iv) के अधीन आने वाले वादों का जहां तक संबंध है, विधानमंडल ने वादपत्र में या अपील के ज्ञापन में ईप्सित अनुतोष के मूल्यांकन का प्रश्न वादी पर छोड़ दिया है । इसका कारण स्पष्ट है । धारा 7(iv) में वर्णित वाद ऐसी प्रकृति के हैं, जिनमें मूल्यांकन का कोई भी मानदंड अधिकथित करना कठिन है । वस्तुत: विधानमंडल ने न्यायालय फीस अधिनियम में मूल्यांकन का कोई भी मानदंड अधिकथित नहीं किया है । वाद मूल्यांकन अधिनियम की धारा 9 के अधीन उच्च न्यायालय राज्य सरकार की पूर्व अनुमति (मंजूरी) से न्यायालय फीस अधिनियम की धारा 7(iv) में वर्णित वादियों के मूल्यांकन के लिए नियम विरचित कर सकता है । यद्यपि पंजाब उच्च न्यायालय ने वाद मूल्यांकन अधिनियम की धारा 9 के अधीन नियम विरचित किए हैं, जो दिल्ली संघ राज्यक्षेत्र में भी लागू होते हैं, फिर भी ऐसे नियम न्यायालय फीस अधिनियम की धारा 7(iv) के अधीन आने वाले वादों की बाबत मूल्यांकन का कोई भी मानदंड अधिकथित नहीं करते हैं । यह पहले ही देखा गया है कि पंजाब उच्च न्यायालय नियम के नियम 4(i) के अधीन न्यायालय फीस के प्रयोजनों के लिए लेखाओं हेतु वाद का मूल्यांकन वही होगा जो न्यायालय फीस अधिनियम द्वारा अवधारित किया गया है, जिसका अभिप्राय यह है कि अनुतोष का मूल्यांकन वादी द्वारा न्यायालय फीस अधिनियम की धारा 7(iv)(च) के अधीन किया जाएगा ।"

11.1 उक्त विनिश्चय के पैरा 13 में की गई मताभिव्यक्तियां, जिनका विरोधी प्रत्यर्थी द्वारा अवलंब लिए जाने की ईप्सा की गई है, निम्नलिखित हैं :–

> "किंतु धारा 7(iv) के अधीन ऐसे मामले भी हो सकते हैं जिनमें अनुतोष के मूल्यांकन के अवधारण के प्रयोजन के लिए

कतिपय निश्चयात्मक वस्तुनिष्ठ मानदंड उपलब्ध हो सकते हैं । यदि अनुतोष के मूल्यांकन के लिए कोई सामग्री या वस्तुनिष्ठ मानदंड हैं और वादी उन मानदंडों की उपेक्षा करता है और मनमाने रूप से मूल्यांकन करता है तो हमारी राय में न्यायालय सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 7 के नियम 11(ख) के अधीन हस्तक्षेप करने का हकदार है, क्योंकि न्यायालय वस्तुनिष्ठ मानदंडों या उसे उपलब्ध सामग्री के संदर्भ में ठीक मूल्यांकन का अवधारण करने की स्थिति में होगा । उर्मिला बाला विस्वास **बनाम** बीनापाणि विस्वास और अन्य (ए. आई. आर. 1938 कलकत्ता 161) में भविष्य निधि धन की एक निश्चित रकम के लिए हक की घोषणा हेतु वाद फाइल किया गया था, जिसमें प्रतिवादी को उक्त धन को निकालने से अवरुद्ध करते हुए व्यादेश के लिए प्रार्थना की गई थी । यह अभिनिर्धारित किया गया था कि धन को वसूल करने के अधिकार और स्वयं उस धन के अधिकार के बीच एक वास्तविक अंतर है और उस अनुतोष का मूल्यांकन भविष्य निधि की रकम पर किया जाना चाहिए, जिसके लिए वादी द्वारा हक का दावा किया गया है । इस प्रकार यह प्रतीत होता है कि यद्यपि उस मामले में उक्त वाद न्यायालय फीस अधिनियम की धारा 7(iv)(ग) के अधीन था लेकिन उस मामले में एक वस्तुनिष्ठ मानदंड था जो वादी को और न्यायालय को अनुतोष का ठीक मूल्यांकन करने में समर्थ बनाता था और ऐसे मामले में न्यायालय वादी को तद्नुसार अनुतोष का मूल्यांकन करने का निदेश देने में सक्षम होगा ।"

11.2 उच्च न्यायालय द्वारा इन मताभिव्यक्तियों का, वास्तव में, आक्षेपित निर्णय में भी उल्लेख किया गया था किंतु उन्हें इस अर्थ में नहीं पढ़ा जा सकता है कि किसी संपत्ति के संबंध में आज्ञापक व्यादेश और प्रतिवादी के कृत्यों/लोपों पर कतिपय आदेश की ईप्सा करते हुए वाद में, वाद का मूल्यांकन बाजार मूल्य के अनुसार किया जाना अपेक्षित है । दावाकृत अनुतोष की प्रकृति को विचार में लाए बिना अंतर्वलित संपत्ति के बाजार मूल्य पर वाद का मूल्यांकन करने के लिए ऐसी प्रतिपादना को यदि स्वीकार किया जाए, तो अनुतोष की प्रकृति के प्रतिनिर्देश करके वाद

का मूल्यांकन करने के संबंध में न्यायालय फीस अधिनियम की संपूर्ण स्कीम अस्त-व्यस्त हो जाएगी । इस दलील को नामंजूर किया जाना चाहिए ।

12. **महंत पुरुषोत्तम दास** (उपर्युक्त) वाले मामले में दिल्ली उच्च न्यायालय की पूर्ण न्यायपीठ के विनिश्चय को भी अनावश्यक रूप से उद्धृत किया गया है । उस मामले में वाद घोषणा और शाश्वत व्यादेश के लिए था, जहां न्यायालय ने यह पाया था कि वादी घोषणा की ईप्सा किए बिना व्यादेश के अनुतोष की मांग नहीं कर सकता था और वाद को उसकी प्रकृति के आधार पर न्यायालय फीस अधिनियम की धारा 7 के खंड (v) द्वारा शासित होने वाला अभिनिर्धारित किया गया था । उक्त विनिश्चय की प्रस्तुत मामले में कोई सुसंगतता या उपयोजन नहीं है ।

13. समापन करने से पूर्व, हम यह भी मत व्यक्त कर सकते हैं कि प्रत्यर्थी सं. 1 की ओर से इस संबंध में दी गई दलील पर अधिक टीका-टिप्पणी करने की आवश्यकता नहीं है कि विचारण न्यायालय द्वारा उसकी प्रार्थना के बावजूद आवश्यक विवाद्यकों को विरचित नहीं किया गया था । इसका सीधा सा कारण यह है कि विरचित किए गए विवाद्यकों को विचार में लाए बिना प्रत्यर्थी सं. 1 ने वाद का प्रतिवाद करते समय वादी की प्रतिपरीक्षा के दौरान सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 7, नियम 11 के अधीन आवेदन फाइल करके वाद के मूल्यांकन और विचारण न्यायालय की अधिकारिता पर आक्षेप करने का विकल्प चुना था । इस आवेदन को विचारण न्यायालय द्वारा ठीक ही नामंजूर किया गया था । उच्च न्यायालय के इसके प्रतिकूल विनिश्चय का हमारे द्वारा अनुमोदन नहीं किया जा रहा है । इस स्थिति में, विवाद्यक विरचित न करने के बारे में दलील स्वीकार नहीं की जा सकती है ।

14. इसमें ऊपर जो चर्चा की गई है, हम केवल दूसरे शब्दों में यह निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि उच्च न्यायालय ने विधि के लागू होने वाले उपबंध अर्थात् न्यायालय फीस अधिनियम की धारा 7(iv)(घ) के साथ-साथ निर्दिष्ट किए गए उसी विनिश्चय में उल्लिखित किए गए और स्वयं आक्षेपित आदेश में अवलंब लिए गए विधि के सिद्धांतों पर विचार करने का भी पूर्णतया लोप किया गया है । इस प्रकार, आक्षेपित आदेश

अपास्त किए जाने योग्य है ।

15. तद्नुसार, और उपरोक्त को दृष्टिगत करते हुए यह अपील सफल होती है और मंजूर की जाती है ; तारीख 18 मार्च, 2019 का आक्षेपित आदेश अपास्त किया जाता है और विचारण न्यायालय के तारीख 11 जुलाई, 2018 के आदेश को प्रत्यावर्तित किया जाता है । यह मत व्यक्त करने की आवश्यकता नहीं है कि हमने मामले के गुणागुण के संबंध में कोई मताभिव्यक्तियां नहीं की हैं, जो प्रथम अपील न्यायालय के समक्ष लंबित अपील में परीक्षा के लिए खुली रहेंगी ।

15.1 इस अपील के खर्चे के बारे में कोई आदेश नहीं किया जाएगा ।

अपील मंजूर की गई ।

जस.

संसद् के अधिनियम

दक्षिण एशियाई विश्वविद्यालय अधिनियम, 2008

(2009 का अधिनियम संख्यांक 8)

[11 जनवरी, 2009]

दक्षिण एशियाई विश्वविद्यालय की स्थापना के लिए करार को प्रभावी करने और उससे संबंधित या उसके आनुषंगिक विषयों का उपबंध करने के लिए अधिनियम

दक्षिण एशियाई विश्वविद्यालय की स्थापना के लिए करार पर दक्षिण एशियाई क्षेत्रीय सहयोग संगम (सार्क) के सदस्य राज्यों की संबंधित सरकारों की ओर से 4 अप्रैल, 2007 को हस्ताक्षर किए गए थे ;

और उक्त करार के अनुच्छेद 1 में यह उपबंध है कि विश्वविद्यालय का मुख्य कैंपस भारत में अवस्थित होगा । अतः उक्त करार को प्रभावी करने के लिए उपबंध करना समीचीन है ;

भारत गणराज्य के उनसठवें वर्ष में संसद् द्वारा निम्नलिखित रूप में यह अधिनियमित हो :–

1. संक्षिप्त नाम, प्रारंभ और विस्तार – (1) इस अधिनियम का संक्षिप्त नाम दक्षिण एशियाई विश्वविद्यालय अधिनियम, 2008 है ।

(2) इसका विस्तार संपूर्ण भारत पर और सार्क क्षेत्र में भारत से बाहर स्थापित कैंपसों और केन्द्रों पर होगा ।

(3) यह उस तारीख को प्रवृत्त होगा, जिसे केन्द्रीय सरकार, राजपत्र में अधिसूचना द्वारा, नियत करे और इस अधिनियम के भिन्न-भिन्न उपबंधों के लिए भिन्न-भिन्न तारीखें नियत की जा सकेंगी ।

2. परिभाषाएं – इस अधिनियम में, जब तक कि संदर्भ से अन्यथा अपेक्षित न हो, –

(क) "विद्या परिषद्" से विश्वविद्यालय की विद्या परिषद् अभिप्रेत है ;

(ख) "शैक्षणिक कर्मचारिवृंद" से ऐसे प्रवर्गों के कर्मचारिवृंद

अभिप्रेत हैं जो परिनियमों द्वारा शैक्षणिक कर्मचारिवृंद के रूप में अभिहित किए जाएं ;

(ग) "करार" से दक्षिण एशियाई विश्वविद्यालय की स्थापना के लिए करार अभिप्रेत है ;

(घ) "उपविधियों" से विश्वविद्यालय की उपविधियां अभिप्रेत हैं ;

(ङ) "केन्द्र" से विश्वविद्यालय की या विश्वविद्यालय संस्थान की ऐसी कोई इकाई अभिप्रेत है जो शिक्षण, परामर्श और अनुसंधान सुविधाएं उपलब्ध करा रही है और इसके अंतर्गत प्रादेशिक केन्द्र भी है ;

(च) "कर्मचारी" से विश्वविद्यालय द्वारा नियुक्त कोई व्यक्ति अभिप्रेत है और इसके अंतर्गत विश्वविद्यालय के शिक्षक और अन्य कर्मचारिवृंद भी हैं ;

(छ) "कार्य परिषद्" से विश्वविद्यालय की कार्य परिषद् अभिप्रेत है ;

(ज) "संकाय" से विश्वविद्यालय का संकाय अभिप्रेत है ;

(झ) "शासी बोर्ड" से धारा 6 के अधीन गठित विश्वविद्यालय का शासी बोर्ड अभिप्रेत है ;

(ञ) "छात्र-निवास" से विश्वविद्यालय के छात्रों के लिए निवास की ऐसी इकाई चाहे वह जिस नाम से ज्ञात हो, अभिप्रेत है जो विश्वविद्यालय द्वारा उपलब्ध कराई गई या चलाई जा रही या मान्यताप्राप्त है ;

(ट) "आतिथेय देश" से भारत गणराज्य अभिप्रेत है ;

(ठ) "आतिथेय सरकार" से आतिथेय देश की सरकार अभिप्रेत है ;

(ड) "सदस्य राज्यों" से सार्क के सदस्य राज्य अभिप्रेत हैं ;

(ढ) "विहित" से परिनियमों, विनियमों या उपविधियों द्वारा विहित अभिप्रेत है ;

(ण) "अध्यक्ष" से धारा 12 के अधीन नियुक्त विश्वविद्यालय का अध्यक्ष अभिप्रेत है ;

(त) "परियोजना कार्यालय" से विश्वविद्यालय का मुख्य कैंपस

स्थापित करने के लिए आवश्यक कार्य करने के प्रयोजन के लिए स्थापित परियोजना कार्यालय अभिप्रेत है ;

(थ) "मान्यताप्राप्त संस्था" से विश्वविद्यालय द्वारा चलाई गई या मान्यताप्राप्त अथवा विश्वविद्यालय से सहबद्ध उच्चतर विद्या की संस्था अभिप्रेत है ;

(द) "प्रादेशिक केन्द्र" से सार्क क्षेत्र में, कैंपसों या केन्द्रों के कार्य का समन्वय करने और पर्यवेक्षण करने के प्रयोजन के लिए तथा ऐसे अन्य कृत्य करने के लिए जो शासी बोर्ड द्वारा ऐसे केन्द्र को प्रदान किए जाएं, किसी स्थान पर विश्वविद्यालय द्वारा स्थापित या चलाया जा रहा केन्द्र अभिप्रेत है ;

(ध) "विनियम" से विश्वविद्यालय के विनियम अभिप्रेत हैं ;

(न) "सार्क" से 8 दिसंबर, 1985 को हस्ताक्षरित दक्षिण एशियाई क्षेत्रीय सहयोग संगम के चार्टर द्वारा स्थापित दक्षिण एशियाई क्षेत्रीय सहयोग संगम के नाम से ज्ञात संगठन अभिप्रेत है ;

(प) "सार्क क्षेत्र" से सदस्य राज्यों के राज्यक्षेत्रों को समाविष्ट करने वाला क्षेत्र अभिप्रेत है ;

(फ) "अनुसूची" से अधिनियम की अनुसूची अभिप्रेत है ;

(ब) "परिनियमों" से विश्वविद्यालय के परिनियम अभिप्रेत हैं ;

(भ) "शिक्षक" से विश्वविद्यालय का आचार्य, उपाचार्य, प्राध्यापक और ऐसा अनुसंधान कर्मचारिवृंद अभिप्रेत है, जो विश्वविद्यालय द्वारा विश्वविद्यालय में शिक्षण देने या छात्रों को विश्वविद्यालय के किसी अध्ययन पाठ्यक्रम में अध्ययन करने के लिए मार्गदर्शन देने हेतु नियुक्त किए गए हैं या मान्यताप्राप्त हैं ; और

(म) "विश्वविद्यालय" से धारा 4 के अधीन निगमित दक्षिण एशियाई विश्वविद्यालय अभिप्रेत है ।

3. करार के उपबंधों को विधि का बल होना – किसी अन्य विधि में प्रतिकूल किसी बात के होते हुए भी अनुसूची में वर्णित करार के उपबंधों को भारत में विधि का बल होगा ।

4. दक्षिण एशियाई विश्वविद्यालय का निगमन – (1) ऐसी तारीख से जो केन्द्रीय सरकार, राजपत्र में अधिसूचना द्वारा इस निमित्त नियत करे,

करार के उपबंधों को प्रभावी करने के प्रयोजन के लिए दक्षिण एशियाई विश्वविद्यालय के नाम से एक विश्वविद्यालय की स्थापना की जाएगी ।

(2) विश्वविद्यालय एक निगमित निकाय होगा जिसका शाश्वत उत्तराधिकार और सामान्य मुद्रा होगी तथा वह उक्त नाम से वाद लाएगा और उसके विरुद्ध वाद लाया जाएगा ।

(3) विश्वविद्यालय का मुख्यालय दिल्ली में होगा ।

(4) विश्वविद्यालय भारत के भीतर और सार्क क्षेत्र में भारत से बाहर ऐसे अन्य स्थानों पर, जो वह ठीक समझे, कैंपस और केन्द्रों की स्थापना कर सकेगा या उन्हें चला सकेगा ।

5. अधिकारिता – विश्वविद्यालय की अधिकारिता संपूर्ण भारत पर और सार्क क्षेत्र में भारत से बाहर स्थापित सभी कैंपसों और केन्द्रों पर होगी :

परन्तु यदि विश्वविद्यालय सार्क क्षेत्र में भारत से बाहर किसी स्थान पर कोई कैंपस या केन्द्र स्थापित करता है और चलाता है तब विश्वविद्यालय की अधिकारिता, करार के उपबंध तथा ऐसे किसी सदस्य राज्य में, जिसके भीतर ऐसा कैंपस या केन्द्र अवस्थित है, प्रवृत्त विधियों के अधीन रहते हुए, ऐसे कैंपस या केन्द्र पर विस्तारित होगी ।

6. शासी बोर्ड – (1) विश्वविद्यालय का एक शासी बोर्ड होगा जो सार्क के सदस्य राज्यों में से प्रत्येक राज्य के दो सदस्यों और विश्वविद्यालय के अध्यक्ष से मिलकर बनेगा :

परंतु प्रथम शासी बोर्ड की विरचना होने तक सार्क की अंतर-सरकारी परिचालन समिति अंतरिम शासी बोर्ड के रूप में कार्य करेगी ।

(2) शासी बोर्ड का प्रधान ऐसा अध्यक्ष होगा जो शासी बोर्ड के सदस्यों में से निर्वाचित किया जाएगा ।

(3) शासी बोर्ड के सदस्यों का चयन ऐसी रीति में और ऐसी अवधि के लिए किया जाएगा जो अनुसूची के अनुच्छेद 5 में उपबंधित है ।

(4) विश्वविद्यालय का अध्यक्ष शासी बोर्ड का पदेन सदस्य होगा ।

(5) शासी बोर्ड विश्वविद्यालय की सभी नीतियों और निदेशों तथा उसके क्रियाकलापों के प्रबंध के लिए उत्तरदायी होगा ।

(6) बोर्ड का अध्यक्ष ऐसी शक्तियों का प्रयोग करेगा, जो परिनियमों

द्वारा विहित की जाएं ।

7. विश्वविद्यालय के उद्देश्य – विश्वविद्यालय के उद्देश्य निम्नलिखित होंगे, –

(क) विद्या की ऐसी शाखाओं में जिन्हें वह ठीक समझे, शिक्षण और अनुसंधान की सुविधाएं प्रदान करके ज्ञान, प्रज्ञान और समझ का प्रसार और अभिवृद्धि करना ;

(ख) अध्यापन-विद्या प्रक्रिया में नई पद्धति की अभिवृद्धि, अंतर-विद्या विषयक अध्ययनों और सामाजिक प्रसार तथा मानव कल्याण के लिए और क्षेत्रीय शांति तथा सुरक्षा के संवर्धन के लिए ज्ञान का उपयोजन करने के लिए समुचित उपाय करना ;

(ग) विज्ञान, प्रौद्योगिकी और जीवन की गुणवत्ता को सुधारने के लिए महत्वपूर्ण उच्चतर विद्या के अन्य क्षेत्रों में दक्षिण एशियाई राष्ट्रों की क्षमता निर्माण मद्दे उदार और मानवीय शिक्षा प्रदान करना तथा छात्रों को वृत्ति चलाने के लिए और उनमें नेतृत्व की गुणवत्ता उत्पन्न करने के लिए आवश्यक विश्लेषणों संबंधी साधन उपलब्ध कराना ;

(घ) छात्रों में ठोस नागरिक भावना मजबूत करना और उन्हें लोकतांत्रिक समाज के सफल नागरिक बनने हेतु प्रशिक्षित करना ;

(ङ) विद्या का दक्षिण एशियाई समुदाय तैयार करना जहां दक्षिण एशियाई देशों से छात्र अपनी संपूर्ण बौद्धिक क्षमता का विकास करने में समर्थ हों और क्षेत्रीय चेतना को मजबूत करके दक्षिण एशियाई समुदाय का सृजन करना ; और

(च) अध्यापन, अनुसंधान और पाठ्यक्रम में शैक्षणिक मानकों और प्रत्यायन के मानकों के साथ ऐसा सामंजस्य बिठाना जो सभी सदस्य राष्ट्रों को स्वीकार्य हो ।

8. विश्वविद्यालय की शक्तियां – विश्वविद्यालय की निम्नलिखित शक्तियां होंगी, अर्थात् :–

(i) विद्या की ऐसी शाखाओं में, जो विश्वविद्यालय समय-समय पर अवधारित करे, शिक्षण की व्यवस्था करना तथा अनुसंधान के लिए और ज्ञान की अभिवृद्धि और प्रसार के लिए

व्यवस्था करना ;

(ii) ऐसे विशेष केन्द्र और विशेषित प्रयोगशालाएं तथा अनुसंधान और शिक्षण के लिए ऐसी अन्य इकाइयां स्थापित करना जो उसके उद्देश्यों को अग्रसर करने के लिए आवश्यक हों ;

(iii) उपाधियों, डिप्लोमाओं, प्रमाणपत्रों के लिए या किसी अन्य प्रयोजन के लिए अध्ययन के पाठ्यक्रमों की योजना बनाना और उन्हें विहित करना ;

(iv) ऐसी शर्तों के अधीन रहते हुए, जो विश्वविद्यालय अवधारित करे, परीक्षाओं, मूल्यांकन या परीक्षण की किसी अन्य प्रणाली के आधार पर डिप्लोमा या प्रमाणपत्र देना और उन्हें उपाधियां या अन्य विद्या संबंधी विशेष उपाधियां प्रदान करना तथा उचित और पर्याप्त कारण होने पर ऐसे डिप्लोमाओं, प्रमाणपत्रों, उपाधियों या अन्य विद्या संबंधी विशेष उपाधियों को वापस लेना ;

(v) परिनियमों द्वारा विहित रीति से सम्मानिक उपाधियां या अन्य विशिष्टताएं प्रदान करना ;

(vi) मुक्त अध्ययन कार्यक्रमों, निवेशबाह्य अध्ययन, प्रशिक्षण और विस्तार सेवाओं का आयोजन करना और उन्हें प्रारंभ करना ;

(vii) विश्वविद्यालय द्वारा अपेक्षित चेयर्स, प्राचार्य, आचार्य, उपाचार्य और प्राध्यापक तथा अन्य अध्यापन और शैक्षणिक पद संस्थित करना और ऐसे चेयर्स, प्राचार्य, आचार्य, उपाचार्य और प्राध्यापक तथा अन्य अध्यापन और शैक्षणिक पदों पर व्यक्तियों को नियुक्त करना ;

(viii) अभ्यागत आचार्यों, प्रतिष्ठित आचार्यों, परामर्शदाताओं, विद्वानों तथा ऐसे अन्य व्यक्तियों को संविदा पर या अन्यथा नियुक्त करना जो विश्वविद्यालय के उद्देश्यों की अभिवृद्धि में योगदान दे सकें ;

(ix) व्यक्तियों को आचार्यों, उपाचार्यों या प्राध्यापकों के रूप में या अन्यथा विश्वविद्यालय के शिक्षकों के रूप में मान्यता देना ;

(x) प्रशासनिक और ऐसे अन्य पदों का सृजन करना जिन्हें विश्वविद्यालय समय-समय पर आवश्यक समझे और उन पर

नियुक्तियां करना ;

(xi) सभी प्रवर्गों के कर्मचारियों की सेवा की शर्तें, जिनके अंतर्गत उनकी आचार संहिता भी है, अधिकथित करना ;

(xii) ऐसे कैंपसों, केन्द्रों और प्रादेशिक केन्द्रों की स्थापना करना और उन्हें चलाना जो समय-समय पर अवधारित किए जाएं ;

(xiii) अपनी अधिकारिता के भीतर अवस्थित संस्थाओं को विश्वविद्यालय संस्थाओं के रूप में अपने विशेषाधिकार देना और उन सभी या किन्हीं विशेषाधिकारों को ऐसी शर्तों के अनुसार, जो परिनियमों द्वारा विहित की जाएं, वापस लेना ;

(xiv) किसी अन्य विश्वविद्यालय या प्राधिकारी या उच्चतर शिक्षा संस्था या किसी अन्य ऐसे लोक या प्राइवेट निकाय के साथ, जो विश्वविद्यालय के प्रयोजनों और उद्देश्यों के संवर्धन की दृष्टि से विश्वविद्यालय के प्रयोजनों और उद्देश्यों के समान हो, ऐसी रीति में जो विहित की जाए और ऐसे प्रयोजनों के लिए जो विश्वविद्यालय अवधारित करे, या उन पर सहमत हो, सहकार या सहयोग करना या सहयोजित होना ;

(xv) विश्वविद्यालय और विश्वविद्यालय द्वारा चलाई जा रही या उसके विशेषाधिकारों में सम्मिलित संस्थाओं में प्रवेश के लिए मानक अवधारित करना जिनके अंतर्गत परीक्षा, मूल्यांकन या परीक्षण की कोई अन्य प्रणाली भी है ;

(xvi) ऐसी फीसों और अन्य प्रभारों की, जो विहित किए जाएं, मांग करना और उन्हें प्राप्त करना ;

(xvii) छात्र-निवासों की स्थापना करना, ऐसे छात्र-निवासों और छात्रों के लिए अन्य आवासों को मान्यता देना, उनका मार्गदर्शन करना, उनका पर्यवेक्षण करना और नियंत्रण करना, जो विश्वविद्यालय द्वारा नहीं चलाए जा रहे हैं तथा ऐसी किसी मान्यता को वापस लेना ;

(xviii) विश्वविद्यालय के छात्रों और कर्मचारियों के स्वास्थ्य तथा सामान्य कल्याण के संवर्धन के लिए व्यवस्था करना ;

(xix) छात्रों और कर्मचारियों में अनुशासन का विनियमन करना और लागू करना तथा इस संबंध में ऐसे अनुशासन संबंधी

उपाय करना जो विश्वविद्यालय द्वारा आवश्यक समझे जाएं ;

(xx) अध्येतावृत्ति, छात्रवृत्ति, अध्ययनवृत्ति और पुरस्कार संस्थित करना और प्रदान करना ;

(xxi) विश्वविद्यालयों के प्रयोजनों या उद्देश्यों के लिए सार्क के मानदंडों के अनुसार शासी बोर्ड द्वारा बनाए गए विनियमों के अनुसार उपकृति, संदान और दान प्राप्त करना और किसी स्थावर या जंगम संपत्ति को, जिसके अंतर्गत न्यास और विन्यास संपत्ति भी है, अर्जित करना, धारण करना, उसका प्रबंध और व्ययन करना तथा ऐसी रीति में जो वह ठीक समझे, निधियां विनिहित करना ;

(xxii) शासी बोर्ड के अनुमोदन से विश्वविद्यालय की संपत्ति की प्रतिभूति पर विश्वविद्यालय के प्रयोजनों के लिए धन उधार लेना ;

(xxiii) किसी ऐसे प्रयोजन के लिए पूर्ण रूप से या भागतः किसी संस्था या उसके सदस्यों या छात्रों को ऐसे निबंधनों और शर्तों पर मान्यता देना जो समय-समय पर विहित की जाएं और ऐसी मान्यता को वापस लेना ;

(xxiv) किसी अन्य संस्था के विश्वविद्यालय में निगमन के लिए और उसके अधिकारों, संपत्तियों और दायित्वों को ग्रहण करने के लिए तथा ऐसे किसी अन्य प्रयोजन के लिए जो इस अधिनियम के प्रतिकूल न हो, कोई करार करना ;

(xxv) अनुसंधान और सलाहकार सेवाओं के लिए व्यवस्था करना और उस प्रयोजन के लिए अन्य संस्थाओं या निकायों से ऐसे ठहराव करना जो वह आवश्यक समझे ;

(xxvi) ऐसे अनुसंधान और अन्य कार्य के, जो विश्वविद्यालय द्वारा जारी किए जाएं, मुद्रण, पुनःउत्पादन और प्रकाशन का उपबंध करना ;

(xxvii) ऐसी अन्य शक्तियों का प्रयोग करना जो उसे करार के अधीन प्रदान की जाएं ; और

(xxviii) ऐसे अन्य सभी कार्य करना जो उसके सभी या किन्हीं उद्देश्यों के संवर्धन के लिए आवश्यक, आनुषंगिक या सहायक हों ।

9. विश्वविद्यालय का सभी व्यक्तियों के लिए खुला होना –

विश्वविद्यालय सभी व्यक्तियों के लिए चाहे वे किसी भी लिंग, जाति, पंथ, नि:शक्तता, नृवंशता या सामाजिक-आर्थिक पृष्ठभूमि के हों, खुला होगा और विश्वविद्यालय के लिए यह विधिपूर्ण नहीं होगा कि वह किसी व्यक्ति को शिक्षक के रूप में नियुक्त किए जाने या उसमें कोई अन्य पद धारण करने या विश्वविद्यालय में छात्र के रूप में प्रवेश पाने या उसमें उपाधि प्राप्त करने या उसके किसी विशेषाधिकार का उपभोग या प्रयोग करने का हकदार बनाने के लिए धार्मिक विश्वास या मान्यता संबंधी मानदंड अपनाए या उन पर अधिरोपित करे ।

10. कुलाध्यक्ष – (1) सार्क का तत्समय अध्यक्ष देश का विदेश मंत्री विश्वविद्यालय का कुलाध्यक्ष होगा ।

(2) कुलाध्यक्ष को ऐसी शक्तियां होंगी जो परिनियमों द्वारा विहित की जाएं ।

11. विश्वविद्यालय के अधिकारी – (1) विश्वविद्यालय का एक अध्यक्ष होगा और ऐसे अन्य अधिकारी होंगे जो ऐसी रीति में, जो विहित की जाए, नियुक्त किए जाएंगे, जो ऐसी शक्तियों का पालन और कृत्यों का निर्वहन करेंगे, जो विहित किए जाएं ।

(2) अध्यक्ष, विश्वविद्यालय का मुख्य कार्यपालक अधिकारी होगा ।

12. अध्यक्ष और उसकी शक्तियां – (1) अध्यक्ष शासी बोर्ड द्वारा ऐसी रीति में, जो परिनियमों द्वारा विहित की जाए, नियुक्त किया जाएगा :

परन्तु अध्यक्ष की नियुक्ति किए जाने तक, परियोजना कार्यालय का मुख्य कार्यपालक अधिकारी अध्यक्ष की शक्तियों का प्रयोग करेगा और विश्वविद्यालय के मुख्य कार्यपालक अधिकारी के रूप में कार्य करेगा ।

(2) अध्यक्ष, मुख्य कार्यपालक अधिकारी के रूप में विश्वविद्यालय के कार्यकलापों पर साधारण अधीक्षण और नियंत्रण रखेगा और विश्वविद्यालय के उद्देश्यों को कार्यान्वित करने तथा शासी बोर्ड के नीति निदेशकों को पूरा करने के लिए उत्तरदायी होगा ।

(3) अध्यक्ष, यदि उसकी यह राय है कि किसी विषय पर तुरंत कार्रवाई करना आवश्यक है तो इस अधिनियम द्वारा या उसके अधीन विश्वविद्यालय के किसी प्राधिकारी को प्रदत्त शक्ति का प्रयोग कर

सकेगा और अपनी आगामी बैठक में, उस विषय पर उसके द्वारा की गई कार्रवाई की रिपोर्ट उस अधिकारी को देगा :

परन्तु शक्ति का ऐसा प्रयोग केवल आपात स्थितियों में ही किया जाएगा और किसी भी दशा में, पदों के सृजन और उन्नयन तथा उन पर नियुक्तियों के संबंध में नहीं किया जाएगा :

परन्तु यह और कि यदि संबंधित प्राधिकारी की यह राय है कि ऐसी कार्रवाई नहीं की जानी चाहिए थी तो वह उस विषय को शासी निकाय को निर्दिष्ट कर सकेगा, जिसका उस पर विनिश्चय अंतिम होगा ।

(4) अध्यक्ष, यदि उसकी यह राय है कि विश्वविद्यालय के किसी प्राधिकारी का विनिश्चय इस अधिनियम और परिनियमों के उपबंधों द्वारा प्रदत्त प्राधिकारी की शक्तियों से परे है या किया गया कोई विनिश्चय विश्वविद्यालय के हित में नहीं है तो उस विनिश्चय के साठ दिन के भीतर संबंधित प्राधिकारी को अपने विनिश्चय का पुनर्विलोकन करने के लिए कह सकेगा और यदि अधिकारी विनिश्चय का पूर्णतः या भागतः पुनर्विलोकन करने से इनकार करता है या साठ दिन की उक्त अवधि के भीतर उसके द्वारा कोई विनिश्चय नहीं किया जाता है तो उस विषय को शासी बोर्ड को निर्दिष्ट किया जाएगा, जिसका उस पर विनिश्चय अंतिम होगा ।

(5) अध्यक्ष या उसके द्वारा इस निमित्त प्राधिकृत विश्वविद्यालय के किसी अधिकारी को विश्वविद्यालय की ओर से करार करने, दस्तावेजों पर हस्ताक्षर करने तथा अभिलेखों को अधिप्रमाणित करने की शक्ति होगी ।

(6) अध्यक्ष ऐसी अन्य शक्तियों का प्रयोग करेगा, जो परिनियमों द्वारा विहित की जाएं ।

13. अन्य अधिकारी – विश्वविद्यालय के अन्य अधिकारियों की नियुक्ति की रीति और शक्तियां तथा उनके कर्तव्य वे होंगे, जो परिनियमों द्वारा विहित किए जाएं ।

14. अध्यक्ष और शैक्षणिक कर्मचारिवृंद के विशेषाधिकार तथा उन्मुक्ति – विश्वविद्यालय, अध्यक्ष और शैक्षणिक कर्मचारिवृंद के सदस्य और जहां लागू हो, उनके आश्रित या कुटुंब के सदस्य ऐसे विशेषाधिकारों और उन्मुक्तियों का उपभोग करेंगे, जो केन्द्रीय सरकार,

संयुक्त राष्ट्र (विशेषाधिकार और उन्मुक्तियां) अधिनियम, 1947 (1947 का 46) की धारा 3 के अधीन अधिसूचित करे ।

15. विश्वविद्यालय के प्राधिकारी – विश्वविद्यालय के निम्नलिखित प्राधिकारी होंगे :–

(क) कार्य परिषद्,

(ख) विद्या परिषद्, और

(ग) ऐसे अन्य प्राधिकारी, जो शासी बोर्ड द्वारा परिनियमों में विश्वविद्यालय के प्राधिकारी घोषित किए जाएं ।

16. कार्य परिषद् – (1) कार्य परिषद् विश्वविद्यालय का कार्यपालक निकाय होगा और अध्यक्ष तथा शासी निकाय के निदेशों या विनिश्चयों को प्रभावी करने के लिए शक्तियों का प्रयोग करेगा ।

(2) कार्य परिषद् का गठन, उसके सदस्यों की पदावधि और उनकी शक्तियां तथा कृत्य वे होंगे, जो परिनियमों द्वारा विहित किए जाएं ।

17. विद्या परिषद् – (1) विद्या परिषद् विश्वविद्यालय का प्रधान शैक्षणिक निकाय होगा और इस अधिनियम, परिनियमों तथा विनियमों के अधीन रहते हुए, विश्वविद्यालय की शैक्षणिक नीतियों का समन्वय करेगा और उन पर साधारण पर्यवेक्षण रखेगा ।

(2) विद्या परिषद् का गठन, उसके सदस्यों की पदावधि और उनकी शक्तियां तथा कृत्य वे होंगे, जो परिनियमों द्वारा विहित किए जाएं ।

18. अन्य प्राधिकारियों का गठन – धारा 15 के खंड (ग) के अधीन प्राधिकारियों का गठन, ऐसे प्राधिकारियों के सदस्यों की पदावधि और उनकी शक्तियां तथा कृत्य वे होंगे, जो परिनियमों द्वारा विनिर्दिष्ट किए जाएं ।

19. संकाय और विभाग – (1) विश्वविद्यालय के उतने संकाय होंगे, जितने परिनियमों द्वारा विहित किए जाएं ।

(2) प्रत्येक संकाय में उतने विभाग या विद्यापीठ होंगे, जितने परिनियमों द्वारा विहित किए जाएं और प्रत्येक विभाग या विद्यापीठ में ऐसे अध्ययन के विषय होंगे, जो विनियमों द्वारा उसे समनुदेशित किए जाएं ।

20. परिनियम – (1) इस अधिनियम के उपबंधों के अधीन रहते हुए, परिनियमों में निम्नलिखित सभी या किन्हीं विषयों के लिए उपबंध किया जा सकेगा, अर्थात् :–

(क) कुलाध्यक्ष की शक्तियां ;

(ख) शासी निकाय के अध्यक्ष की शक्तियां ;

(ग) अध्यक्ष की नियुक्ति की रीति और उसकी शक्तियां ;

(घ) कार्य परिषद्, विद्या परिषद् और विश्वविद्यालय के अन्य प्राधिकारियों तथा निकायों का गठन, उनकी शक्तियां और कृत्य ;

(ङ) शैक्षणिक कर्मचारिवृंद के प्रवर्ग ;

(च) विश्वविद्यालय के शिक्षकों, शैक्षणिक कर्मचारिवृंद और अन्य कर्मचारियों की नियुक्ति ;

(छ) विश्वविद्यालय के संकायों की स्थापना ;

(ज) वे शर्तें, जिनके अधीन संस्था को विश्वविद्यालय के विशेषाधिकार दिए जा सकेंगे और ऐसे विशेषाधिकारों को वापस लिया जाना ;

(झ) सम्मानिक उपाधियां प्रदान करना ;

(ञ) विश्वविद्यालय के प्राधिकारियों या अधिकारियों में निहित शक्तियों का प्रत्यायोजन ;

(ट) कर्मचारियों या छात्रों और विश्वविद्यालय के बीच शिकायतों के निवारण के लिए तंत्र की स्थापना ;

(ठ) ऐसे सभी अन्य विषय, जिनका इस अधिनियम के अनुसार परिनियमों द्वारा उपबंध किया जाना है या किया जाए ।

(2) प्रथम परिनियम वे होंगे, जो सार्क की अंतर-सरकारी परिचालन समिति द्वारा विश्वविद्यालय के प्रचालन के लिए बनाए जाएं ।

(3) शासी निकाय, समय-समय पर, नए या अतिरिक्त परिनियम बना सकेगा या उपधारा (2) में निर्दिष्ट परिनियमों को संशोधित या निरसित कर सकेगा :

परंतु शासी निकाय, विश्वविद्यालय के किसी प्राधिकारी की

प्रास्थिति, शक्तियों या गठन को प्रभावित करने वाले किसी परिनियम को तब तक नहीं बनाएगा, संशोधित या निरसित नहीं करेगा जब तक उस प्राधिकारी को प्रस्तावित परिवर्तनों के संबंध में लिखित में राय अभिव्यक्त करने का अवसर नहीं दिया गया है और इस प्रकार अभिव्यक्त की गई किसी राय पर शासी बोर्ड द्वारा विचार नहीं किया गया है ।

21. विनियम – (1) इस अधिनियम और परिनियमों के उपबंधों के अधीन रहते हुए, विनियमों में निम्नलिखित सभी या किन्हीं विषयों के लिए उपबंध किया जा सकेगा, अर्थात् :–

(क) विश्वविद्यालय और विश्वविद्यालय द्वारा चलाई जा रही और उसके प्राधिकार में सम्मिलित संस्थाओं में छात्रों का प्रवेश और उनका नाम दर्ज किया जाना ;

(ख) विश्वविद्यालय की सभी उपाधियों, डिप्लोमाओं और प्रमाणपत्रों के लिए अधिकथित किए जाने वाले अध्ययन पाठ्यक्रम ;

(ग) शिक्षा और परीक्षा का माध्यम ;

(घ) उपाधि, डिप्लोमा, प्रमाणपत्र और अन्य विद्या संबंधी विशेष उपाधियां प्रदान करना, उनके लिए अर्हताएं और उन्हें प्रदान करने और प्राप्त करने के संबंध में किए जाने वाले उपाय ;

(ङ) विश्वविद्यालय में पाठ्यक्रमों और विश्वविद्यालय की परीक्षाओं, उपाधियों और डिप्लोमाओं में प्रवेश के लिए प्रभारित की जाने वाली फीस ;

(च) अध्येतावृत्ति, छात्रवृत्ति, अध्ययनवृत्ति और पुरस्कारों का संस्थित किया जाना तथा उन्हें प्रदान किए जाने के लिए शर्तें ;

(छ) परीक्षाओं का संचालन, जिसके अंतर्गत परीक्षा निकायों, परीक्षकों और अनुसीमकों की पदावधि और नियुक्ति की रीति तथा उनके कर्तव्य भी हैं ;

(ज) विश्वविद्यालय के छात्रों के निवास की शर्तें ;

(झ) छात्राओं के निवास, अनुशासन और शिक्षण के लिए किए जाने वाले विशेष प्रबंध, यदि कोई हों, और उनके लिए विशेष पाठ्यक्रम विहित करना ;

(ञ) केंद्रों, विश्वविद्यालय संस्थाओं, विभागों, विद्यापीठों, विद्या बोर्डों, विशेषित प्रयोगशालाओं और समितियों की स्थापना ;

(ट) किसी ऐसे अन्य निकाय का, जो विश्वविद्यालय के शैक्षणिक जीवन का सुधार करने के लिए आवश्यक समझा जाए, सृजन, उसकी संरचना और उसके कृत्य ;

(ठ) अन्य विश्वविद्यालयों, संस्थाओं और अन्य निकायों या संगमों के साथ सहकार और सहयोग करने की रीति ;

(ड) ऐसे सभी अन्य विषय, जिनका इस अधिनियम या परिनियमों के अनुसार विनियमों द्वारा उपबंध किया जाना है या किया जाए ।

(2) प्रथम विनियम परियोजना कार्यालय के मुख्य कार्यपालक अधिकारी द्वारा अंतर-सरकारी परिचालन समिति के पूर्व अनुमोदन से बनाए जाएंगे और इस प्रकार बनाए गए विनियमों को शासी बोर्ड द्वारा किसी भी समय परिनियमों द्वारा विहित रीति में संशोधित, निरसित या परिवर्धित किया जा सकेगा ।

22. उपविधियां – विश्वविद्यालय के प्राधिकारी अपने कारबार के संचालन के लिए ऐसी रीति में, जो परिनियमों द्वारा विहित की जाए, इस अधिनियम, परिनियमों और विनियमों से संगत ऐसी उपविधियां बना सकेंगे, जिनके लिए इस अधिनियम, परिनियमों या विनियमों द्वारा उपबंध नहीं किया गया है ।

23. परिनियमों और विनियमों को भूतलक्षी प्रभाव देने की शक्ति – परिनियम या विनियम बनाने की शक्ति में, परिनियमों या विनियमों या उनमें से किसी को ऐसी तारीख से, भूतलक्षी प्रभाव देने की शक्ति भी सम्मिलित है, जो इस अधिनियम के प्रांरभ की तारीख से पूर्ववर्ती न हो, किंतु किसी परिनियम या विनियम को इस प्रकार भूतलक्षी प्रभाव नहीं दिया जाएगा जिससे किसी ऐसे व्यक्ति के हितों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़े, जिसको ऐसे परिनियम या विनियम लागू होते हैं ।

24. वार्षिक रिपोर्ट – (1) विश्वविद्यालय की वार्षिक रिपोर्ट शासी बोर्ड के निदेश के अधीन तैयार की जाएगी और उस पर विश्वविद्यालय द्वारा अपनी वार्षिक बैठक में विचार किया जाएगा । विश्वविद्यालय की वार्षिक रिपोर्ट सार्क की मंत्रिपरिषद् के सत्र में भी प्रस्तुत की जाएगी ।

(2) विश्वविद्यालय की वार्षिक रिपोर्ट सार्क सचिवालय के माध्यम से सभी सार्क सदस्य राज्यों को परिचालित की जाएगी ।

25. लेखाओं की संपरीक्षा – (1) विश्वविद्यालय के लेखाओं की प्रत्येक वर्ष में कम से कम एक बार और पन्द्रह मास से अनधिक के अंतरालों पर शासी निकाय द्वारा प्राधिकृत किसी व्यक्ति या फर्म द्वारा संपरीक्षा की जाएगी ।

(2) विश्वविद्यालय के लेखाओं की सार्क द्वारा यथा अधिकथित विद्यमान मानकों के अनुसार संपरीक्षा की जाएगी ।

(3) लेखाओं को संपरीक्षित किए जाने के पश्चात् प्रकाशित किया जाएगा और संपरीक्षित रिपोर्ट के साथ लेखाओं की एक प्रति सार्क के महासचिव को प्रस्तुत की जाएगी ।

26. कर्मचारियों की सेवा की शर्तें – (1) विश्वविद्यालय का प्रत्येक कर्मचारी लिखित संविदा के अधीन नियुक्त किया जाएगा, जो विश्वविद्यालय के पास रखी जाएगी और उसकी एक प्रति संबंधित कर्मचारी को दी जाएगी ।

(2) विश्वविद्यालय और किसी कर्मचारी के बीच संविदा से उत्पन्न होने वाला कोई विवाद उस प्रयोजन के लिए गठित माध्यस्थम् अधिकरण को निर्दिष्ट किया जाएगा ।

(3) अधिकरण का विनिश्चय अंतिम होगा और अधिकरण द्वारा विनिश्चित मामलों के संबंध में किसी न्यायालय में कोई वाद नहीं होगा ।

(4) उपधारा (2) के अधीन अधिकरण के कार्य को विनियमित करने की प्रक्रिया परिनियमों द्वारा विहित की जाएगी ।

27. छात्रों के विरुद्ध अनुशासनिक मामलों में माध्यस्थम् की प्रक्रिया – विश्वविद्यालय द्वारा किसी छात्र के विरुद्ध की गई किसी अनुशासनिक कार्रवाई से उत्पन्न होने वाला कोई विवाद उस छात्र के अनुरोध पर माध्यस्थम् अधिकरण को निर्दिष्ट किया जाएगा और धारा 26 की उपधारा (2), उपधारा (3) और उपधारा (4) के उपबंध इस धारा के अधीन किए गए निर्देश को यथाशक्य लागू होंगे ।

28. विश्वविद्यालय प्राधिकारियों या निकायों की कार्यवाहियों का रिक्तियों के कारण अविधिमान्य न होना – विश्वविद्यालय या उसके

किसी प्राधिकारी या अन्य निकाय का कोई कार्य या कार्यवाही केवल इस कारण अविधिमान्य नहीं होगी कि उसके सदस्यों में कोई रिक्ति या रिक्तियां विद्यमान हैं ।

29. सद्भावपूर्वक की गई कार्रवाई के लिए संरक्षण – इस अधिनियम के किसी उपबंध के अनुसरण में सद्भावपूर्वक की गई या की जाने के लिए आशयित किसी बात के लिए कोई वाद या अन्य विधिक कार्यवाही विश्वविद्यालय, उसके किसी अधिकारी या कर्मचारी के विरुद्ध नहीं होगी ।

30. सार्क माध्यस्थम् परिषद् को निर्देश – करार के निर्वचन या लागू होने के बारे में उत्पन्न होने वाले सभी मतभेद तभी सार्क माध्यस्थम् परिषद् को निर्दिष्ट किए जाएंगे जब पक्षकार किसी मामले में समाधान के किसी अन्य ढंग का आश्रय लेने के लिए सहमत हो जाएं ।

31. परिनियमों और विनियमों तथा उपविधियों का राजपत्र में प्रकाशित किया जाना और संसद् के समक्ष रखा जाना – (1) इस अधिनियम के अधीन बनाए गए परिनियमों, विनियमों या उपविधियों को राजपत्र में प्रकाशित किया जाएगा ।

(2) इस अधिनियम के अधीन बनाया गया प्रत्येक परिनियम, विनियम या बनाई गई उपविधि, बनाए जाने के पश्चात्, यथाशीघ्र, संसद् के प्रत्येक सदन के समक्ष रखी जाएगी ।

32. कठिनाइयों को दूर करने की शक्ति – (1) यदि इस अधिनियम के उपबंधों को प्रभावी करने में कोई कठिनाई उत्पन्न होती है तो केन्द्रीय सरकार, राजपत्र में प्रकाशित ऐसे आदेश द्वारा, जो इस अधिनियम के उपबंधों से संगत हो और जो उस कठिनाई को दूर करने के लिए उसे आवश्यक या समीचीन प्रतीत हो, उस कठिनाई को दूर कर सकेगी :

परन्तु इस धारा के अधीन ऐसा कोई आदेश इस अधिनियम के प्रारंभ से तीन वर्ष की समाप्ति के पश्चात् नहीं किया जाएगा ।

(2) उपधारा (1) के अधीन किया गया प्रत्येक आदेश, किए जाने के पश्चात्, यथाशीघ्र, संसद् के प्रत्येक सदन के समक्ष रखा जाएगा ।

अनुसूची

(धारा 3 देखिए)

करार के उपबंधों को विधि का बल होना

अनुच्छेद 1

दक्षिण एशियाई विश्वविद्यालय की स्थापना

1. दक्षिण एशियाई विश्वविद्यालय (जिसे इसमें इसके पश्चात् "विश्वविद्यालय" कहा गया है) नामक एक विश्वविद्यालय की स्थापना की जाती है, जो इस करार में उपवर्णित प्रयोजनों के लिए क्षेत्रीय आधार वाला एक अराज्यीय, अलाभकारी स्वशासी अंतर्राष्ट्रीय शिक्षण संस्था होगी और उसे अपने उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए पूर्ण शैक्षिक स्वतंत्रता होगी ।

2. विश्वविद्यालय का मुख्य कैम्पस भारत में अवस्थित होगा ।

3. विश्वविद्यालय का पूर्ण विधिक व्यक्तित्व होगा ।

4. विश्वविद्यालय की विधिक क्षमता में, अन्य बातों के साथ, निम्नलिखित सम्मिलित होंगे :–

(क) उपाधियां, डिप्लोमे और प्रमाणपत्र प्रदान करने की शक्ति ;

(ख) संविदा करने की क्षमता ;

(ग) अपने नाम में वाद लाना और उसके विरुद्ध वाद लाया जाना ;

(घ) संपत्तियां अर्जित करना, धारण करना और उनका व्ययन करना ;

(ङ) क्षेत्र में कैंपस और केन्द्रों की स्थापना करना ; और

(च) विश्वविद्यालय के प्रचालन के लिए नियम, विनियम और उपविधियां बनाना ।

अनुच्छेद 2

दक्षिण एशियाई विश्वविद्यालय के उद्देश्य और कृत्य

विश्वविद्यालय के उद्देश्यों और कृत्यों में, अन्य बातों के साथ निम्नलिखित सम्मिलित होंगे :–

1. विश्व स्तर की ऐसी संस्था का सृजन करना, जो सभी दक्षिण एशियाई देशों के होनहार और अत्यंत समर्पित छात्रों को, लिंग, जाति, पंथ, नि:शक्तता, नृवंशता या सामाजिक-आर्थिक पृष्ठभूमि पर ध्यान दिए बिना, उन्हें उदारवादी और मानवीय शिक्षा देने और उन्हें कोई वृत्ति

चलाने के लिए आवश्यक विश्लेषणात्मक साधन प्रदान करने तथा उनमें नेतृत्व के गुण पैदा करने के लिए एक साथ लाएगा ;

2. ऐसे दक्षिण एशियाई शिक्षा समुदाय का निर्माण करना, जहां प्रत्येक छात्र अपनी पूर्णतम बौद्धिक क्षमता का विकास करने में समर्थ होगा और क्षेत्रीय चेतना को सुदृढ़ करके एक दक्षिण एशियाई समुदाय का सृजन करना ;

3. मुख्यतः विज्ञान, प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में और उच्चतर शिक्षा के अन्य क्षेत्रों में दक्षिण एशियाई राष्ट्रों की क्षमता निर्माण के संबंध में शिक्षा प्रदान करना, जो उनके जीवन के स्तर को सुधारने के लिए आवश्यक है ;

4. दक्षिण एशिया के भावी नेताओं को एक साथ लाते हुए और एक-दूसरे के परिप्रेक्ष्य की उनकी समझ में वृद्धि करके क्षेत्रीय शांति और सुरक्षा का संवर्धन करने में योगदान देना ;

5. छात्रों में उत्तम नागरिक चेतना का विकास करना और लोकतांत्रिक समाज के सफल नागरिक बनने के लिए उन्हें प्रशिक्षित करना ।

अनुच्छेद 3

वित्तपोषण

विश्वविद्यालय ऐसी अलाभकारी पब्लिक प्राइवेट भागीदारी होगी, जो सदस्य राज्यों की प्रत्येक राष्ट्रीय सरकार और अन्य स्रोतों से समर्थन लेगी, किंतु स्वशासी होगी और अपने न्यासी/शासी बोर्ड के प्रति उत्तरदायी होगी ।

अनुच्छेद 4

राजवित्तीय प्रास्थिति

1. विश्वविद्यालय और उसके कैम्पस तथा केंद्रों को, उस राज्य में, जहां वह अवस्थित है, विश्वविद्यालय की स्थापना और प्रचालन के लिए सभी प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप के करों और शुल्कों का संदाय करने और संग्रहण करने से छूट होगी ।

2. विश्वविद्यालय पूर्विकताओं, उपयोगिताओं के लिए दरों और प्रभारों के संबंध में ऐसे व्यवहार का उपभोग करेगा, जो उससे कम

अनुकूल नहीं है, जो राज्य के स्वामित्वाधीन उद्यमों और विश्वविद्यालयों को प्रदान किया जाता है ।

3. विश्वविद्यालय को, विश्वविद्यालय के उद्देश्यों के लिए नकद या वस्तु रूप में जीवनकालिक और वसीयती दान, अभिदाय और संदान प्राप्त करने का अधिकार है । किसी विधिक या भौतिक व्यक्ति से सभी ऐसे दान और संदान संबंधित संस्थापक राज्यों में ऐसे दाताओं या अभिदाताओं की आय के संबंध में किसी सीमा के बिना पूर्णतया कटौती योग्य हैं ।

4. विश्वविद्यालय द्वारा नियोजित संस्थापक राज्यों के नागरिकों के कराधान और सामाजिक संरक्षण संबंधित राज्यों के अपने-अपने राष्ट्रीय विधान के अनुसार विनियमित होंगे । आतिथेय देश से भिन्न राज्यों से विश्वविद्यालयों के कर्मचारी अपने देशों की आय-कर विधियों द्वारा शासित होंगे और आतिथेय देश की विधियों के अनुसार कराधेय नहीं होंगे ।

अनुच्छेद 5

शासन संरचना

1. विश्वविद्यालय प्रत्येक सदस्य राज्य के दो सदस्यों से मिलकर बने शासी बोर्ड द्वारा शासित होगा और उसका एक अध्यक्ष होगा । अध्यक्ष, शासी बोर्ड के सदस्यों में से निर्वाचित किया जाएगा ।

2. शासी बोर्ड का प्रत्येक सदस्य तीन वर्ष की निश्चित अवधि के लिए पद पर सेवा करेगा और लगातार दो अवधियों से अधिक के लिए पद धारण नहीं करेगा । सदस्यों का चयन, क्षेत्र के विशिष्ट व्यक्तियों में से किया जाएगा और वे विश्वविद्यालय की संपूर्ण नीतियों और निदेशों के लिए उत्तरदायी होंगे । शासी बोर्ड के अध्यक्ष की शक्तियों और कृत्य तथा बोर्ड की भूमिका का विनिश्चय विश्वविद्यालय के नियमों और विनियमों के अनुसार किया जाएगा ।

3. विश्वविद्यालय का प्रधान शासी बोर्ड द्वारा नियुक्त अध्यक्ष होगा । उसकी नियुक्ति, पदावधि, शक्तियां और कृत्य विश्वविद्यालय के नियमों और विनियमों के अनुसार विनिश्चित किए जाएंगे ।

4. अध्यक्ष, मुख्य कार्यपालक अधिकारी तथा शासी बोर्ड का पदेन सदस्य भी होगा । अध्यक्ष, मुख्य कार्यपालक अधिकारी के रूप में बोर्ड को रिपोर्ट करेगा और बोर्ड के प्रसादपर्यन्त पद धारण करेगा । वह विश्वविद्यालय के दृष्टिकोण और आधारभूत कथन को कार्यान्वित करने,

विश्वविद्यालय के प्रयोजन और उद्देश्यों को सुनिश्चित करने, एक समान रूप से उच्च शैक्षिक मानदंडों को बनाए रखने और विश्वविद्यालय के बोर्ड के नीति निदेशों को पूरा करने के लिए उत्तरदायी होगा ।

5. विश्वविद्यालय के मुख्य कार्यपालक अधिकारी के रूप में अध्यक्ष शासी बोर्ड के निदेश के अधीन कार्य करेगा । अध्यक्ष की सहायता एक कार्यकारी परिषद् द्वारा की जाएगी । अध्यक्ष, उपविधियों के अनुसार, शिक्षा परिषद्, विभिन्न समितियां गठित करेगा और विश्वविद्यालय के प्रधान अधिकारियों की नियुक्ति करेगा ।

अनुच्छेद 6

वीजा और निवासी परमिट

सदस्य राज्य, छात्रों, संकाय और कर्मचारिवृंद को सभी सार्क सदस्य राज्यों में यात्रा के लिए समुचित वीजा प्रदान करेंगे और छात्रों, संकाय और प्रशासनिक कर्मचारिवृंद के लिए विश्वविद्यालय और उसके विभिन्न कैंपसों, केंद्रों और सहयोजित शिक्षा संस्थाओं में कार्य करने के लिए आवश्यक निवासी परमिट देंगे ।

अनुच्छेद 7

डिग्रियों की मान्यता

यह करार सभी सार्क सदस्य राज्यों में विश्वविद्यालय द्वारा प्रदान की गई डिग्रियों और प्रमाणपत्रों की संबंधित राष्ट्रीय विश्वविद्यालयों/संस्थाओं द्वारा जारी की गई डिग्रियों और प्रमाणपत्रों के समरूप पारस्परिक मान्यता को सुकर बनाएगा ।

———————

विधि साहित्य प्रकाशन द्वारा प्रकाशित और विक्रयार्थ उपलब्ध पाठ्य पुस्तकों की सूची

क्रम सं.	पुस्तक का नाम, लेखक का नाम एवं प्रकाशन वर्ष (संस्करण)	पृष्ठ सं.	पुस्तक की मूल मुद्रित कीमत (रुपयों में)	विशेष छूट के पश्चात् पुस्तक की कीमत (रुपयों में)
1.	अन्तर्राष्ट्रीय विधि के प्रमुख निर्णय – डा. एस. सी. खरे – 1996	273	115	29.00
2.	भारतीय स्वातंत्र्य संग्राम (कालजयी निर्णय) – विधि साहित्य प्रकाशन – 2000	209	225	57.00
3.	विधि शास्त्र – डा. शिवदत्त शर्मा – 2004	501	580	290.00
4.	मानव अधिकार – डा. शिवदत्त शर्मा – 2006	340	120	60.00
5.	निर्णय लेखन – न्या. भगवती प्रसाद बेरी – 2019	190	175	–

अन्य महत्वपूर्ण प्रकाशन

1. विधि शब्दावली	सातवां संस्करण, 2015	कीमत रु. 375/-
2. निर्वाचन विधि निर्देशिका (भाग-1 तथा भाग-2)	नवीनतम संस्करण, 2019	कीमत रु. 1,900/-
3. भारत का संविधान (सिंधी भाषा में)	1998	कीमत रु. 45/-
4. बहुभाषी संविधान शब्दावली	1986	कीमत रु. 12/-
5. भारत का संविधान	2021	कीमत रु. 300/-

विधि साहित्य प्रकाशन
(विधायी विभाग)
विधि और न्याय मंत्रालय
भारत सरकार
भारतीय विधि संस्थान भवन,
भगवान दास मार्ग, नई दिल्ली-110001
Website : www.lawmin.nic.in
Email : am.vsp-molj@gov.in

भारत के समाचारपत्रों के रजिस्ट्रार द्वारा रजिस्ट्रीकृत रजि. सं. 16288/68

सादर

विधि साहित्य प्रकाशन द्वारा तीन मासिक निर्णय पत्रिकाओं - **उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका, उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका और उच्च न्यायालय दांडिक निर्णय पत्रिका** का प्रकाशन किया जाता है । उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका में उच्चतम न्यायालय के चयनित निर्णयों को और उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका तथा उच्च न्यायालय दांडिक निर्णय पत्रिका में देश के विभिन्न उच्च न्यायालयों के चयनित क्रमशः सिविल और दांडिक निर्णयों को हिन्दी में प्रकाशित किया जाता है । उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका को उपादेय और ज्ञानवर्द्धक बनाने के लिए प्रिवी कौंसिल के निर्णयों को भी समाविष्ट किया जा रहा है । उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका, उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका और उच्च न्यायालय दांडिक निर्णय पत्रिका की वार्षिक कीमत क्रमशः ₹ 2,100/-, ₹ 1,300/- और ₹ 1,300/- है । तीनों मासिक निर्णय पत्रिकाओं के नियमित ग्राहक बनकर हिन्दी के प्रचार-प्रसार के इस महान यज्ञ के भागी बन कर अनुगृहीत करें । साथ ही यह भी अवगत कराया जाता है कि केन्द्रीय अधिनियमों, विधि शब्दावली, विधि पत्रिकाओं और अन्य विधि प्रकाशनों को आन लाइन **https://bharatkosh.gov.in/ product/ product** पर प्राप्त किया जा सकता है ।

विधि साहित्य प्रकाशन

(विधायी विभाग)

विधि और न्याय मंत्रालय

भारत सरकार

भारतीय विधि संस्थान भवन,

भगवान दास मार्ग, नई दिल्ली-110001

दूरभाष : 011-23387589, 23385259, 23382105

विक्रेता : सहायक प्रबंधक, कारबार अनुभाग, विधि साहित्य प्रकाशन, विधि और न्याय मंत्रालय, विधायी विभाग, आई. एल. आई. बिल्डिंग, भगवानदास मार्ग, नई दिल्ली-110001 । दूरभाष **:** 011-23385259, 23387589, फैक्स **:** 011-23387589, ई-मेल **:** am.vsp-molj@gov.in